THE

HISTORY OF RAJPUTANA

(VOLUME IV)

Mahamahopadhyaya Rai Bahadur

Gaurishankar Hirachand Ojha

राजपूताने का इतिहास

(चतुर्थ खंड)

ग्रंथकर्ता

महामहोपाध्याय

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

मुद्रक

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

प्रथमावृत्ति, १०००

वि० सं० १९८८

स्थायी ग्राहकों से
मूल्य ६ रुपये

Extracts from opinions on Fasciculus III of the History of Rajputana.

The Indian Antiquary, Bombay March 1931.

. Since Col. James Tod completed— just a century ago—his immortal work, *The Annals and Antiquities of Rajasthan,* enormous strides have been made in the critical study of Indian history and, besides the discovery and publication of further historical and other records, a vast quantity of epigraphical and numismatic material has become available. Tod, in the absence of these sources of knowledge was dependent upon local traditions, such archives as had been preserved in the States and, more particularly, upon the bardic chronicles which, as Mahāmahopādhyāya G. H. Ojhā has shown, only began to be recorded after the sixteenth century of the Vikrama Samvat and abound in errors. These old chroniclers had no knowledge of correct chronology, and Tod had no means of testing and correcting their assertions, to which his eloquent pen added a warrant of authenticity. The time was ripe for rewriting the story told in the fascinating pages of Tod; and it is fortunate that the task should have been undertaken by the present author, whose scholarly attainments and unique knowledge of the subject, acquired by life-long research and stimulated by personal interest in the land and people, render him pre-eminently qualified for the work. The errors in the bardic accounts, as well as in vernacular compilations of more recent date have now been indicated and corrected. The narratives of the Muhammadan historians have been carefully examined and utilised where they afford relevant information. But the outstanding feature of this work is the use that has been made of stone and copperplate inscriptions, so many of which have been discovered by the author himself, and some of which have not hitherto been edited or published......Tod was rewarded and no public servant can receive a higher and more gratifying reward—by the deep affection with which his name is still cherished in Rājpūtānā The author of the Rājpūtāne kā Itihāsa will likewise be gratefully remembered in that land and by all students of its history. We thank him for the pleasure enjoyed in reading the first three fascicules of this fine work, and look forward to its successful completion.

THE

HISTORY OF RAJPUTANA

VOL. II.

BY

MAHAMAHOPADHYAYA

RAI BAHADUR GAURISHANKAR HIRACHAND OJHA.

Printed at the Vedic Yantralaya,

AJMER.

1932

राजपूताने का इतिहास

दूसरी जिल्द

ग्रंथकर्त्ता
महामहोपाध्याय
रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में
मुद्रित

विक्रम संवत् १९८८

अनेक राज्यों के विजेता

विविध ग्रन्थों के रचयिता

सङ्गीत एवं शिल्प-शास्त्र के असाधारण ज्ञाता

राजपूत जाति के गौरव के रक्षक

वीराग्रणी

महाराणा कुंभकर्ण

की

पवित्र स्मृति को

सादर

समर्पित

अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जिनसे कई नवीन इतिवृत्त ज्ञात होकर उक्त इतिहास में परिवर्तन करने की आवश्यकता हुई है।

अब तक राजपूताने से सम्बन्ध रखनेवाले जितने ऐतिहासिक ग्रन्थ हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुए हैं, वे प्रायः संदिग्ध ख्यातों तथा टॉड कृत 'राजस्थान' के आधार पर ही लिखे गये हैं। उनमें से एक भी लेखक ने राजपूताना जैसे विस्तीर्ण और प्राचीन देश में भ्रमण कर उससे सम्बन्ध रखनेवाले शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषा की पुस्तकों, फ़ारसी तवारीखों, शाही फ़रमानों, निशानों, पट्टे-परवानों एवं तत्कालीन पत्र-व्यवहारों आदि की सहायता से राजपूताने का मौलिक रूप से इतिहास लिखने का प्रयत्न नहीं किया। यह भारी त्रुटि विद्वद्वर्ग में खटकती थी, इसलिए उसे दूर करने की मेरी इच्छा हुई। तदनुसार अब तक की खोज के आधार पर मैंने राजपूताने का इतिहास लिखना आरम्भ किया, जिसकी यह दूसरी जिल्द इतिहास-प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत है।

पहली जिल्द में राजपूताने की भौगोलिक परिस्थिति, राजपूत जाति, राजपूताने से सम्बन्ध रखनेवाले समस्त प्राचीन राजवंशों का क्रमबद्ध संक्षिप्त इतिहास तथा मुसलमानों, मरहटों और अंग्रेज़ों के साथ का राजपूताने के सम्बन्ध का परिचय देने के पश्चात् उदयपुर राज्य का प्रारम्भ से लेकर महारावल रत्नसिंह तक का, जिसके साथ मेवाड़ की रावल शाखा की समाप्ति हुई, इतिहास लिखा गया है। इस जिल्द में महाराणा हम्मीरसिंह से वर्तमान समय तक का मेवाड़ की राणा शाखा के राजाओं का सविस्तर इतिहास है। तदनन्तर मेवाड़ के सरदारों, प्रसिद्ध घरानों तथा मेवाड़ के राजवंश से निकले हुए राजपूताने से बाहर के राज्यों का वृत्तान्त और मेवाड़ की संस्कृति का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। अन्त के पांच परिशिष्टों में मेवाड़ के राजाओं की पूरी वंशावली, गौर नामक अज्ञात क्षत्रियवंश का परिचय, पद्मावत के सिंहलद्वीप का विवेचन और मेवाड़ राज्य के इतिहास का कालक्रम तथा सहायक ग्रन्थों की सूची दी गई है।

हर्ष का विषय है कि यूरोप और भारत के विद्वानों ने इस ग्रन्थ को पसन्द किया है। ब्रिटिश म्यूज़ियम के सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉक्टर एल्.

डी. बारनेट, एम्० ए० की सम्मति है कि 'यह ग्रन्थ वास्तव में राजपूताने की महत्ता का स्मारक एवं सच्चा कीर्तिस्तम्भ होगा'। इसकी मौलिकता को देखकर हिन्दू यूनिवर्सिटी आदि विश्वविद्यालयों ने इसे अपने यहां के इतिहास-सम्बन्धी पाठ्यग्रन्थों तथा पंजाब यूनिवर्सिटी ने तो हिन्दी की सर्वोच्च परीक्षा 'हिन्दीप्रभाकर' में स्थान दिया है।

इतिहास की रचना सतत खोज और अनवरत परिश्रम पर निर्भर है, इसके अभाव से ही हिन्दी भाषा में अब तक उत्कृष्ट ऐतिहासिक ग्रन्थों की संख्या नाममात्र की है। राजपूताना जैसे विस्तृत और इतिहास-प्रसिद्ध देश में पुरातत्त्व-सम्बंधी खोज की बहुत ही आवश्यकता है। खोज के विना वास्तविक इतिहास लिखना अत्यन्त दुस्तर कार्य है। लगभग अर्द्ध-शताब्दी से मैं इस कार्य में संलग्न हूं और राजपूताने के भिन्न भिन्न विभागों में अनेक बार भ्रमण कर सैकड़ों शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों का पता लगाकर मैंने उन्हें पढ़ा है और-जहां तक हो सका-आवश्यक एवं प्रचुर सामग्री का संग्रह किया है, जिसके आधार पर ही यह इतिहास लिखा जा रहा है। वृद्धावस्था और शारीरिक अस्वस्थता के कारण इस जिल्द के प्रकाशन में विलम्ब हुआ है और इसमें कई त्रुटियां तथा अशुद्धियां रह जाना संभव है, अतएव पाठकगण उसके लिए क्षमा करेंगे। यदि इस ग्रन्थ से हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक साहित्य में तनिक भी वृद्धि हुई, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगा।

जिन जिन ग्रन्थों से मैंने सहायता ली है उनके कर्त्ताओं का मैं आभारी हूं। ब्रिटिश म्यूज़ियम् से महाराणा कुंभा का प्राचीन चित्र प्राप्त करने के लिए मैं अपने विद्वान् मित्र दीवानबहादुर हरविलास सारडा का अनुगृहीत हूं। कतिपय गुहिलवंशी राज्यों के इतिहाससम्बन्धी परामर्श के लिये ठाकुर कन्हैयासिंह भाटी और प्रकाशन कार्य को सुचारुरूप से चलाने के लिये मैं अपने आयुष्मान् पुत्र रामेश्वर ओझा एम० ए० का नामोल्लेख करना आवश्यक समझता हूं।

अजमेर,
शिवरात्रि,
वि० सं० १९८८

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

विषय-सूची

चौथा अध्याय

महाराणा हंमीर से महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) तक

विषय	पृष्ठाङ्क

विषय				पृष्टाङ्क

विषय पृष्ठाङ्क

पांचवां अध्याय

महाराणा रत्नसिंह से महाराणा अमरसिंह तक

विषय पृष्ठाङ्क

छठा अध्याय

महाराणा कर्णसिंह से महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) तक

विषय पृष्ठाङ्क

विषय ... पृष्ठाङ्क

सातवां अध्याय

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) से महाराणा भीमसिंह तक

विषय	पृष्ठाङ्क

विषय				पृष्ठाङ्क

विषय | पृष्ठाङ्क

विषय			पृष्ठाङ्क

आठवां अध्याय

महाराणा जवानसिंह से वर्तमान समय तक

विषय				पृष्ठाङ्क

विषय			पृष्ठाङ्क

विषय			पृष्ठाङ्क

नवां अध्याय

मेवाड़ के सरदार और प्रतिष्ठित घराने

विषय				पृष्ठाङ्क

दसवां अध्याय

राजपूताने से बाहर के गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

ग्यारहवां अध्याय

मेवाड़ की संस्कृति

साहित्य

शासन

कला

परिशिष्ट

चित्रसूची

राजपूताने के इतिहास की दूसरी जिल्द में दिये हुए पुस्तकों के संक्षिप्त नाम-संकेतों का परिचय

इं० ऐं०	...इंडियन ऐंटिक्वेरी
ए० इं०	...एपिग्राफ़िया इंडिका
क० आ० स० इं० क० आ० स० रि०	कनिंगहाम की 'आर्कियालॉजिकल सर्वे की रिपोर्ट'
ज०ए०सो०बंगा० बंगा०ए०सो०ज०	जर्नल ऑफ़ दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल
ज० बंब०ए०सो० बंब० ए०सो०ज०	जर्नल ऑफ़ दी बॉम्बे ब्रैंच ऑफ़ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
टॉ०, रा० टॉड. राज०	टॉड-कृत 'राजस्थान' (ऑक्सफ़र्ड-संस्करण)
ना० प्र० प०	...नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण)
फ़्ली० गु० इं०	फ़्लीट-संपादित 'गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स'
बंब० गै०	...बंबई गैज़ेटियर
हिन्दी टॉड रा० हि० टॉ० रा०	हिन्दी टॉड-राजस्थान (खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर का संस्करण)

ग्रन्थकर्त्ता-द्वारा रचित तथा सम्पादित ग्रन्थ आदि।

स्वतन्त्र रचनाएं—	मूल्य
(१) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (द्वितीय संस्करण)	रु० २५)
(२) सोलंकियों का प्राचीन इतिहास—प्रथम भाग	रु० १०)
(३) सिरोही राज्य का इतिहास	अप्राप्य
(४) बापा रावल का सोने का सिक्का	॥)
(५) वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह ...	॥=)
(६) * मध्यकालीन भारतीय संस्कृति ...	३)
(७) राजपूताने का इतिहास—पहला खंड ..	अप्राप्य
(८) राजपूताने का इतिहास—दूसरा खंड ..	अप्राप्य
(९) राजपूताने का इतिहास—तीसरा खंड ...	अप्राप्य
(१०) राजपूताने का इतिहास—चौथा खंड ...	६)
(११) उदयपुर राज्य का इतिहास—पहली जिल्द ..	अप्राप्य
(१२) उदयपुर राज्य का इतिहास—दूसरी जिल्द ...	रु० ११)
(१३) † भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री ...	॥)
(१४) ‡ कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र	।)
(१५) ‡ राजस्थान-ऐतिहासिक-दन्तकथा, प्रथम भाग ('एक राजस्थान निवासी' नाम से प्रकाशित)	अप्राप्य
(१६) × नागरी अंक और अक्षर	

---

* प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी-द्वारा प्रकाशित। इसका उर्दू अनुवाद भी उक्त संस्था ने प्रकाशित किया है।

† काशी-नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित।

‡ खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर से प्राप्त।

× हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-द्वारा प्रकाशित।

सम्पादित

मूल्य

(१७) * अशोक की धर्मलिपियां—पहला खंड
(प्रधान शिलाभिलेख) ... ... रु० ३)

(१८) * सुलैमान सौदागर ... ... ,, १।)

(१९) * प्राचीन मुद्रा ... ... ,, ३)

(२०) * नागरीप्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) नवीन संस्करण
भाग १ से १२ तक ... प्रत्येक भाग ,, १०)

(२१) * कोशोत्सव स्मारक संग्रह ... ... ,, ३)

(२२-२३) ‡ हिन्दी टॉड राजस्थान—पहला और दूसरा खंड
(इनमें विस्तृत सम्पादकीय टिप्पणी-द्वारा टॉडकृत राजस्थान की अनेक ऐतिहासिक त्रुटियां शुद्ध की गई हैं)

(२४) जयानक प्रणीत 'पृथ्वीराजविजय महाकाव्य' सटीक (प्रेस में)

(२५) जयसोमगणिरचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्'—
हिन्दी अनुवादसहित ... ... (प्रेस में)

---

* काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित ।

‡ खड्गविलास प्रेस (बांकीपुर) द्वारा प्रकाशित ।

इसी कारण उसने अपनी जीवित दशा में ही महाराणा सरूपसिंह की स्वीकृति से अपने भतीजे अदोतसिंह को सकतपुरे से गोद लिया। इसपर महाराज हंमीरसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र शक्तिसिंह को बोहेड़ा दिलाये जाने का दावा किया, तो यह निर्णय हुआ कि यदि अदोतसिंह के पुत्र हो तो वह छोटा समझा जाय, उस (अदोतसिंह) के पीछे शक्तिसिंह बोहेड़े का स्वामी हो और हाल में उस (शक्तिसिंह) के निर्वाह के लिये बोहेड़े की जागीर में से दो गांव—देवाखेड़ा और बांसड़ा—दिये जायँ। थोड़े ही दिनों में शक्तिसिंह का देहान्त हो गया, तब हंमीरसिंह ने दरबार में दावा पेश किया कि उस (हंमीरसिंह) का तीसरा पुत्र रत्नसिंह अदोतसिंह का दत्तक समझा जाय। महाराणा शम्भुसिंह ने यह बात स्वीकार कर ली, परन्तु अदोतसिंह ने इसे मंज़ूर न किया और बोहेड़े तथा भींडरवालों में लड़ाइयां भी हुईं। महाराज हंमीरसिंह के उत्तराधिकारी महाराज मदनसिंह ने महाराणा सज्जनसिंह से अर्ज़ की कि रत्नसिंह अदोतसिंह का उत्तराधिकारी माना जाय। महाराणा ने उसे मंज़ूर कर रत्नसिंह को ऊपर लिखे हुए दोनों गांव दिलाये जाने की आज्ञा दी। महाराणा की आज्ञा के विरुद्ध अदोतसिंह ने सकतपुरे से अपने भतीजे केसरीसिंह को गोद ले लिया और रत्नसिंह को गांव देने से इन्कार किया। इसपर महाराणा ने बोहेड़े के दो गांव—देवाखेड़ा और बांसड़ा—अपने अधिकार में कर लिये। तब अदोतसिंह ने महाराणा की सेवा में अर्ज़ कराई कि आप तो हमारे स्वामी हैं, दो गांव तो क्या बोहेड़े की सारी जागीर भी छीन लें तो भी मुझे कोई उज्र नहीं, परन्तु भींडरवालों को तो एक भी बीघा ज़मीन देना मुझे मंज़ूर नहीं, मेरे ठिकाने का मालिक तो केसरीसिंह ही होगा। इसी अरसे में अदोतसिंह भी मर गया, जिससे महाराज मदनसिंह ने अपने भाई रत्नसिंह को बोहेड़ा दिलाये जाने का दावा किया। इसपर महाराणा ने केसरीसिंह को आज्ञा दी कि एक हफ्ते के भीतर वह उदयपुर चला आवे, नहीं तो उसे दंड दिया जावेगा। केसरीसिंह के उक्त आज्ञा का पालन न करने पर महाराणा ने वि० सं० १९४० चैत्र वदि ७ (ई० स० १८८४ ता० १९ मार्च) को मेहता पन्नालाल के छोटे भाई लक्ष्मीलाल की अध्यक्षता में उदयपुर से सेना और दो तोपें रवाना कीं। बोहेड़े पहुंच कर मेहता लक्ष्मीलाल ने उस (केसरीसिंह) को पहले बहुत कुछ समझाया, परन्तु जब

उसने न माना तब लड़ाई छिड़ गई। अच्छी तरह लड़ने के पश्चात् केसरीसिंह तथा उसके साथी बोहेड़े से भाग निकले, परन्तु राज्य की सेना ने उनका पीछा कर उन्हें गिरिफ़्तार कर लिया। इस लड़ाई में राज्य की सेना के ४ सैनिक तो मारे गये और १४ घायल हुए। केसरीसिंह की तरफ़ के १८ आदमी काम आये, १२ घायल हुए और ३७ कैद हुए। महाराणा ने राज्य की सेना के जो सिपाही मारे गये उनके बालबच्चों के निर्वाह का यथोचित प्रबन्ध किया, घायलों को इनाम दिया, मेहता लक्ष्मीलाल को सोने के लंगर देकर सम्मानित किया, फ़ौज खर्च वसूल करने के लिये बोहेड़े का मंगरवाड़ गांव राज्य के अधिकार में रख लिया और रावत रत्नसिंह को बोहेड़े का स्वामी बनाया[1]।

महाराणा ने शहर उदयपुर में सफ़ाई तथा रोशनी का प्रबन्ध किया और सड़कों की मरम्मत कराकर उनपर बड़े बड़े वृक्ष लगवाये। शहर के निकट जयपुर के रामनिवास बाग़ के तर्ज़ पर सज्जननिवास नाम का बहुत बड़ा, रम्य एवं सुन्दर बाग़ लगवाया जाकर उसकी देखभाल के लिये एक यूरोपियन बाग़वान नियुक्त किया गया। बाग़ में जगह-जगह फ़व्वारे तथा जलधाराएं छोड़नेवाली पुतलियां बनवाई गई और चौड़ी सड़कों पर जनसाधारण के बैठने तथा आराम करने का अच्छा इन्तज़ाम किया गया। इस विस्तीर्ण बाग़ की सिंचाई के लिये पीछोला तालाब से एक नहर लाई गई, इसके अतिरिक्त उक्त तालाब से नलों-द्वारा सर्वत्र पानी पहुँचाने की व्यवस्था की गई। नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों के पौधे तथा फलों के वृक्ष बाहर से मंगवाकर उसमें लगाये गये, विद्यार्थियों के लिये क्रिकेट, फुटबॉल आदि खेलने के स्थान, नाना प्रकार के जलचरों के लिये तार की जालियों के मंडपवाले हौज़; और शेर, चीते, रीछ, साँभर आदि जंगली जंतुओं के लिये स्थान बनाये गये। नाहरमगरे में भी एक सुन्दर बाग़ लगवाया गया। कृषकों के सुबीते के लिये छोटे छोटे तालाबों की दुरुस्ती कराई गई, उदयसागर तथा राजसमुद्र से नहरें निकलवाकर सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध किया गया और उसकी निगरानी के लिये एक इंजीनियर नियुक्त हुआ। उदयपुर से नींबाहेड़े और उदयपुर से खैरवाड़े तक पक्की सड़कें बनवाई गई। मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट डाक्टर स्ट्रैटन की

महाराणा के लोकोपयोगी कार्य

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २२४५-५१।

निगरानी में उदयपुर से नाथद्वारे तक एक पक्की सड़क निकाली गई। इसके सिवा राज्य के भिन्न भिन्न विभागों में और भी कई सड़कें बनीं। चित्तोड़ से उदयपुर तक रेल बनाने की आज्ञा दी गई और उस काम के लिये एक इंजीनियर भी नियत किया गया, परन्तु महाराणा का देहान्त हो जाने से बरसों तक काम बन्द रहा।

अपने राज्य में शिक्षा की सुव्यवस्था करने के लिए एज्युकेशन कमेटी नियुक्तकर महाराणा ने उदयपुर में हाईस्कूल, संस्कृत एवं कन्या-पाठशाला और ब्रह्मपुरी आदि स्थानों में प्राथमिक शिक्षा की पाठशालाएं स्थापित कराईं। इसी प्रकार उसने ज़िलों में भी पाठशालाएं और दवाख़ाने स्थापित किये जाने की व्यवस्था की। उसने उदयपुर में 'सज्जन-यंत्रालय' नाम का छापाख़ाना भी क़ायम किया, जहां से 'सज्जन-कीर्ति-सुधाकर' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगा।

महाराणा शंभुसिंह के समय में दो दवाख़ाने खोले गये थे—एक उदयपुर शहर के भीतर और दूसरा बाहर। इस महाराणा ने उन्हें बंद कराकर अपने नामपर एक बड़ा अस्पताल क़ायम किया, जिसमें रोगियों की सब प्रकार की चिकित्सा एवं उपचार का यथोचित प्रबन्ध किया गया और वहां उनके रहने की भी व्यवस्था की गई। मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल वॉल्टर के नाम पर एक ज़नाना अस्पताल भी खोला गया और वहां स्त्री-रोगियों के सुबीते का प्रबंध किया गया। इसके सिवा चेचक का टीका लगाने का काम शुरू किया गया और जेलख़ाने के मकान की दुरुस्ती कराकर उसकी ठीक व्यवस्था की गई।

पोलिटिकल एजेंट की सिफ़ारिश से रेवरेंड डॉक्टर शेपर्ड को स्कॉटिश मिशन के लिए पीछोला तालाब के पास कुछ भूमि दी गई। महाराणा की आज्ञा से उक्त डॉक्टर ने उदयपुर शहर में एक अस्पताल, रेज़िडेन्सी के निकट गिरजाघर और उदयपुर तथा उसके आस-पास के कुछ गांवों में मदरसे भी स्थापित किये।

गद्दी पर बैठते ही महाराणा की शिक्षा के लिए जानी बिहारीलाल नियत हुआ, जो एक योग्य व्यक्ति एवं विद्वान् था। महाराणा के प्रतिभाशाली होने के कारण उसकी शिक्षा से उसके हृदय में विद्यानुराग का जो बीज अंकुरित हुआ वह विद्वानों के समागम से दिन-दिन बढ़ता ही गया। अपनी विद्याभिरुचि के कारण उसने अपने महलों में 'सज्जन-वाणी-विलास' नामक पुस्तकालय स्थापितकर उसे कविराजा श्यामलदास के

महाराणा का विद्यानुराग

निरीक्षण में रक्खा। उसमें संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिन्दी आदि भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रंथों का संग्रह हुआ और उनपर लगाने के लिए सोने की जो मुद्रा बनाई गई उसमें निम्नलिखित श्लोक खुदवाया गया—

सज्जनेन्द्रनरेन्द्रेण निर्मितं पुस्तकालयम् ।
आकरं सारग्रन्थानामिदं वाणीविलासकम् ॥

आशय—नरेन्द्र सज्जनेन्द्र (सज्जनसिंह) ने उत्तम ग्रंथों के संग्रह का 'वाणीविलास' नामक यह पुस्तकालय बनाया।

कविराजा श्यामलदास, ऊजल फ़तहकरण, बारहठ किशनसिंह, स्वामी गणेशपुरी आदि कवियों तथा विद्वानों के संसर्ग से वीर, शृंगार आदि रसों की हिन्दी एवं डिंगल भाषा की कविता की ओर महाराणा की रुचि बढ़ी. वह स्वयं कविता[1] बनाने लगा और शनैः शनैः कविता तथा संगीत का अच्छा मर्मज्ञ[2] हो गया। कविता का मर्म समझने के अतिरिक्त उसकी त्रुटियां सुधारने[3] में भी

(१) महाराणा की बनाई हुई बहुतसी कविताओं में से दोहे, सोरठे आदि का संग्रह बीजोल्यां के स्वर्गीय राव कृष्णसिंह ने 'रसिकविनोद' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया है।

(२) 'सहज राग अधरन अरुनाये। मानहु पान पान से खाये' ॥ अवतार-चरित की इस चौपाई के अर्थपर बहुत दिनों से मत-भेद चला आता था। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने इसका यह अर्थ किया था कि प्रकृत रंग ने होठों को ऐसा लाल कर दिया है कि मानो पान-जैसे पतले होठों ने पान खाया हो। महाराणा ने जब यह सुना तो कहा कि कवि का आशय होठों की प्रशंसा करने का नहीं है, वह तो केवल उनकी लाली का वर्णन करता है। फिर होठों से उपमा की योजना कर पान शब्द से पतले होठ का अर्थ ग्रहण करना कवि के अभिप्राय के विरुद्ध है। इसका सीधा-सादा अर्थ यही क्यों न किया जाय कि स्वाभाविक रंग से होठ ऐसे लाल थे मानो पांच सौ पान खाये हों। सरल और सरस होने से इस अर्थ को सबने पसन्द किया। मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० २२-२३।

(३) कोटे से चारण फ़तहदान ने कविराजा श्यामलदास के द्वारा महाराणा के पास २४ कवित्त भेजे। एक कवित में महाराणा ने "पहुमी कसोटी हाटक सी रेख रान रावरे सुयश की" यह चरण देखकर कहा कि जो पहुमी की जगह कारयपी शब्द हो तो कसोटी से वर्णमैत्री खूब हो जाय। फ़तहदान ने जब यह सुना तब महाराणा को धन्यवाद देते हुए लिखा कि एक एक कवित्त पर यदि मुझे एक एक लाख पसाव (प्रसाद, पारितोषिक) मिलता तो भी इतनी खुशी न होती, जितनी मेरी कविता सुधार देने से हुई है। इसी प्रकार जिन दिनों महाराणा बारहठ किशनसिंह से 'वंशभास्कर' सुनता था, एक दिन वह पढ़ते पढ़ते रुक गया और बोला

उसकी अच्छी गति थी। अपने काव्यानुराग के कारण वह उदयपुर में प्रति सोमवार कवि-सम्मेलन करता, जिसमें काव्यानुरागी पुरुष सम्मिलित होते, कविताएं पढ़ी जातीं तथा समस्यापूर्ति और अलंकारों का निरूपण हुआ करता था। धारणाशक्ति प्रबल होने के कारण उसको सैकड़ों श्लोक, कवित्त, सवैये, दोहे आदि कंठस्थ थे। अपने विद्या-प्रेम के कारण वह भिन्न भिन्न विषयों के देशी और विदेशी पंडितों एवं कवियों को अपने यहां आश्रय देता और उनका बड़ा आदरसत्कार[1] करता था। जो विदेशी विद्वान् उससे मिलने आते उनसे अनेक विषयों की चर्चा कर वह लाभ उठाता और विदा होते समय उन्हें सिरोपाव आदि प्रदान करता। जिस विद्वान् को एक बार भी उससे मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता वह उसकी गुणग्राहकता कभी न भूलता। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की रचनाओं से मुग्ध होकर महाराणा ने उसे बहुत आग्रहपूर्वक अपने यहां बुलाया, कई दिनों तक बड़े सम्मान के साथ रखा और विदा होते समय सिरोपाव के अतिरिक्त १०००० रु० प्रदान किये। इसी प्रकार आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की विद्वत्ता और उसके धार्मिक व्याख्यानों की चर्चा सुनकर उसने उसे उदयपुर बुलाया, बहुत दिनों तक बड़े सम्मान के साथ वहां ठहराकर उसके व्याख्यान सुने और उससे वैशेषिक दर्शन तथा

कि यहां चरण के कुछ अक्षर रह गये हैं, केवल इतना ही पाठ है "पहुमान रुक्किय अक्क ढक्किय ······बिच्छुरे"। महाराणा ने कुछ सोचकर कहा कि इसमें 'चक्क चक्किय' लिखना रह गया है और इसका पूरा पाठ ऐसा होगा—'पहुमान रुक्किय अक्क ढक्किय चक्क चक्किय बिच्छुरे'। कुछ दिनों पीछे जो दूसरी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई तो उसमें महाराणा का बतलाया हुआ ही पाठ मिला। मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० २३-२४।

(१) न्याय और अलंकार का ज्ञाता सुब्रह्मण्य शास्त्री द्रविड़, ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र का विद्वान् विनायक शास्त्री वेताल, सुप्रसिद्ध ज्योतिषी नारायणदेव, वैयाकरण पंडित अजितदेव आदि विद्वानों को महाराणा ने बाहर से बुलाकर अपने यहां रखा। उसने अपने मुख्य सलाहकार दधवाड़िया कवि श्यामलदास को कविराजा की उपाधि, पैरों में सोने के लंगर, ताज़ीम, चांदी की छड़ी आदि की प्रतिष्ठा तथा श्यामलबाग बनाने के लिए हाथीपोल दरवाज़े के बाहर ज़मीन दी और उसके घरपर मेहमान होकर उसे सम्मानित किया। साथ ही यह आज्ञा भी दी कि जबतक ताज़ीम के अनुसार उसे जागीर न दी जाय तब तक राज्य की ओर से सवारी, लवाज़िमा और खर्च (नियत रकम) उसे मिलता रहे। जोधपुर के अयाचक कविराजा मुरारिदान को भी ताज़ीम देकर महाराणा ने उसका सम्मान किया।

मनुस्मृति आदि ग्रंथ पढ़े। उसकी शिक्षा एवं उपदेश का महाराणा पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा, जिससे उसपर उसकी बड़ी श्रद्धा[1] हो गई और उसने आर्य-समाज की प्रतिनिधि सभा के सभापति का पद ग्रहण किया।

इतिहास और पुरातत्त्व से भी महाराणा को बड़ी रुचि थी। उसने कविराजा श्यामलदास (महामहोपाध्याय) को 'वीरविनोद' नाम का बृहद् इतिहास तैयार करने और उस कार्य के लिये १००००० रु० व्यय किये जाने की आज्ञा दी। कविराजा-द्वारा 'इतिहास-कार्यालय' की स्थापना होकर उसमें संस्कृत[2], हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं के ज्ञाता नियुक्त किये गये, भिन्न भिन्न भाषाओं के प्राचीन एवं अर्वाचीन ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्व-सम्बन्धी ग्रंथों का संग्रह हुआ और प्राचीन शिलालेखों की छापें तैयार कराने की व्यवस्था की गई। राजपूतों के भिन्न भिन्न वंशों के बड़वे (वंशावली-

---

(१) अजमेर में स्वामी दयानन्द सरस्वती के देहांत होने का समाचार मिलने पर महाराणा को बड़ा शोक हुआ और उसने निम्नलिखित पद्य बनाकर अपना उद्गार प्रकट किया—

नभ चव ग्रह ससि दीप-दिन दयानन्द सह सत्व।
वय त्रेसठ बतसर विचै पायो तन पंचत्व ॥

कवित्त—

जाके जीह जोर तें प्रपंच फिलासिफन को
अस्त सो समस्त आर्य्यमंडल तें मान्यो मैं।
वेद के विरुद्धी मत मत के कुबुद्धी मन्द
भद्र मद्र आदिन पैं सिंह अनुमान्यो मैं ॥
ज्ञाता खट ग्रंथन को वेद को प्रणेता जेता
आर्य्यविद्याअर्कहू को अस्ताचल जान्यो मैं।
स्वामी दयानन्दजू के विष्णुपद प्राप्त हू तें
पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यो मैं ॥१॥

मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृष्ठ २५।

(२) संस्कृत-साहित्य और व्याकरण का अपूर्व विद्वान् पं० रामप्रताप ज्योतिषी दसवीं सदी के पीछे के शिलालेखों के पढ़ने के लिए और पं० परमानन्द भटमेवाड़ा ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथों आदि का हिन्दी में खुलासा करने के लिए नियत किये गये।

लेखक) बुलाये गये, राज्य की ओर से उनका सम्मान किया गया और उनकी बहियों तथा वंशावलियों के आवश्यक अंशों की नक़लें तैयार कराई गई। इस प्रकार बहुत बड़ी सामग्री एकत्र हो जाने पर इतिहास का लिखा जाना प्रारम्भ हुआ और महाराणा ने उस काम में बड़ी ही दिलचस्पी ली, परन्तु खेद है कि उसकी जीवित दशा में वह पूरा न हो सका।

महाराणा के बनवाये हुए महल आदि

वि० सं० १६४० (ई० स० १८८३) में महाराणा ने उदयपुर से एक कोस पश्चिम बांसदरा पर्वतपर, जो समुद्र की सतह से ३१०० फुट ऊँचा है, सज्जनगढ़ नामक विशाल भवन बनवाना आरम्भ किया, पर उसकी जीवित दशा में उसका एक ही खंड, जिसमें पत्थर की खुदाई का बड़ा ही सुन्दर काम बना हुआ है, तैयार हो सका। महाराणा फ़तहसिंह के समय में यह काम किसी तरह पूरा हुआ। यहां से दूर दूर के गांवों, तालाबों, एवं पर्वतमालाओं का सुन्दर दृश्य तथा प्रकृति की मनोहर छटा देखते ही बनती है। इसके सिवा पीछोला तालाब के अन्दर के जगनिवास नामक महल में उसने अपने नाम पर सज्जननिवास नाम का एक सुन्दर भवन तैयार कराया, राजमहलों के दक्षिणी छोर पर एक विशाल बुर्ज बनवाने का कार्य आरम्भ किया, जो महाराणा फ़तहसिंह के समय में पूरा हुआ और उसका नाम 'शिवनिवास' रखा गया। भींडर में उसने गढ़ बनवाया, चित्तोड़गढ़ की मरम्मत का काम जारी कर आज्ञा दी कि उसमें प्रतिवर्ष २४००० रु० लगाये जायँ, और वहां के पुराने महलों की दुरुस्ती का काम छेड़ा, जो थोड़ा सा होकर रह गया। प्रसिद्ध जयसमुद्र नाम की मेवाड़ की सब से बड़ी झील की, जिसे महाराणा जयसिंह ने बनवाया था और जिसका संगमरमर का बांध दो पहाड़ों के बीच में बना है, दृढ़ता के लिये उसके पीछे कुछ दूरी पर उतना ही ऊँचा और १३०० फुट लम्बा दूसरा बांध उक्त महाराणा ने तैयार कराया था, परन्तु १८४ वर्ष तक दोनों बांधों के बीच का हिस्सा बिना भरे ही पड़ा रहा। वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) की अति वृष्टि को देखकर महाराणा सज्जनसिंह ने सोचा कि इस झील का बांध टूट जाने से गुजरात की ओर के बहुत गांवों के बह जाने की आशंका है, इसलिये उसने २००००० रु० ख़र्चकर पत्थर, चूना और मिट्टी से दोनों बांधों के मध्यवर्ती गड्ढे का $\frac{3}{4}$ हिस्सा भरवा दिया। बाक़ी का

हिस्सा महाराणा फ़तहसिंह के समय में भरा गया, जिससे बांध सुदृढ़, विस्तीर्ण तथा सुन्दर हो गया और उसपर वृक्ष लग जाने से उसकी शोभा और भी बढ़ गई।

महाराणा की बीमारी और मृत्यु

अपने पिछले वर्षों में महाराणा बीमार रहने लगा और अन्त में उसे पेट की शिकायत हो गई, जो उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। कुछ दिनों तक डॉक्टर की चिकित्सा होती रही और उससे आराम न होने पर दिल्ली के नामी हकीम महमूदखां का इलाज शुरू किया गया, पर जब उससे भी कोई लाभ न हुआ तब महाराणा ने पीड़ा के कारण शराब और अफ़ीम को मुँह लगाया, जिससे बीमारी और भी बढ़ गई। फिर यह समझकर कि जलवायु के परिवर्तन से मेरी दशा ज़रूर सुधर जायगी वह जोधपुर गया। वहां भी उसकी बीमारी कम न हुई और वह दिन दिन निर्बल होता गया, जिससे उदयपुर लौट आया। अन्त में वि० सं० १९४१ पौष सुदि ६ (ई० स० १८८४ ता० २३ दिसम्बर) को वह इस संसार से चल बसा।

महाराणा सज्जनसिंह प्रतापी, तेजस्वी, कुलाभिमानी[1], प्रजावत्सल, क्षत्रिय जाति का सच्चा हितचिंतक[2], कवियों तथा विद्वानों का गुण-

(१) वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में अंग्रेज़ी सरकार के बहुत अनुरोध करने और बैठक की शर्त तय हो जाने पर इङ्गलैंड के युवराज एडवर्ड एल्बर्ट का स्वागत करने के लिए महाराणा बंबई गया, परन्तु यह जानकर कि मेरी कुर्सी शर्त के ख़िलाफ़ रखी गई है उसपर न बैठा और शाहज़ादे से खड़े खड़े मुलाक़ात कर उदयपुर लौट गया।

वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में अंग्रेज़ी सरकार ने महाराणा को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब देना चाहा जिसे उसने अपने वंश की प्रतिष्ठा का विचार कर इस शर्त पर लेना मंजूर किया कि हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल लार्ड रिपन मेवाड़ में आकर अपने हाथ से ख़िताब दे।

(२) महाराणा अपनी जाति का कितना हितैषी और पक्षपाती था इसका पता उसकी निम्नलिखित कार्रवाई से चल जाता है—

वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में जोधपुर में यह ख़बर सुनकर कि जामनगर (काठियावाड़ में) के जाम वीभाजी की प्रार्थना के अनुसार अंग्रेज़ी सरकार ने उसकी मुसलमानी पासवान (उपपत्नी) के पुत्र को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया है, महाराणा बहुत भड़का और जोधपुर के महाराजा से मिलकर उसने राजपूताने के एजेंट कर्नल ब्रेडफ़र्ड के पास इस आशय के कई तार तथा ख़रीते भेजे कि 'अंग्रेज़ी सरकार को हम राजपूतों के ख़ानगी

महाराणा का व्यक्तित्व

ग्राहक[1], न्यायनिष्ठ[2], नीतिकुशल, दृढ़-संकल्प, उदार, विद्यानुरागी, बुद्धिमान् एवं विचारशील था। मेधावी तो वह ऐसा था कि जिन दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती से मनुस्मृति का राजधर्म-प्रकरण पढ़ता था उन दिनों घंटे भर में २२ श्लोकों का आशय याद कर लेता था। शिल्प-सम्बन्धी कार्यों से उसे विशेष रुचि थी और उनमें यहां तक उसकी गति थी कि अपने हाथ से मकानों के नक़्शे खींच लेता था, जिन्हें देखकर इंजीनियर लोग भी दंग रह जाते थे। वास्तव में वह मेवाड़ क्या समस्त राजस्थान के उन असाधारण प्रतिभाशाली, शक्तिसंपन्न एवं निर्भीक नरेशों में से था, जिनके नाम अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। उसे भले-बुरे, योग्य-अयोग्य मनुष्यों की अच्छी परख थी और वह सदा सत्समागम से लाभ उठाता, बुरे आदमियों की

मामलों में दख़ल न देना चाहिये। फिर उदयपुर लौटते समय उक्त महाराजा को साथ लेकर वह अजमेर में एजेंट गवर्नर जनरल से मिला और जामनगर के सम्बन्ध में बड़ी निर्भयता से बातचीत करते हुए कहा—'जामनगर के महाराजा की प्रार्थना सर्वथा अनुचित एवं अन्यायपूर्ण है, इसलिए अंग्रेज़ी सरकार को चाहिये कि उसे स्वीकार न करे'। इस पर महाराणा से बहुत कुछ बहस करने के बाद कर्नल ब्रैडफ़र्ड ने पूछा—'जामनगर राज्य के मामले से आपका क्या सम्बन्ध है? वह तो काठियावाड़ में है और आपका राज्य राजपूताने में'। यह सुनकर महाराणा ने कहा—'जामनगर राजपूताने की सीमा से बाहर तो ज़रूर है, परन्तु उसपर हमारी जाति का अधिकार है, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि अपनी जाति की तरफ़दारी करें। आप लोग भी अपनी जाति के बड़े पक्षपाती हैं'। इसपर उक्त कर्नल ने कहा—'इस सम्बन्ध की मिस्ल मंगवाकर मैं आपके पास भेज दूंगा'। इसके थोड़े ही दिनों पीछे महाराणा का देहान्त हो जाने के कारण इस मामले में और कोई कार्रवाई न हो सकी।

(१) देखो—महाराणा का विद्यानुराग सम्बन्धी वर्णन।

(२) पहले उदयपुर के बाज़ार में लावारिस जानवर घूमा करते, जो अनाज तथा शाक बेचनेवालों को बड़ी हानि पहुंचाते और जिनसे कभी कभी मनुष्यों को चोट भी आ जाती थी। ऐसे पशुओं को पुलिस के सिपाहियों से पकड़वा कर गोशाला में रखे जाने का महाराणा ने निश्चय किया। इसपर शहर के महाजनों ने हड़ताल का बड़ा उपद्रव मचाया, परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। महाजनों को बुलाकर उसने बहुत कुछ समझाया, किन्तु जब उसका कुछ फल न हुआ तब उनके पांच मुखियाओं को क़ैद कर लिया, जिससे उपद्रव तुरन्त शान्त हो गया। इसी प्रकार पहले पहल मेवाड़ में मर्दुमशुमारी का काम शुरू होने पर भीलों ने जब उपद्रव मचाया तब उदयपुर से सेना भेजकर महाराणा ने उनका दमन किया।

सोहबत से बचता तथा उन्हें एवं खुशामदी लोगों को कभी मुँह नहीं लगाता था। गुस्से की हालत में उसके चेहरे पर कभी कभी सख़्ती और बेरहमी के भाव दिखाई देते थे, जिन्हें वह बुद्धिमानी से रोक लेता था। खाने, पीने, सोने तथा जगने का समय अनियमित होने और पिछले दिनों में भोग-विलास की तरफ़ झुक जाने से उसका शरीर अनेक रोगों का घर हो गया, जिनकी तकलीफ़ के कारण उसने शराब, अफ़ीम आदि नशीली चीज़ों का इस्तिमाल बहुत बढ़ा दिया, जिससे दिन दिन उसका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया।

कोई कवि, गुणी या विद्वान् बाहर से उदयपुर जाता तो महाराणा उसका यथोचित आदर-सत्कार करता और विदा होते समय उसे सिरोपाव आदि देकर उसका उत्साह बढ़ाता[1]। उसके समय में उदयपुर नगर दूर दूर देशों के विद्वानों, कवियों और गुणिजनों का आश्रय एवं समागम-स्थान हो गया था। वहां प्रति सोमवार को कवियों तथा विद्वानों की सभा होती, जिसमें काव्य एवं शास्त्रचर्चा हुआ करती। यात्रार्थ नाथद्वारा तथा केसरियानाथ जानेवाले बम्बई आदि स्थानों के प्रसिद्ध एवं धनाढ्य पुरुषों में से जो उससे मिलने की अभिलाषा से उदयपुर जाते उनसे वह बड़ी प्रसन्नता से मिलता और उनका आदर करता, जिससे उसकी ओर वे सदा पूज्य दृष्टि रखते और उसकी कृपा को कभी नहीं भूलते।

महाराणा के धर्म-सम्बन्धी विचार स्वतन्त्र, उन्नत और उदार थे। उसे किसी धर्म या मतविशेष का आग्रह नहीं था। इसका परिचय उसने स्वामी दयानन्द सरस्वती-द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा का अध्यक्ष होकर दिया। वह अपना अमूल्य समय और राज्य का द्रव्य नाच, रंग, शिकार आदि फ़ुज़ूल

---

(१) 'प्रतापनाटक' नामक गुजराती ग्रन्थ के कर्त्ता गणपतराम राजाराम भट्ट ने गुजरात के अनेक राजाओं एवं सेठ-साहूकारों को अपना ग्रन्थ पढ़कर सुनाया और बम्बई के सुप्रसिद्ध सेठ लखमीदास खीमजी ठक्कर ने जब उसका नाटक सुना तब प्रसन्न होकर उससे कहा—'उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह बड़े गुणग्राही हैं, तुम उनके यहां जाओ। वे तुम्हारा नाटक प्रसन्नता पूर्वक सुनेंगे और तुम्हारा आदर करेंगे'। इस प्रकार उत्साह दिलाये जाने पर अजमेर तथा चित्तोड़ होता हुआ वह उदयपुर पहुंचा। उसका ग्रन्थ सुनकर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और उसे ४०० रु० (सरूपशाही) पुरस्कार दिया। बाहर के ग्रन्थकारों एवं पत्र-सम्पादकों की भी महाराणा बराबर सहायता करता था।

बातों में नष्ट न कर राज्य-प्रबन्ध, लोकहित एवं शिक्षाप्रचार सम्बन्धी कार्यों में लगाता। गद्दी पर बैठते ही स्वार्थी लोगों ने उसपर अपना प्रभाव जमाना चाहा, परन्तु वह उनकी चाल ताड़ गया, जिससे उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों पर उसने कभी ध्यान न दिया। जानी विहारीलाल जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यक्ति के निरीक्षण में शिक्षा प्राप्त करने से उसे बड़ा लाभ हुआ। जानी विहारीलाल की शिक्षा का ही यह प्रभाव था कि महाराणा पर अपने पिता की बुरी आदतों का कुछ असर न पड़ा।

महाराणा ने उदयपुर में सफ़ाई, रोशनी आदि का अच्छा प्रबन्ध कर उसकी शोभा बढ़ाई। सड़कों, बाग़ों, किलों, महलों, तालाबों तथा झीलों की मरम्मत कराई, सज्जननिवास बाग़ बनवाया, झीलों से नहरें निकलवाकर सिंचाई का सुप्रबन्ध किया, अनेक स्थानों में सड़कें बनवाई और अपने राज्य में रेल बनाने की आज्ञा दी। उदयपुर में अस्पताल तथा ज़िलों में दवाखाने क़ायम कराकर उसने रोगियों की चिकित्सा की सुव्यवस्था की और जेलखाने का भी अच्छा इन्तिज़ाम किया।

महद्राजसभा की स्थापना कर उसने न्याय-विभाग का सुधार किया। इस कार्य में उसे अनेक बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके सिवा अपने राज्य में उसने बन्दोबस्त का काम जारी कराया, पहाड़ी प्रदेश के प्रबन्ध के लिए 'शैलकांतार-सम्बन्धिनी सभा' स्थापित की, अंग्रेज़ी सरकार से नमक का समझौता किया, राज्य की आय बढ़ाई; सेना, पुलिस, ख़ज़ाना, हिसाब, ज़ुंगी, टकसाल आदि महकमों का अच्छा प्रबन्ध किया और प्रत्येक परगने का बजट (आय-व्यय) निश्चित कर दिया।

अपने विद्यानुराग की प्रेरणा से उसने 'सज्जनवाणीविलास' नामक अपना निजी पुस्तकालय स्थापित किया, वीरविनोद नाम का बृहद् ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे जाने की व्यवस्था की और अपने नाम पर छापाखाना क़ायम कर 'सज्जनकीर्त्ति-सुधाकर' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित कराना आरम्भ किया, अपने राज्य में शिक्षाप्रचार कराने के लिये उसने एज्युकेशन कमेटी और कई स्कूल एवं पाठशालाएं स्थापित कीं। अनाथालय, पागलखाना और गोशाला खोली, वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) के अकाल के समय अपनी दीन प्रजा की

रक्षा का ऐसा अच्छा आयोजन किया कि वह अधिकांश बच गई और 'देश-हितैषिणी' सभा स्थापित कर लोकोपयोगी कार्यों की ओर जनसाधारण का अनुराग बढ़ाया।

देशी राज्यों के बीच मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक समझकर महाराणा ने जोधपुर, जयपुर, कृष्णगढ़, झालावाड़, रीवां, इन्दौर आदि अनेक राज्यों के स्वामियां के साथ मेलजोल बढ़ाया और उदयपुर तथा जोधपुर के नरेशों की शिरस्ते की मुलाक़ात का सिलसिला, जो बहुत वर्षों से टूट गया था, फिर ज़ारी किया। पॉलिटिकल अफ़सरों के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा रहा और वे भी हमेशा उसका लिहाज़ रखते थे। अपने सरदारों के साथ भी उसका सम्बन्ध सदा उत्तम रहा। वह उनका बड़ा ख़याल रखता और उनके हितसाधन में सदा तत्पर रहता। उनके अधिकार स्थिर रखने के लिये कुछ सरदारों के साथ उनकी इच्छा के अनुसार उसने क़लमबन्दी की और मेवाड़ का दौरा करते समय कई सरदारों के ठिकानों में जाकर उन्हें सम्मानित किया।

महाराणा राजसिंह (प्रथम) के पीछे मेवाड़ की दशा को उन्नत करनेवाला उसके जैसा और कोई महाराणा हुआ ही नहीं। राज्य का अधिकार मिलने के बाद केवल ६ वर्ष के राजत्वकाल में ही उसने अपने राज्य की उन्नति और प्रजा की भलाई के बहुतसे काम किये। कुछ और अधिक काल तक वह जीवित रहता तो मेवाड़ की और भी उन्नति होती।

उसका क़द लम्बा, रंग गेहुँआ, शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ठ, आंखें बड़ी और चेहरा बड़ा प्रभावशाली था।

महाराणा फ़तहसिंह

महाराणा फ़तहसिंह का जन्म वि० सं० १६०६ पौष सुदि २ (ई० स० १८४६ ता० १६ दिसम्बर) को हुआ था। वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के चौथे पुत्र अर्जुनसिंह के वंशज शिवरती के महाराज दलसिंह का तीसरा पुत्र था।

महाराणा का जन्म और राज्याभिषेक
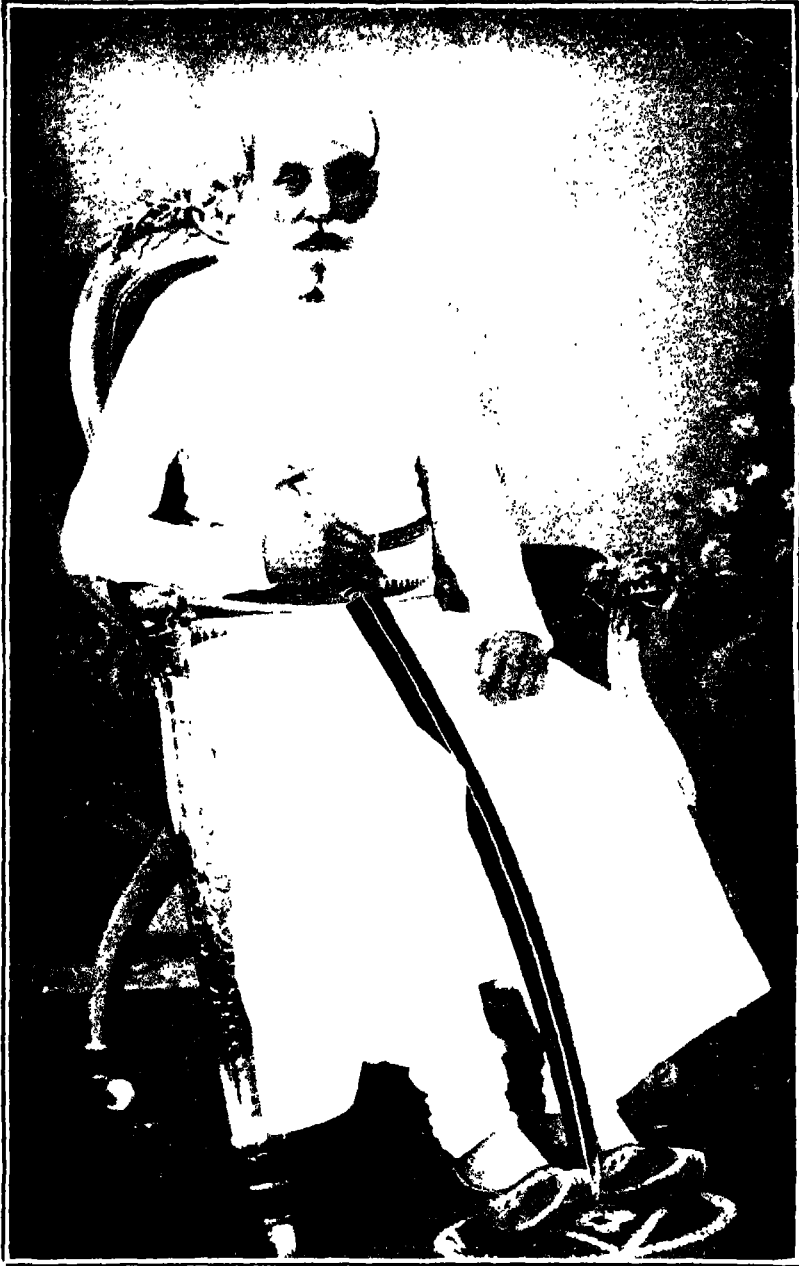
श्रीमान् महाराजाधिराज महाराणा सर फतहसिंहजी
बहादुर, जी. सी. एस्. आई., जी. सी. वी. ओ

महाराणा जवानसिंह के पीछे महाराणा सरदारसिंह से लगाकर सज्जनसिंह तक चारों महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के दूसरे पुत्र बागोर के स्वामी महाराज नाथसिंह के वंशज थे और वहीं से गोद आये थे। महाराणा सज्जनसिंह के पुत्र न होने की हालत में नाथसिंह के वंशजों में से कोई गोद न लिया गया, जिसका कारण यह हुआ कि डॉक्टर स्ट्रैटन ने वि० सं० १६३६ (ई० स० १८८२) अर्थात् महाराणा सज्जनसिंह के समय महाराणाओं के वंशवृक्ष के सम्बन्ध में लिखी हुई अपनी याददाश्त में या तो बिना पूरी जाँच किये या भूल से यह लिखा कि महाराज नाथसिंह के द्वितीय पुत्र सूरतसिंह ने अपुत्र होने के कारण महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के वंशधर हींता के राणावतों में से रूपसिंह को गोद लिया, जिससे उस(सूरतसिंह)के वंशजों में संग्रामसिंह (द्वितीय) का रक्त नहीं रहा, पर संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र बाघसिंह (करजाली के) और चौथे बेटे अर्जुनसिंह (शिवरती के) के वंशधरों में आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के वंश से ही गोद लेने के कारण उनमें उस (संग्रामसिंह) का रक्त विद्यमान है। यही बात मेवाड़ के रेज़िडेन्ट कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक "बायोग्रॉफिकल स्केचीज़ ऑफ दी चीफ्स ऑफ़ मेवार[1]" में दोहराई। इस प्रकार उक्त डॉक्टर तथा कर्नल वॉल्टर दोनों ने बागोरवालों का राज्य का हक़ बिलकुल उड़ा दिया, जिससे उसके पीछे मेवाड़ की गद्दी का वास्तविक हक़दार संग्रामसिंह (द्वितीय) के तीसरे पुत्र बाघसिंह (करजाली के) का वंशधर महाराज सूरतसिंह था, परन्तु वह एक निस्पृह तथा उदासीन वृत्ति का सरदार था, इसलिये उसके ऊपर मेवाड़ जैसे विशाल राज्य का भार छोड़ना उचित न समझकर उसकी स्वीकृति से ही महाराणा शंभुसिंह तथा सज्जनसिंह की राणियों, मेवाड़ के तत्कालीन रेज़िडेन्ट कर्नल वॉल्टर, अधिकांश सरदारों तथा प्रधान अधिकारियों ने उस(सूरतसिंह)के भाई फ़तहसिंह को, जिसे शिवरती के महाराज गजसिंह ने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, गद्दी पर बिठाना स्थिर किया। तदनुसार वि० सं० १६४१ पौष सुदि ६ (ई० स० १८८४ ता० २३ दिसम्बर) को उसकी गद्दीनशीनी और माघ सुदि ७ (ई० स० १८८५ ता० २३ जनवरी) को राज्याभिषेकोत्सव हुआ।

---

[1] पृष्ठ १-२।

चैत्र वदि ३ (ई० स० १८८५ ता० ४ मार्च) को राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल (एडवर्ड ब्रैडफ़र्ड) अँग्रेज़ी सरकार की ओर से गद्दीनशीनी का खरीता लेकर उदयपुर गया और वहां एक बड़ा दरबार हुआ, जिसमें उसने वह खरीता पढ़कर सुनाया, फिर वि० सं० १९४२ श्रावण सुदि १२ (ता० २२ अगस्त) के दरबार में कर्नल वॉल्टर ने सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से महाराणा को पूर्ण अधिकार मिलने की घोषणा की।

उदयपुर में जोधपुर, कृष्णगढ़, जयपुर और ईडर के महाराजाओं का आगमन

इसी वर्ष जोधपुर का महाराजा जसवंतसिंह, कृष्णगढ़ का स्वामी शार्दूलसिंह, जयपुराधीश सवाई माधवसिंह और ईडर-नरेश केसरीसिंह मातमपुर्सी के लिये उदयपुर गये और वहां कुछ दिन ठहरकर वापस चले गये। इस अवसर पर जयपुर-नरेश ने अपनी उदारता एवं दानशीलता का अच्छा परिचय दिया। उसने उदयपुर की राजकीय संस्कृत पाठशाला के विद्यार्थियों को एक हज़ार रुपये छात्रवृत्ति के रूप में दिये। चारणों, ब्राह्मणों आदि को बहुतसा धन लुटाया और प्रसिद्ध देव-मन्दिरों में भी बहुत कुछ भेंट किया। इसी मौके पर उसने महाराजकुमार भूपालसिंहजी के साथ अपनी पुत्री का सम्बन्ध स्थिर किया, परन्तु कुछ दिनों पीछे उक्त राजकुमारी की मृत्यु हो गई, जिससे विवाह न हो सका।

शक्तावत केसरीसिंह का क़ैद से छूटना

महाराणा सज्जनसिंह के समय में शक्तावत केसरीसिंह ने, जैसा कि उक्त महाराणा के वृत्तान्त में लिखा जा चुका है, बोहेड़े पर कब्ज़ा कर लिया था। बहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी जब उसने ठिकाने का अधिकार न छोड़ा तब महाराणा की आज्ञा से वह क़ैद कर लिया गया। महाराणा फ़तहसिंह ने नेकचलनी की ज़मानत देने पर उसे क़ैद से मुक्त किया और उसकी नज़र स्वीकार कर उसे अपने तनख़्वाहदार सरदारों में भर्ती किया और पीछे से उसको दो गांव प्रदान किये।

जनाना अस्पताल के नये भवन का शिलान्यास

वि० सं० १९४२ कार्तिक सुदि २ (ई० स० १८८५ ता० ८ नवम्बर) को हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड डफ़रिन का उदयपुर जाना हुआ उस समय महाराणा ने महाराणा सज्जनसिंह द्वारा स्थापित ज़नाना अस्पताल (वॉल्टर फ़ीमेल हॉस्पिटल) के लिए एक नई

इमारत तैयार किये जाने की आज्ञा देकर लेडी डफ़रिन के हाथ से उसका शिलारोपण कराया।

महाराणा का सलूंबर जाना

वि० सं० १९४३ (ई० स० १८८६) में सलूंबर के सरदार रावत जोधसिंह की कन्या के विवाह के अवसर पर महाराणा ने सलूंबर जाकर उसे सम्मानित किया।

महाराणी विक्टोरिया की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर महाराणा की उदारता

वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की पचास-साला जुबिली के अवसर पर महाराणा की आज्ञा से मेवाड़ में भी बड़ी खुशी मनाई गई, राजधानी में रोशनी हुई, बहुतसे क़ैदी छोड़े गये और भूखों को भोजन कराया गया। इसके सिवा अफ़ीम के अतिरिक्त और सब वस्तुओं का राहदारी[1] महसूल मुआफ़ कर दिया गया और १०००० रु० 'इम्पीरियल इन्स्टीटयूट लंडन' तथा ५००० रु० लेडी डफ़रिन फ़ण्ड में दिये गये। इस जुबिली की स्मृति स्थिर रखने के लिए महाराणा ने सज्जन-निवास बाग़ में 'विक्टोरिया हॉल' नाम का विशाल भवन बनवाकर उसमें पुस्तकालय तथा अजायबघर स्थापित कराया और संगमरमर की उक्त महाराणी की मूर्ति इंगलिस्तान में तैयार होने की आज्ञा दी। उक्त पुस्तकालय में भिन्न भिन्न भाषाओं के पुरातत्व एवं इतिहास-सम्बन्धी ग्रंथों का इतना बड़ा संग्रह है, जितना राजपूताने के और किसी पुस्तकालय में नहीं है। इसी प्रकार अजायबघर में भी वि० सं० पूर्व की दूसरी से लगाकर वि० सं० की सत्रहवीं शताब्दी तक के मेवाड़ के प्राचीन शिलालेखों का बहुत बड़ा संग्रह है। इसी वर्ष जुबिली के उपलक्ष्य में महाराणा को अंग्रेज़ी सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई० की उपाधि मिली।

महाराणा के दूसरे कुँवर का जन्म

मार्गशीर्ष सुदि ११ (ता० २६ नवम्बर) को अपने द्वितीय कुंवर के जन्मोत्सव के अवसर पर महाराणा ने याचकों तथा मुहताजों को हज़ारों रुपये बांटे, सरदारों और चारणों को हाथी, सिरोपाव आदि प्रदान किये और धव्वा (धायभाई) बदनमल[2] को,

---

(१) मेवाड़ में होकर अन्यत्र जानेवाले बाहरी माल पर का महसूल।

(२) बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह की बहन का विवाह महाराणा सरदारसिंह के भतीजे

जिसकी जागीर महाराणा सज्जनसिंह के समय में खालसा हो गई थी, २००० रु० वार्षिक आय की जागीर दी।

फाल्गुन वदि ८ (ता० ५ फ़रवरी) को राय मेहता पन्नालाल के भतीजे जोधसिंह के विवाह के प्रसंग पर महाराणा ने उसकी मेहमानदारी स्वीकार कर पन्नालाल तथा जोधसिंह[1] दोनों को सोने के लंगर प्रदान किये।

मेहता पन्नालाल का सम्मान

क्षत्रिय जाति में सुधार की दृष्टि से राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल कर्नल वॉल्टर के नाम पर 'वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा' की स्थापना सारे राजपूताने में हुई, तदनुसार उसकी शाखा महाराणा की आज्ञा से उदयपुर में भी वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में स्थापित हुई, जिससे राजपूत सरदारों में बहुविवाह, बालविवाह तथा शादी एवं ग़मी के मौकों पर फ़ुज़ूलखर्ची की रोक हुई, किन्तु सरदारों में उपपत्नियां (पासवानें) करने की तथा टीके (तिलक) के रूप में कन्या के पक्षवालों से अधिक रुपये लेने की चाह बढ़ती ही गई, जिससे लाभ की अपेक्षा उनको हानि अधिक हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि महाराणा ने टीके में अधिक रुपये लेने की प्रगति को रोकने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उसमें सफलता न हुई।

महाराणा का वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा की शाखा अपने राज्य में स्थापित करना

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में महाराणी विक्टोरिया का शाहज़ादा ड्यूक ऑफ़ केनॉट हिन्दुस्तान की सैर करता हुआ उदयपुर गया। मेवाड़ में इंग्लिस्तान के राजकुमार के आने का यह पहला ही मौक़ा था, इसलिये महाराणा ने उसका आदर-सत्कार करने में लाखों रुपये खर्च किये। राजधानी से एक मील पश्चिमोत्तर देवाली

केनॉट बन्द का बनवाया जाना

शार्दूलसिंह के साथ हुआ था। उक्त राजकुमारी के धायभाई होने के कारण बदनमल का उसके साथ बीकानेर से उदयपुर जाना हुआ। महाराणा शंभुसिंह की उसपर विशेष कृपा रही और उसने उसको 'राव' की उपाधि, दोनों पैरों में सोना व जागीर प्रदान की। वह महाराणा सज्जनसिंह के समय में इजलास ख़ास का मेम्बर रहा।

(१) जोधसिंह मेहता लक्ष्मीलाल का पुत्र था, वह विद्या एवं इतिहास का प्रेमी था।

गांव के पास पहले एक तालाव था, जिसे 'देवाली का तालाव' कहते थे और जिसका बाँध ऊंचा न होने से उसका जल दूर तक नहीं फैल सकता था। इसलिये महाराणा ने उसके द्वारा आबपाशी की तरक़्क़ी के विचार से एक नया तथा ऊंचा बाँध बनवाने का निश्चय कर उक्त शाहज़ादे के हाथ से उसकी नींव दिलाकर उस बाँध का नाम 'कनॉट बन्द' रखा, और शाहज़ादे के आग्रह से उस तालाव का नाम फ़तहसागर रखा गया। इस बाँध से तालाव का विस्तार और उदयपुर के आसपास की प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ गई।

बागोर का ख़ालसा किया जाना

भाद्रपद वदि ४ (ता० १४ अगस्त) को बागोर के महाराज शक्तिसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर महाराणा ने उसकी जागीर ख़ालसा कर ली।

शाहज़ादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर जाना

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८९०) में इंग्लिस्तान के युवराज सप्तम एडवर्ड के बड़े शाहज़ादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर जाना हुआ। महाराणा ने उसका सम्मान कर उससे सज्जन-निवास बाग़ में विक्टोरिया हॉल के सामने महाराणी विक्टोरिया की संगमरमर की मूर्ति का उद्घाटन कराया।

सेठ जुहारमल का मामला

सेठ जोरावरमल बापना ने कठिन अवसरों पर महाराणाओं को ऋण देकर तथा अन्य प्रकार से मेवाड़ की अच्छी सेवा की थी। महाराणा सरूपसिंह के समय में राज्य पर २०००००० रु० से अधिक कर्ज़ था, जिसमें अधिकांश उसी का था। कर्ज़ का फ़ैसला कर देने की उक्त महाराणा की इच्छा जानकर उसने अपनी हवेली पर महाराणा की मेहमानदारी की और उस (महाराणा) की इच्छानुसार ऋण का निपटारा कर दिया। सेठ जोरावरमल के इस बड़े त्याग से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे कुंडाल गांव दिया और उसके पुत्रों तथा पौत्रों की भी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

जोरावरमल के द्वितीय पुत्र चंदनमल का पुत्र जुहारमल हुआ। महाराणा फ़तहसिंह के समय में चित्तोड़ का रेल्वे-स्टेशन उदयपुर से क़रीब ६९ मील दूर था, जिससे मुसाफ़िरों को उक्त स्टेशन तक पहुंचने में बड़ी असुविधा एवं कठिनाई उठानी पड़ती थी, इसलिये उनके सुबीते के लिए महाराणा ने शहर

उदयपुर तथा चित्तोड़गढ़-स्टेशन के बीच 'मेलकार्ट' चलाना स्थिर कर इस काम को सेठ जुहारमल की निगरानी में रखा।

कई बरसों तक मेलकार्ट चला, परन्तु उस काम में बड़ा नुक़सान रहा, इसपर महाराणा ने जुहारमल को हानि की पूर्ति करने तथा पहले का बक़ाया निकाला हुआ राज्य का ऋण चुका देने की आज्ञा दी। उस समय उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, जिससे वह महाराणा की आज्ञा का पालन न कर सका। इसपर महाराणा ने राज्य के रुपयों की वसूली तक के लिए उसका पारसोली गांव अपने अधिकार में कर लिया।

श्यामजी कृष्णवर्मा की नियुक्ति

इन्हीं दिनों अजमेर से श्यामजी कृष्णवर्मा बैरिस्टर को महाराणा ने महद्राजसभा का मेम्बर नियत कर उदयपुर बुलाया, जहां कुछ समय तक रहने के पश्चात् वह जूनागढ़ राज्य का दीवान नियुक्त होने से वहां चला गया, परन्तु वहां मनमुटाव हो जाने के कारण थोड़े ही दिनों पीछे उदयपुर लौट गया और कुछ काल तक अपने पूर्व-पद पर बना रहा।

बन्दोबस्त का काम पूरा होना

महाराणा सज्जनसिंह के समय वि० सं० १६३५ (ई० स० १८७८) में मेवाड़ राज्य में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, बन्दोबस्त का काम शुरू हुआ, जो वि० सं० १६५० (ई० स० १८९३) तक जारी रहा। पैमाइश का कार्य समाप्त हो जाने पर मि० विंगेट ने नकद रुपयों में हासिल लिये जाने की नई तजवीज़ पेश की, जिसे महाराणा ने मंजूर कर ली। उस तजवीज़ के अनुसार २० वर्ष के लिए पहाड़ी प्रदेशों को छोड़कर मेवाड़ राज्य के खालसे का बंदोबस्त हुआ और किसानों के लाभ के लिए गांवों में अस्पताल तथा मदरसे बनवाने के निमित्त उनके लगान में फ़ी रुपया एक आना बढ़ाया गया[1]। अवधि पूरी हो जाने पर भी वही बन्दोबस्त कई वर्षों तक जारी रहा।

महाराणा सज्जनसिंह ने लोगों के सुबीते तथा व्यापार की वृद्धि के लिए चित्तोड़ से उदयपुर तक रेल्वे बनाये जाने की आज्ञा दी और उसका काम शुरू

(१) ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७८) में किसानों के आन्दोलन करने पर यह लागत फ़ी रुपया आधा आना कर दी गई।

उदयपुर चित्तोड़ रेल्वे का बनाया जाना

किये जाने के लिए एक इंजीनियर भी बुला लिया था, परन्तु उक्त महाराणा का देहान्त हो जाने से कई साल तक रेल का बनना बन्द रहा। अन्त में उसकी आवश्यकता देखकर वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में महाराणा फ़तहसिंह ने मि० कैम्बेल टॉमसन की निगरानी में चित्तोड़ से देबारी के घाटे तक रेल बनवाई, परन्तु देबारी का स्टेशन उदयपुर से ८ मील दूर होने के कारण लोगों को असुविधा बनी ही रही। फिर वह उक्त नगर तक बढ़ादी गई, जिससे वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) के भयंकर अकाल के समय उदयपुर में बाहर से अन्न आदि लाने में बड़ी सुविधा हुई।

वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में राय मेहता पन्नालाल सी. आई. ई. ने यात्रा जाने के लिए छः मास की छुट्टी ली, तब उसकी जगह महकमा

महकमा खास से मेहता पन्नालाल का अलग होना

खास के कार्य पर कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह कायस्थ स्थानापन्न नियत किये गये, फिर उसका इस्तीफ़ा पेश होने पर वे ही स्थायीरूप से नियत हुए।

ई० स० १८९६ (वि० सं० १९५३) में भारत का वाइसराय लॉर्ड एल्गिन उदयपुर गया। राजधानी की प्राकृतिक छटा को देखकर वह बहुत प्रसन्न

लॉर्ड एल्गिन का उदयपुर जाना

हुआ और उसने जगदीश के मन्दिर में हाथ में पहनने का सोने का एक कड़ा भेट किया। यह पहला वाइसराय था, जिसने चित्तोड़ से देबारी तक रेल-द्वारा यात्रा की।

वि० सं० १९५४ (ई० स० १८९७) में श्रीमती महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के मौके पर भी उदयपुर में बड़ा उत्सव हुआ, पिछोला तालाब

महाराणा की सलामी में वृद्धि

पर रोशनी हुई, ९९ क़ैदी छोड़े गये और ग़रीबों तथा विद्यार्थियों को भोजन कराया गया। इस अवसर पर अंग्रेज़ी सरकार की ओर से महाराणा की जाती सलामी २१ तोपों की कर दी गई और उसकी महाराणी को 'ऑर्डर ऑफ़ दी क्राउन ऑफ इन्डिया' की उपाधि मिली। राजपूताने की यह पहली महाराणी है, जो उक्त उपाधि से भूषित की गई।

इसी साल महाराणा ने मोरबी राज्य के कुमार हरभाम को मदद्राज-

कुंवर हरभाम की नियुक्ति

सभा का मेम्बर बनाकर उदयपुर बुलाया, जो दो वर्ष तक वहां ठहरने के पश्चात् पीछा काठियावाड़ को लौट गया।

वि० सं० १६५६ (ई० स० १८६६) में समय पर वर्षा न होने से मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा। बोई हुई फ़सल बिलकुल सूख गई, जिससे अनाज

मेवाड़ में भीषण अकाल

का भाव इतना बढ़ गया कि उसके न मिलने की हालत में ग़रीब लोग तो शाक-पात एवं वन्य-पशु आदि जो कुछ मिल सका उसी पर निर्वाह करने लगे और घास के अभाव में उन्होंने पशुओं को 'हथिया थूहर' के पत्ते और दरख्तों की छालें खिलाना शुरू कर दिया। बहुत-से क्षुधातुर प्राणी अपने बच्चों को बेचकर पेट भरने लगे और सारे राज्य में हाहाकार मच गया। ऐसे संकट से अपनी ग़रीब प्रजा को बचाने की महाराणा ने यथासाध्य चेष्टा की। उसने बाहर से हज़ारों मन अन्न मंगवाया, बड़े बड़े क़स्बों में ख़ैरातख़ाने खोले, इमदादी काम (Relief works) जारी किये और व्यापारियों को मदद दी, परन्तु ये सब उपाय निष्फल हुए। इस घोर दुर्भिक्ष से राज्य को बड़ी हानि पहुंची। लाखों मनुष्य एवं असंख्य पशु मर गये। दूसरे वर्ष यथेष्ट वृष्टि होने से फ़सल तो अच्छी हुई पर वह अच्छी तरह पकी भी नहीं कि लोगों ने उसे खाना आरम्भ कर दिया, जिससे बहुतसे मनुष्य हैज़ा, पेचिश आदि रोगों के शिकार बन गये। इस प्रकार मेवाड़ की आबादी, जो वि० सं० १६४७ (ई० स० १८६१) में १८४५००८ थी, घट कर वि० सं० १६५७ (ई० स० १६०१) में सिर्फ़ १०१८८०५ रह गई।

वि० सं० १६५७ (ई० स० १६०१) में सलूंबर के सरदार रावत जोधसिंह का देहान्त हो गया। उसके पुत्र न था, जिससे उसने पहले भदेसर के सरदार

खुमाणसिंह का सलूंबर का स्वामी बनाया जाना

भूपालसिंह के पुत्र तेजसिंह को, फिर कुछ दिनों पीछे तेजसिंह की मृत्यु हो जाने पर उसके भाई मानसिंह को गोद लिया था, परन्तु वे दोनों उसकी जीवित दशा में ही इस संसार से चल बसे, इसलिए महाराणा ने बंबोरे के सरदार रावत ओनाड़सिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाया। ओनाड़सिंह के भी निस्संतान मर जाने पर महाराणा ने चावंड के स्वामी रावत खुमाणसिंह को सलूंबर का सरदार बनाया।

वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में उदयपुर में बागोर के अधिकारच्युत सरदार महाराज सोहनसिंह का शरीरान्त हो जाने पर महाराणा ने उसके

महाराज सोहनसिंह की मृत्यु

ज़नाने आदि को बागोर की हवेली में रहने की आज्ञा देकर उनके निर्वाह के लिये रकम नियत कर दी।

इसी वर्ष महाराणा के बड़े भाई शिवरती के स्वामी महाराज गजसिंह

हिम्मतसिंह का शिवरती का स्वामी होना

की भी मृत्यु हुई। उसके कोई संतति न थी, इसलिये महाराणा ने करजाली के महाराज सूरतसिंह के बड़े पुत्र हिम्मतसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाया।

ता० १ जनवरी ई० स० १९०३ (वि० सं० १९५९ पौष सुदि २) को शाहंशाह सप्तम एडवर्ड की गद्दीनशीनी की खुशी में दिल्ली में एक बड़ा दरबार हुआ,

दिल्ली दरबार

जिसमें शाहंशाह का छोटा भाई ड्यूक ऑफ़ केनॉट और भारत के सभी नरेश तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए। हिन्दुस्तान के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड कर्ज़न के विशेष अनुरोध करने पर ई० स० १९०२ ता० ३० दिसम्बर (वि० सं० १९५९ पौष सुदि १) को महाराणा उदयपुर से रवाना हुआ और ३१ दिसम्बर की रात को दिल्ली पहुंचा, परन्तु लम्बी सफ़र की थकान से ज्वर हो जाने के कारण दरबार में शरीक न हो सका। इसपर लॉर्ड कर्ज़न ने अपनी ओर से खेद प्रकाशित किया।

वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में मेवाड़ में प्रथमवार प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। यह संक्रामक रोग पहले राजियावास नामक गांव में, जो कोठारिये

मेवाड़ में प्लेग का प्रकोप

के पास है, शुरू हुआ फिर शनैः शनैः सारे राज्य में फैल गया। तब इससे बचने के लिए राज्य की ओर से लोगों को हिदायत हुई कि चूहों के मरते ही घर खाली कर दिये जायँ और बीमार अलग रखे जायँ, पर उन्होंने उसपर अमल न किया, जिससे दिन दिन बीमारी का ज़ोर बढ़ता ही गया। अन्त में लोग जब यह समझ गये कि घर छोड़ देने से ही हम प्लेग से बच सकते हैं तब खेतों में छप्पर डालकर बस गये, पर वहां भी वे बीमार पड़ने लगे और हज़ारों मनुष्य मर गये।

वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में महाराणा ने कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाले अर्जुनसिंह का इस्तीफ़ा मंज़ूर कर महकमाखास का काम

मंत्रियों का तबादला

मेहता भोपालसिंह तथा महासानी हीरालाल पंचोली को सौंपा, परन्तु कुछ वर्षों पीछे उन दोनों की मृत्यु हो जाने पर वि० सं० १६६६ (ई० स० १६१२) में कोठारी बलवन्तसिंह को फिर नियुक्त किया जो क़रीब दो वर्ष तक उक्त महकमे का कार्य करता रहा।

वि० सं० १६६३ (ई० स० १६०६) में बीजोल्यां के सरदार राव सवाई कृष्णदास के निःसन्तान मर जाने पर कामा का सरदार पृथ्वीसिंह बिना महाराणा की अनुमति के बीजोल्यां का मालिक बन बैठा। इसपर महाराणा की आज्ञा से सहाड़ा के हाकिम बख्शी मोतीलाल पंचोली ने बीजोल्यां के गढ़ पर अधिकार करना चाहा और उसके समझाने पर पृथ्वीसिंह ने गढ़ खाली कर दिया तथा महाराणा के पास अर्ज़ी भेजकर अपना अपराध क्षमा कराया। अन्त में जब उस(महाराणा)को यह मालूम हुआ कि कृष्णदास का सबसे नज़दीकी रिश्तेदार पृथ्वीसिंह ही है तब उसने उस (पृथ्वीसिंह) को कृष्णदास का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया।

कामा के सरदार पृथ्वीसिंह का बीजोल्यां का स्वामी बनाया जाना

वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०६) में महाराणा एकलिंगजी के गोस्वामी कैलाशानन्द को साथ लेकर वैशाख वदि १० (ता० १५ अप्रेल) को उदयपुर से हरद्वार-यात्रा के लिये रवाना हुआ और एक दिन कृष्णगढ़ तथा ३ रोज़ जयपुर में ठहरकर देहरादून होता हुआ हरद्वार पहुंचा। वहां उसने विधिपूर्वक श्राद्ध कर सोने का तुलादान किया; ब्राह्मणों, साधुओं तथा ग़रीबों को भोजन कराया और उनको रुपये दिये एवं अपने तीर्थगुरु को यथेष्ट धन देकर सन्तुष्ट किया। वहां के ऋषिकुल की सहायता के लिए १०००० रु० दिये और भविष्य में ख़िज़ाब न करने का संकल्प किया।

महाराणा की हरद्वार-यात्रा

इस वर्ष मेवाड़ में श्रावण (द्वितीय) वदि १ (ता० २ अगस्त) को बारिश शुरू हुई और लगातार ४ अगस्त तक जारी रही, जिससे कुछ तालाब फूट गये और पीछोला तालाब का पानी चांदपोल दरवाज़े तक जा लगा, पर फ़तहसागर की नहर का फाटक खुलवा कर जल का निकास करा देने से शहर को कोई हानि न पहुंची।

मेवाड़ में घोर वृष्टि

कार्तिक वदि ३ (ता० ३१ अक्टोबर) को हिन्दुस्तान का वाइसराय लॉर्ड मिण्टो उदयपुर गया। उदयपुर के महलों में दरबार के योग्य कोई विशाल भवन न होना महाराणा को बहुत खटकता था, इसलिए उसने एक सादी आलीशान इमारत बनवाने का इरादा कर ता० ३ नवम्बर (कार्तिक वदि ६) को लॉर्ड मिंटो से उसकी नींव दिलाई और उसका नाम 'मिन्टो दरबार हॉल' रखा। लगातार २२ वर्ष से इसके बनवाने का काम जारी है, पर अब तक यह बनकर तैयार नहीं हुआ। इसमें खड़ा होने से देखनेवाले को पीछोला तालाब की अद्भुत छटा और उसके आसपास की पर्वतीय शोभा का महत्व दृष्टिगोचर हो जाता है।

दरबार हॉल का शिलान्यास

शाहपुरे के स्वामी को मेवाड़ राज्य की ओर से काछोले की जागीर मिली है, जिसके बदले प्राचीन प्रथा के अनुसार अन्य सरदारों के समान उसे भी नियत समय तक महाराणा की सेवा में उपस्थित होना पड़ता है। वर्तमान सरदार राजाधिराज नाहरसिंह ने वि० सं० १९४७ (ई० स० १८९०) से महाराणा की सेवामें उपस्थित होना बन्द कर दिया, जिसपर महाराणा ने पोलिटिकल अफ़सरों से लिखापढ़ी की। अन्त में अंग्रेज़ी सरकार ने यह फ़ैसला किया कि शाहपुरे की जमीयत तो हरसाल, परन्तु स्वयं राजाधिराज दूसरे साल नौकरी दिया करे और उस (राजाधिराज)के उदयपुर में उपस्थित न होने के कारण महाराणा उससे १००००० रु० जुर्माने के वसूल करें। इस निर्णय के अनुसार नाहरसिंह वि० सं० १९६७ (ई० स० १९१०) से बराबर नौकरी दे रहा है।

शाहपुरे के मामले का फैसला

वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) में जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह का, जो महाराणा का जामाता था, देहान्त हो गया। यह खबर मिलने पर महाराणा को बड़ा दुःख हुआ और वह मातमपुर्सी के लिए जोधपुर गया।

महाराणा का जोधपुर जाना

इसी वर्ष श्रीमान् सम्राट् पंचमजार्ज तथा श्रीमती महाराज्ञी मेरी का दिल्ली में शुभागमन हुआ। वहां उक्त बादशाह की गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य में ता० १२ दिसम्बर (पौष वदि ७) को एक बड़ा दरबार हुआ, जिसमें सभी राजा महाराजा सम्मिलित हुए।

दरबार के अवसर पर महाराणा का दिल्ली जाना

भारत सरकार के विशेष अनुरोध करने पर महाराणा का भी दिल्ली जाना हुआ, परन्तु अपने वंश-गौरव का विचार कर वह न तो शाही जुलूस में सम्मिलित हुआ और न दरबार में। उसने सिर्फ़ दिल्ली के रेल्वे स्टेशन पर जाकर बादशाह का स्वागत किया, जहां सब रईसों से पहले उसकी मुलाकात हुई। वहां तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड हार्डिञ्ज और कई भारतीय नरेशों से भी उसका मिलना हुआ। सम्राट् ने उसकी प्रतिष्ठा, मर्यादा एवं बड़प्पन का विचारकर उसको इस अवसर पर जी० सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की।

श्रावण वदि ४ वि० सं० १६७० (ता० २२ जुलाई ई० स० १९१३) को देलवाड़े के सरदार मानसिंह के निःसन्तान मर जाने पर उसके चाचा विजयसिंह ने, जो देलवाड़े से कोनाड़ी (कोटा राज्य में) गोद गया था, ठिकाने का दावा किया, पर वह मंजूर नहीं हुआ और मानसिंह का उत्तराधिकारी बड़ी सादड़ी के सरदार रायसिंह के चौथे भाई जवानसिंह का पुत्र जसवन्तसिंह बनाया गया।

जसवन्तसिंह का देलवाड़े का स्वामी बनाया जाना

इन्हीं दिनों जोधपुर के रायबहादुर पंडित सुखदेवप्रसाद सी० आई० ई० और मेहता जगन्नाथसिंह को महकमा ख़ास का काम सौंपा गया, परन्तु उक्त महकमे के प्रायः सभी कामों में महाराणा का हाथ होने से उसकी व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रही।

पं० सुखदेवप्रसाद और मेहता जगन्नाथसिंह को महकमा ख़ास का काम सौंपा जाना

मेवाड़ के जागीरदार अक्सर ज़रूरत के वक्त अपनी जागीर के गांव रहन रखकर महाजनों से कर्ज़ लेते, जो सूद के बदले जागीर की आय हड़प कर जाते। इस प्रकार जागीरदार ऋण के बोझे से हमेशा दबे रहते और कभी कभी उनके लिये निर्वाह करना भी कठिन हो जाता था। उन्हें बरबादी से बचाने के लिए महाराणा ने वि० सं० १६७४ (ई० स० १९१७) में एक आज्ञा निकालकर जागीर के गांव रहन रखने की रोक कर दी।

जागीरें रहन रखने की मनादी

इसी वर्ष महाराणा ने एक और आज्ञा निकाली, जिसके अनुसार जागीरदारों की तरह भोमियों को भी राज्य की अनुमति के विना गोद लेने की मुमानियत कर दी गई।

भोमियों के लिए राजाज्ञा

यूरोपीय महायुद्ध के कठिन अवसर पर अंग्रेज़ी सरकार को सहायता पहुंचाने के उपलक्ष्य में उसकी ओर से ई० स० १९१८ (वि० सं० १९७५) में महाराणा को जी० सी० वी० ओ० की उपाधि मिली।

महाराणा की सम्मानवृद्धि

इन्हीं दिनों पं० सुखदेवप्रसाद ने वापस जोधपुर जाने की इच्छा प्रकट कर अपना इस्तीफ़ा पेश किया जिसे महाराणा ने स्वीकार कर लिया।

पं० सुखदेवप्रसाद का इस्तीफ़ा देना

यूरोपीय महायुद्ध के अन्त में यूरोप आदि देशों में "इन्फ़्लुएन्ज़ा" नामक बुख़ार का भयानक प्रकोप हुआ, जिससे भारत भी न बचा। वि० सं० १९७५ के आश्विन (ई० स० १९१८ अक्टोबर) मास में उदयपुर राज्य में भी वह फैल गया। शहर और गाँवों में ही नहीं, किंतु पहाड़ियों की चोटियों पर एक दूसरे से बहुत दूर बसने-वाले भीलों की झोपड़ियों तक में उसका प्रवेश हो गया जिससे हज़ारों मनुष्यों की मृत्यु हुई।

मेवाड़ में इन्फ़्लुएन्ज़ा का भयानक प्रकोप

कार्तिक सुदि १० (ता० १३ नवम्बर) को आसींद के सरदार रावत रणजीतसिंह का देहान्त हो गया और उसका पुत्र उसकी मृत्यु से कुछ दिन पहले ही मर गया था इसलिये महाराणा ने उसके निःसन्तान होने के कारण आसींद का ठिकाना खालसा कर उसकी ठकुरानी के निर्वाह के लिये नक़द रक़म नियत कर दी।

ठिकाने आसींद का खालसे में मिलाया जाना

ई० स० १९१९ के जून (वि० सं० १९७६ ज्येष्ठ) महीने में सम्राट् पंचम जार्ज के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में महाराजकुमार को के० सी० आई० ई० का ख़िताब मिला। राजपूताने में महाराजकुमार को ऐसी उपाधि मिलने का यह पहला उदाहरण है।

महाराजकुमार भूपालसिंहजी को ख़िताब मिलना

वि० सं० १९७७ (ई० स० १९२०) में महाराणा ने महकमाख़ास में पंडित सुखदेवप्रसाद की जगह पर दीवानबहादुर मुन्शी दामोदरलाल को नियुक्त किया, पर एक साल के बाद वह भी इस्तीफ़ा देकर उदयपुर से लौट गया।

मुन्शी दामोदरलाल की नियुक्ति

मेवाड़ के भीतर ही एक स्थान से दूसरे स्थान में माल लेजाने के लिए महकमा 'दाण' (चुंगी) से चिट्ठी करानी पड़ती थी। प्रत्येक गांव में चुंगी

महाराणा का महाराजकुमार को राज्याधिकार सौंपना

(दाण) का अहलकार न होने के कारण व्यापारियों आदि को उसके लिए बड़ी दिक्कत होती थी और राज्य को उससे कुछ भी लाभ नहीं था। बन्दोबस्त की अवधि समाप्त हो जाने पर भी नया बन्दोबस्त न होने के कारण कितने एक किसान, जिनकी ज़मीन पर लगान अधिक था वही बना रहने से, असन्तुष्ट थे। राज्य भर में सूअरों की अधिकता के कारण किसानों की खेती को बड़ी हानि पहुंचती थी, तो भी सूअरों को चोट पहुंचाने तक की सख्त मुमानियत थी, कितने एक सरदार अपनी प्रजा से अनुचित कर उगाहते और किसानों आदि से बेगार लेते थे, जिससे उनके ठिकानों के लोग उनसे असुन्तुष्ट रहते थे। ऐसे में बाहरी लोगों की सलाह से बीजोल्यां के किसानों ने अनुचित लागतें तथा बेगार की कुत्सित प्रथा उठा देने के लिए आन्दोलन मचाया और लागतें देना बंद कर दिया। इस मामले की खबर जब महाराणा को मिली तब उसने एक कमीशन-द्वारा इसकी जांच कराई, पर कुछ फल न हुआ और दिनबदिन आन्दोलन बढ़ता ही गया। बेगूं, अमरगढ़, पारसोली, बसी आदि ठिकानों तथा चित्तोड़, कपासन, सहाड़ा, राशमी आदि ज़िलों में भी असन्तोष फैल गया। वि० सं० १९७८ (ई० स० १९२१) में बेगूं के सरदार और किसानों के बीच मुठभेड़ तक हो गई। कितने एक किसानों ने इस वर्ष जब महाराणा चित्तोड़ की तरफ़ था, तब उसकी सेवा में उपस्थित होकर अपनी तकलीफ़ों को मिटाने के लिये प्रार्थना की, जिसपर उनको आश्वासन दिया गया कि एक महीने के भीतर तुम्हारी तकलीफ़ें मिटा दी जायँगी, परंतु महाराणा के कुंभलगढ़ को चले जाने के कारण उनको उत्तर न मिला, जिससे वे लोग अधीर हो गये और मातृकुंड्यां नामक तीर्थ-स्थान में एकत्र होकर उन्होंने यह निश्चय किया कि जबतक हमारे कष्ट दूर न होंगे तबतक हम लगान न देंगे और लगभग १००० किसान महाराणा तक अपनी फ़रियाद पहुंचाने के लिए उदयपुर गये। महाराणा ने तो स्वयं उनकी शिकायतें न सुनीं, किंतु अपने अधिकारियों-द्वारा किसी तरह उन्हें समझा बुझाकर लौटा दिया, परन्तु इससे भी उनकी तसल्ली न हुई। ऐसे में नाहर मगरे के आसपास के लोगों ने रक्षित जङ्गल (रखत) में से घास, लकड़ी आदि लाना शुरू कर दिया, जिसपर महाराणा ने अपने दो अधिकारियों को

उन्हें रोकने तथा समझाने के लिए भेजा, परन्तु उन्होंने बिगड़कर उनपर हमला कर दिया, जिससे उन्हें वहां से भागकर उदयपुर लौट जाना पड़ा। इस समय तक महाराणा की अवस्था ७१ वर्ष की हो चुकी थी और शिकार का अधिक शौक़ होने के कारण राज्यकार्य के लिए समय भी कम मिलता था। ऐसी स्थिति में महाराणा ने मुख्य मुख्य अधिकार स्वयं अपने हाथ में रख बाक़ी राज्यभार अपने महाराजकुमार को सौंपने का प्रस्ताव किया, जिसको सरकार हिन्द ने भी स्वीकार किया। तदनुसार ई० स० १६२१ ता० २८ जुलाई (वि० सं० १९७८ श्रावण वदि ८) से महाराजकुमार राज्य-कार्य करने लगे।

महाराजकुमार की घोषणा

महाराजकुमार ने अधिकार मिलते ही वि० सं० १९७८ श्रावण सुदि १० (ई० स० १९२१ ता० १३ अगस्त) को मेवाड़ में चिरस्थायी शांति स्थापित करने के लिए निम्नलिखित इश्तिहार जारी किया।

१—हाल के आन्दोलन में शरीक होनेवालों के अपराध क्षमा कर दिये जायँगे, परन्तु यदि भविष्य में कोई आज्ञा की अवहेलना या उसके प्रतिकूल कुछ करेगा तो उसे कठोर दंड दिया जायगा।

२—जिन लोगों ने अबतक हासिल नहीं चुकाया है उन्हें चाहिये कि वे उसे शीघ्र चुका दें।

३—यदि किसी को कोई तकलीफ़ या किसी के सम्बन्ध में कोई शिकायत हो तो उसे चाहिए कि वह महाराजकुमार की सेवामें अर्ज़ी दे। अगर ऐसा करने पर भी उसका कष्ट दूर न हो तो वह स्वयं उपस्थित होकर अर्ज़ करे। उसकी अर्ज़ सुनकर उचित आज्ञा दी जायगी।

४—लोगों को चाहिये कि जो मेवाड़ या अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध विद्रोह फैलाने की चेष्टा करें उन्हें रोकें।

५—थोड़े ही दिनों में एक ख़ास अफ़सर नियत किया जायगा, जो नये सिरे से बन्दोबस्त का काम शुरू करेगा।

६—लोगों के ज़िम्मे वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) के पहले का खालसे की ज़मीन का जो हासिल बाक़ी है वह मय सूद के माफ़ किया जाता है।

७—जंगली सूअरों से खेती को नुक़सान न पहुंचे इसका इन्तिज़ाम किया

जायगा। ज़मीदार और काश्तकार अपनी फ़सल की हिफ़ाज़त के लिए अपने खेतों के चारों तरफ़ मज़बूत बाड़ बना सकते हैं, पर उन्हें 'हाथाथूहर' की बाड़ बनाने की इजाज़त नहीं है। गांववालों को चाहिये कि उन थूहरों को, जो गांव के पास हों और जिनमें सूअर रहते हों, काट दें। जो थूहर खालसे की भूमि पर होंगे वे राज्य की ओर से कटवा दिये जावेंगे। अगर किसी खास जगह के सम्बन्ध में लोग उज्र करेंगे कि उन्हें सूअरों से बहुत नुकसान पहुंचता है और उनका उज्र ठीक साबित होगा तो उन्हें अपने खेतों को नुकसान पहुंचानेवाले सूअरों को मारने की आज्ञा भी दी जायगी। जब तक सूअरों की संख्या कम न हो जाय तभी तक के लिए यह आज्ञा दी जायगी और वह प्रत्येक अवसर पर १५ दिन से अधिक के लिए नहीं।

८—महकमे दाण (चुंगी) की नई व्यवस्था की जायगी।

९—सड़कों, मदरसों तथा दवाखानों की लागत के जो रुपये जमा हैं उनमें से कुछ सड़कों के काम में खर्च होंगे और जो बचेंगे उनका ब्याज सड़कों, मदरसों एवं दवाखानों के कार्य में लगाया जायगा।

किसान आदि लोगों पर इस इश्तिहार का अच्छा असर हुआ और उनमें शान्ति स्थापित होने लगी तथा उन्हें विश्वास होता गया कि अब हमारी तकलीफ़ें दूर हो जायँगी।

ई० स० १९२१ ता० २५ नवम्बर (वि० सं० १९७८ मार्गशीर्ष वदि ११) को सम्राट् जार्ज पंचम के युवराज (प्रिंस ऑफ़ वेल्स) का उदयपुर जाना हुआ।

प्रिंस ऑफ़ वेल्स का उदयपुर जाना

उन दिनों महाराणा बीमार था, जिससे महाराजकुमार ने युवराज का स्वागत किया। शाहज़ादे के उदयपुर से लौटते समय महाराणा ने १००००० रु० अच्छे कामों में लगाने के लिए उसके सुपुर्द किये।

इसी वर्ष महाराजकुमार ने अपने यहां के सेटलमेंट अफ़सर मि० ट्रेंच, बेदलेवाले राव बहादुर राजसिंह चौहान और मेहता मनोहरसिंह से बेगूं के

बेगूं के मामले का फ़ैसला

मामले की जाँच करा उसका फ़ैसला करा दिया जिसे वहां की प्रजा ने पहले तो मंजूर न किया, परन्तु अन्त में उसे ठीक समझकर स्वीकार कर लिया और ठिकाने के प्रबन्ध का काम

मुन्शी अमृतलाल को सौंपा गया, जिसने भेद नीति से काम लेकर वहां के सरदार और प्रजा के बीच मेल करा दिया।

सरदारों के साथ महाराणा का बर्ताव

उदयपुर राज्य में महाराणा और सरदारों के बीच स्वामी-सेवक का जो घनिष्ठ सम्बन्ध चला आता था वह कितने एक सरदारों के साथ महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की ज्यादती से शिथिल हो गया था और उसके पीछे बहुत से सरदार राज्य की गिरी हुई दशा में उच्छृंखल होकर खालसे की बहुतसी भूमि दबा बैठे। महाराणा भीमसिंह के राजत्व-काल में कर्नल टॉड ने इस प्रकार दबाई हुई खालसे की भूमि पर महाराणा का फिर अधिकार करा दिया और सरदारों की सेवा की व्यवस्था की, परन्तु उनके अधिकारों में हस्तक्षेप न किया। इसपर भी सरदारों का मनमुटाव दूर न हुआ। महाराणा सरूपसिंह ने कितने एक सरदारों की प्रतिष्ठा, मानमर्य्यादा एवं अधिकार का विचार न कर उनके साथ सख़्ती का बर्ताव शुरू किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये। अन्त में इस विरोध को मिटाने के लिए अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा से मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स ने पुराने कौलनामों के आधार पर ३० शर्तों का एक नया कौलनामा तैयार किया, जिसे अधिकांश सरदारों ने स्वीकार कर लिया, परन्तु थोड़े से सरदारों ने उसमें थोड़ासा हेरफेर कराना चाहा, जो महाराणा ने मंजूर न किया, जिससे अंग्रेज़ी सरकार ने उसे रद्द कर दिया।

महाराणा सज्जनसिंह ने सरदारों से मेलजोल बढ़ाया और उनके दीवानी तथा फ़ौजदारी अधिकार स्थिर करने के लिए शाहपुरे के सरदार के साथ क़लमबन्दी की। वैसी ही क़लमबन्दी बनेड़ा तथा प्रथम श्रेणी के १३ सरदारों के साथ भी हुई। उक्त महाराणा की इच्छा थी कि सभी सरदारों के ऐसे अधिकार स्थिर कर दिये जायँ, परन्तु उसकी बीमारी के कारण वह पूरी न हो सकी। महाराणा फ़तहसिंह ने महाराणा सरूपसिंह की नीति का अनुसरण कर शेष सरदारों के अधिकार स्थिर करने का कोई उद्योग न किया। जो सरदार ऐयाशी तथा शराबखोरी में पड़कर अपने ठिकाने बरबाद करते थे उनको रास्ते पर लाने का उद्योग किया, परन्तु सामान्य रूप से सरदारों के साथ उसका बर्ताव उदार नहीं कहा जा सकता।

अपने पूर्वजों के समान महाराणा भी अंग्रेज़ी सरकार का मित्र रहा। उसने असहयोग आन्दोलन के दिनों में सरकार के साथ अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की और 'मेवाड़ लान्सर्स' नाम का एक नया स्क्वाड्रन (रिसाला) कायम किया तथा यूरोपीय महा-युद्ध के समय सरकार की सहायता के लिए उसे देवलाली भेजा और ५०० रंगरूट दिये। उसने १३००००० रु० 'वार लोन' में लगाये। इसके सिवा रेडक्रॉस एसोसियेशन (युद्ध क्षेत्र से घायलों को उठाकर अस्पताल में पहुंचाने वाली संस्था), एयर क्राफ़्ट (हवाई जहाज़) आदि युद्ध-सम्बन्धी कई फंडों में भी उसने १०००००० रु० दिये और मेवाड़ की खानों से अभ्रक भेजे जाने की आज्ञा दी।

अंग्रेज़ी सरकार के साथ महाराणा का व्यवहार

उक्त महाराणा के समय में मेवाड़ में ४७ प्रारम्भिक पाठशालाएं खुलीं। पहले उदयपुर हाईस्कूल का सम्बन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय से रहा, अब हाईस्कूल व इन्टरमीजियेट कॉलेज का सम्बन्ध राजपूताना बोर्ड अजमेर से है। विक्टोरिया हॉल में पुस्तकालय तथा अजायबघर स्थापित हुए। सज्जन-हॉस्पिटल की इमारत छोटी तथा सदर सड़क से दूर थी, इसलिए उस (महाराणा) ने ई० स० १८९४ (वि० सं० १९५१) में हिन्दुस्तान के वाइसराय लॉर्ड लैंस्डाउन के नाम पर हाथीपोल दरवाज़े के भीतर एक नया अस्पताल बनवाया और उसमें सज्जन-हॉस्पिटल के कार्यकर्ताओं को नियत कर दिया तथा वॉल्टर फ़ीमेल (ज़नाना) हॉस्पिटल के लिए एक नई इमारत तैयार कराई। उदयपुर में उसने आबपाशी का नया महकमा खोला और लगभग ५०००००० रु० फ़तहसागर आदि तालावों पर लगाये।

महाराणा के लोकोपयोगी कार्य

मुसाफ़िरों के सुबीते के लिए उसने चित्तोड़गढ़ से उदयपुर तक रेल्वे लाइन, उदयपुर से जयसमंद तक सड़क और उदयपुर, चित्तोड़गढ़, सनवाड़ स्टेशन पर तथा टींडी, बारापाल आदि स्थानों में पक्की सरायें बनवाईं।

महाराणा के दीर्घ शासनकाल में मेवाड़ में कितने ही नये महल बने, पुराने महलों में अनेक प्रकार के सुधार हुए और कई प्राचीन स्थानों का जीर्णोद्धार हुआ। उसे शिल्प के कामों से विशेष रुचि थी। उदयपुर में उसके बनवाये हुए 'दरबार हॉल',

महाराणा के बनवाये हुए महल

'विक्टोरिया हॉल' आदि इस बात के प्रमाण हैं। उसने महाराणा सज्जनसिंह के प्रारम्भ किये हुए उदयपुर के अर्द्धचन्द्राकार विशाल राजभवन को पूर्ण कर उसका नाम 'शिवनिवास' रखा। उसमें रंग विरंगे शीशे की पच्चीकारी का काम देखने योग्य है। इसी तरह सज्जनगढ़ को, जो महाराणा सज्जनसिंह के हाथ से अधूरा रह गया था, उसने पूरा करवाया। चित्तोड़गढ़ एवं कुंभलगढ़ में भी उसने नये महल तैयार कराये और उक्त गढ़ों, चित्तोड़ के जैन कीर्ति-स्तंभ, जयसमन्द के महलों तथा बांध की मरम्मत कराई। उक्त विशाल भवनों के सिवा उसने राजकीय कामों के लिए बहुतसे मकान, अनेक स्थानों में शिकार के लिए ओदियां (Shooting boxes) और खास ओदी में एक छोटा सा महल बनवाया। उसी के समय में मेवाड़ के महलों में बिजली की रोशनी पहुँचाने और पानी के नल लगाने की व्यवस्था हुई।

महाराणा की बीमारी और मृत्यु

वि० सं० १६८७ के वैशाख (ई० स० १६२६ मई) मास में महाराणा को बुखार आने लगा और उसको दिल की बीमारी हुई। उन दिनों वह कुंभलगढ़ में था, पर हालत ज्यादा खराब होने पर उदयपुर लौट गया। वहां दिल की बीमारी दिन दिन बढ़ती ही गई और अन्त में १५ रोज़ बीमार रहकर ज्येष्ठ वदि ११ (ता० २४ मई) को वह इस लोक से विदा हो गया।

महाराणा के विवाह और संतति

गद्दीनशीनी से पहले महाराणा के दो विवाह हुए थे। पहले विवाह से, जो ठिकाने खोड़ में हुआ था, एक कुमारी उत्पन्न हुई, जिसकी शादी कोटे के वर्तमान महाराव उम्मेदसिंहजी से हुई। पहली पत्नी का देहान्त हो जाने पर दूसरा विवाह बरसोड़े से आये हुए कलडवास के चावड़े ठाकुर ज़ालिमसिंह[1] के पुत्र फोलसिंह की पुत्री बख्तावरकुँवरी से वि० सं० १६३५ (ई० स० १८७८) में हुआ, जिससे तीन राजकुमार तथा चार राजकुमारियां हुईं, जिनमें से दो छोटे राजकुमारों और दो

(१) महाराणा भीमसिंह का विवाह बरसोड़े के चावड़े जगत्सिंह की पुत्री से हुआ था। जगत्सिंह के दो पुत्र कुबेरसिंह और ज़ालिमसिंह महाराणा जवानसिंह के समय में उदयपुर आये तो महाराणा ने उन दोनों को शामिल में आर्ज्या व कलडवास की जागीर देकर मेवाड़ में रखा। बरसोड़े का ठिकाना गुजरात के मही कांठा इलाक़े में है और वहां का ठाकुर चौथे दरजे का सरदार है।

राजकुमारियों का देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया। एक राजकुमारी की, जो जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह को ब्याही थी, वि० सं० १६८१ (ई० स० १६२४) में मृत्यु हुई।

महाराणा के देहान्त के समय केवल एक कुमार (वर्तमान महाराणा साहिब) और एक कुमारी, जिसका विवाह किशनगढ़ के महाराजा मदनसिंह से हुआ था, विद्यमान हैं।

महाराणा का व्यक्तित्व

उक्त महाराणा के जन्म के समय मेवाड़ में विद्या का प्रचार बहुत ही कम था, तो भी उसने बाल्यावस्था में हिन्दी और उर्दू में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उसने संस्कृत तथा अंग्रेज़ी की पढ़ाई भी शुरू की थी जो थोड़े ही दिनों में छूट गई। उसे विशेषतः क्षत्रियोचित शिक्षा—बन्दूक, तलवार आदि शस्त्रों का चलाना, घोड़े की सवारी तथा शिकार करना—दी गई, जिसमें वह बहुत कुशल था।

महाराणा अपने प्राचीन जातीय संस्कार एवं सभ्यता का कट्टर पक्षपाती था। उसका रंग-ढंग, आचार-व्यवहार, रहन-सहन आदि सभी बातें पुराने ढंग की थीं, इसीसे उसकी शासन-पद्धति समयानुकूल नहीं, किन्तु पुराने ढंग की रही।

वह पहला महाराणा था, जिसके एक ही राणी रही। बहुविवाह की प्राचीन प्रथा से उसे घृणा थी। वह एक पत्नीव्रत धर्म पर सदा आरूढ़ रहा और अफ़ीम शराब आदि नशीली चीज़ों के व्यसन में आसक्त न रहा। उसने कुत्सित वासनाओं का दमन कर अपने ऊपर सच्ची विजय प्राप्त की। आजकल के उन भारतीय नरेशों और सरदारों को, जो बहुविवाह, मद्यपान आदि दोषों में फंसे हुए हैं, उसके आदर्श चरित्र से बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है।

महाराणा प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठता, स्नान करते समय गंगालहरी का पाठ सुनता और संध्या, पूजन आदि दैनिक कृत्यों से निवृत्त होकर कुछ देर तक ईश्वरोपासना करता तथा रामायण या भागवत आदि पुराणों को श्रवण करता और स्वयं गीता का पाठ करता। उसने जीवनपर्य्यन्त इस दिनचर्य्या का पालन किया। इन्हीं अनेक कारणों से वह दीर्घजीवी हुआ और अंत तक उसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

अन्य अधिकांश राजाओं के समान उसे खान-पान तथा नाच-गान का शौक़ न था। किसी बात का शौक़ था तो वह राजकाज संभालने और शिकार तथा घोड़े की सवारी का। उसका शिकार का शौक़ व्यायाम—न कि हिंसा—की दृष्टि से था। वह केवल बाघ, चीते, बड़े सूअर आदि हिंस्र एवं प्रजापीड़क पशुओं का ही आखेट करता और पक्षियों तथा हिरणों पर गोली नहीं चलाता था। राजधर्म के अनुसार उसने सैकड़ों बाघ, चीते, सूअर आदि पशुओं का शिकार किया। हथियार चलाने और बन्दूक का निशाना लगाने में वह सिद्धहस्त था, उसका निशाना शायद ही कभी खाली गया हो। कड़ी धूप में बिना थके बीसों मील घोड़े की सवारी करना और आखेट के समय विकट एवं दुर्गम पर्वत-श्रेणियों पर अपनी बन्दूक को कंधे पर लिए हुए पैदल चढ़ जाना उसके लिए साधारण सी बात थी। इस प्रकार सतत व्यायाम होते रहने के कारण उसका शरीर प्रायः नीरोग रहता था। यदि उसे कभी कोई शिकायत हो जाती तो कब्ज़ियत की, जिससे कभी कभी ज्वर हो आता। उसके शमन के लिए डॉक्टरों, वैद्यों और हकीमों की दवाइयां तो आ जातीं, परन्तु वह उन्हें न लेता और अपने सिद्धान्त के अनुसार लगातार चार या पांच लंघन कर जाता, जिससे बिना दवा के ही ज्वर उतर जाता। वह लंघन से कुछ कमज़ोर तो ज़रूर हो जाता, परन्तु बुखार उतर जाने पर फिर शिकार सम्बन्धी व्यायाम शुरू कर देता, जिससे थोड़े ही दिनों में पीछी ताक़त आ जाती।

उक्त महाराणा ने लगातार ४६ वर्ष तक अदम्य उत्साह तथा पूर्ण मनोयोग के साथ अपने विचारों के ही अनुसार राज्य किया। इस दीर्घ शासनकाल में उसने अपनी प्रजा पर कभी कोई नया टैक्स नहीं लगाया और न कभी पहले की धर्मार्थ दी हुई भूमि, गांव आदि को छीनने की चेष्टा की। वह दयालु, धर्मात्मा और ग़रीबों, विशेषतः दीन दुःखित अबलाओं का रक्षक तथा सहारा था। उनके दुःख दूर करने में उसका पैर सब से आगे था। वह प्रतिवर्ष साधु-संतों के आदर-सत्कार में भी सहस्रों रुपये खर्च करता। उसने हरद्वार में सोने का तुलादान किया। १५०००० रु० हिन्दू विश्वविद्यालय तथा उतने ही अजमेर मेयोकॉलेज तथा अनेक फण्डों में और १५०००० रु० भारत-धर्म-महा-मंडल काशी को दिये। अपनी कर्तव्यबुद्धि, परोपकारवृत्ति

एवं कुलाभिमान के कारण महाराणा बड़ा लोकप्रिय और भारतीय नरेशों तथा जनता का सम्मान-भाजन था। शिष्टता, नम्रता, सरलता, मितभाषिता, अतिथि-प्रियता आदि उसके गुणों की ख्याति भारत में ही नहीं, प्रत्युत इंग्लिस्तान आदि सुदूरवर्ती देशों तक फैली हुई है। जिसे एक बार भी उससे मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ है वह उसका स्मरण किये बिना नहीं रह सकता। क्लॉड हिल (सर) आदि मेवाड़ के रेज़िडेण्ट एवं सर वॉल्टर लॉरेन्स आदि जिन अंग्रेज़ अधिकारियों को उससे, राजनैतिक सरोकार होने के कारण, मिलने जुलने के विशेष अवसर मिले हैं उन्होंने तो जी खोलकर उसके उक्त गुणों के बखान किये हैं। वास्तव में देशी विदेशी सभी उसे चाहते और बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। उसके समय में इंग्लैंड के उपर्युक्त राजवंशियों के सिवा लॉर्ड डफ़रिन से लेकर लॉर्ड इरविन तक भारत के सभी वाइसराय उदयपुर जाकर उससे मिले और उन्होंने भोज के समय के अपने भाषणों में उसके आदर्श चरित्र, पुराने रंगढंग, कुलाभिमान तथा उसकी सरलता एवं मेहमानदारी की बहुत प्रशंसा की है। भारत सरकार की बड़ी कौंसिल के बहुतसे सदस्य, लॉर्ड रॉबर्ट्स, लॉर्ड किचनर, जनरल सर पॉवर पामर आदि प्रधान सेनापति, बम्बई का गवर्नर लॉर्ड रे, मद्रास का गवर्नर सर एम० ग्रेंट डफ़ और ऊपर लिखे हुए नरेशों के अतिरिक्त बड़ोदा, इन्दौर, काश्मीर, कोटा, बनारस, धौल-पुर, नाभा, कपूरथला, मोर्वी, लीमड़ी, भावनगर आदि राज्यों के स्वामी भी उदयपुर गये और महाराणा के आदर्श आचरण एवं आदर-सत्कार से बहुत प्रसन्न हुए।

उसकी गंभीर मुखश्री का प्रभाव लोगों पर इतना अधिक पड़ता था कि किसी को उसके सामने जाकर सहसा कुछ कहने सुनने का साहस नहीं होता था। अन्य की बात तो दूर रही स्वयं लॉर्ड कर्ज़न जैसे उग्र प्रकृतिवाले वाइसराय पर भी उसका असर पड़े बिना न रहा। इस सम्बन्ध में सर वॉल्टर लॉरेन्स ने, जिसने लगातार १६ वर्ष तक हिन्दुस्तान में काम किया था, अपनी पुस्तक 'दी इंडिया वी सर्वेड्' में लिखा है "लॉर्ड कर्ज़न मुझ से अकसर कहा करता था कि तुम्हें मनुष्यों के पहचानने की तमीज़ नहीं है और भिन्न भिन्न मनुष्यों के विषय में मेरी जो धारणायें होतीं उनके सम्बन्ध में यह कहकर वह

मेरी हँसी उड़ाया करता कि 'जिन्हें तुम अक़्लमंद समझते हो वे निरे बेवकूफ़ हैं', परन्तु हम दोनों जब उदयपुर गये और पहले पहल महाराणा से लॉर्ड कर्ज़न की मुलाक़ात हुई तब मैंने ध्यानपूर्वक उस (कर्ज़न) की चेष्टा का निरीक्षण किया और यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि जिस लॉर्ड कर्ज़न पर किसी व्यक्ति की शकल-सूरत का कभी असर न पड़ा उस पर भी महाराणा की चित्ताकर्षक आकृति का प्रभाव पड़े बिना न रहा। उसने महाराणा से न तो शासन-सम्बन्धी प्रश्न किये, न उसे उसकी त्रुटियां बताई और न सुधार तजवीज़ किये"।

वह अपने अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं के कामों पर पूरी नज़र रखता था। उनसे कोई काम बन पड़ता तो वह पुरस्कार आदि देकर उनका मन बढ़ाता, परन्तु उनके हाथ का खिलौना बनकर उसने कभी शासन नहीं किया। अपने विश्वासपात्रों से पहले धोखा खाने के कारण वह पीछे से कभी किसी का पूरा विश्वास नहीं करता था।

वह बड़ा परिश्रमी था। उसका परिश्रम देखकर लोग चकित और विस्मित हो जाते थे। वर्णाश्रमधर्म में उसकी अचल निष्ठा थी। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि उक्त धर्म के पालन में तत्पर रहने से ही अबतक हिन्दू जाति का अस्तित्व बना हुआ है।

उसकी ग्रहण-शक्ति बड़ी प्रबल थी। कभी कोई कुछ अर्ज़ करता तो वह उसका वास्तविक अभिप्राय तुरंत समझ जाता। दूसरों की सिफ़ारिश पर बहुत कम ध्यान देता और यदि किसी को कभी कुछ देना होता तो वह अपनी ही मर्ज़ी से देता।

मितव्ययी होने के कारण उसने खज़ाने में लाखों रुपये संग्रह किये, परन्तु उन्हें नई रेलें निकालने आदि राज्य की आय बढ़ानेवाले कामों में खर्च करने की ओर उसकी प्रवृत्ति कम रही। वह मितव्ययी होने पर भी प्रिंस ऑफ़ वेल्स, हिन्दुस्तान के वाइसराय आदि के आगमन एवं अपनी राजकुमारियों के विवाह आदि के समय पर तथा शिकार के कामों में जी खोलकर खर्च करता था।

वह तेजस्वी, कुलाभिमानी, प्रभावशाली, पराक्रमी, सहनशील, वीर, धीर, गंभीर, निडर, सदाचारी, जितेन्द्रिय, मितव्ययी, कर्तव्यपरायण,

परोपकारशील, धर्मनिष्ठ, भगवद्भक्त, शरणागत-वत्सल और पुराने ढंग का आदर्श शासक था। आपत्ति के मारे बाहरी राज्यों से आये हुए कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों को अपने यहां आश्रय देकर उसने अपनी कुल परंपरागत प्रथा का पालन किया।

वह सदैव अपने अधिकारों का पूरा ध्यान रखता। उसने राज्य का समस्त कार्य-भार अपने हाथ में ले लिया, विना उसकी आज्ञा के राज्य का कोई भी कार्य नहीं होता। किसी पर अपने हाथ से अन्याय न हो इस विचार से वह प्रत्येक कार्य को पूरा सोचे विना त्वरा से नहीं करता, जिस से राज्य का बहुत सा काम प्रायः चढ़ा रहता। विद्या का विशेष अनुराग न होने के कारण जैसा कि महाराणा सज्जनसिंह के समय विद्वानों का सम्मान होता रहा वैसा उसके समय में नहीं हुआ। प्राचीन विचार का प्रेमी होने के कारण उसके समय में शासन-पद्धति में समयानुकूल विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, जिससे राजपूताने की अन्य रियासतों के जैसी राज्य की आय में वृद्धि नहीं हुई।

उसका रंग गेहुँवा, कद लम्बा, शरीर मध्यम स्थिति का, आंखें मझेली तथा चेहरा प्रभावशाली था।

महाराणा भूपालसिंहजी

महाराणा सर भूपालसिंहजी जी० सी० एस० आई०, के० सी० आई० ई० का जन्म वि० सं० १९४० फाल्गुन वदि ११ (ई० स० १८८४ ता० २२ फरवरी) को हुआ। बचपन में इन्हें प्राचीन शिक्षापद्धति के अनुसार पहले हिन्दी और संस्कृत भाषा का अभ्यास कराया गया, फिर प्रोफ़ेसर मतीलाल भट्टाचार्य एम० ए० की अध्यक्षता में अंग्रेज़ी का शिक्षण हुआ।

महाराणा का जन्म और शिक्षा

वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) में इनको रीढ की बीमारी हुई और उसका असर पैरों तक पहुँच गया, जिससे चलना फिरना भी बंद होगया। यह देखकर बड़े बड़े वैद्यों तथा डॉक्टरों की चिकित्सा आरंभ की गई; दान, पुण्य आदि में हज़ारों रुपये खर्च किये गये और सोने का तुलादान भी हुआ। लगातार दो वर्ष तक इलाज़ जारी

महाराणा की बीमारी

श्रीमान् महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सर भूपालसिंहजी
बहादुर, जी. सी. एस. आई., के. सी. आई. ई.

रहने से इनकी दशा धीरे धीरे सुधरने लगी और विक्रम सं० १६५६ (ई० स० १६०२) में इनको बहुत कुछ लाभ हुआ, परन्तु एक पैर कमज़ोर रह गया।

वि० सं० १६७८ श्रावण वदि ८ (ई० स० १६२१ ता० २८ जुलाई) को अंग्रेज़ी सरकार की स्वीकृति से महाराणा फ़तहसिंह ने अपना बहुत सा राज्याधिकार, जैसा कि उक्त महाराणा के विवरण में लिखा जा चुका है, इनको दे दिया। अधिकार मिलते ही इन्होंने राज्यशासन में आवश्यक सुधार करने और ग़रीब किसानों की तकलीफ़ मिटाने का विचार कर वि० सं० १६७८ श्रावण सुदि १० (ई० स० १६२१ ता० १३ अगस्त) को एक इश्तिहार जारी किया, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। प्रजा पर उस इश्तिहार का अच्छा प्रभाव पड़ा और किसानों आदि को विश्वास हो गया कि अब हमारी फ़र्याद सुनी जायगी।

शासन सुधार

फिर इन्होंने 'महद्राजसभा' में सुयोग्य एवं अनुभवी पुरुषों को नियत कर उसका सुप्रबन्ध किया और सदस्यों की संख्या बढ़ाई, जिससे उसका कार्य सुचारू रूप से होने लगा तथा बहुत सा पिछड़ा हुआ काम साफ़ हो गया। इन्होंने राज्य के आयव्यय का वार्षिक बजट तैयार किये जाने की आज्ञा दी, इतना ही नहीं, किन्तु राज्य के प्रायः सब विभागों की नई व्यवस्था की, जिससे राज्य की आय ३५ रु० सैकड़े के हिसाब से वृद्धि होकर ५६००००० रु० से अधिक हो गई। इन्होंने शासन एवं लोकहित संबन्धी बहुतसे काम किये, जिनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

पहली बार के बन्दोबस्त की अवधि पूरी हो जाने पर भी वही बन्दोबस्त चला आ रहा था, इसलिये इन्होंने मिस्टर सी० जी० चेनेविक्स ट्रैंच नामक अफ़सर को नियत कर नया बन्दोबस्त शुरू कराया, जिसका काम अबतक चल रहा है। यह नया बंदोबस्त राज्य की आय बढ़ाने की अपेक्षा काश्तकारों की स्थिति सुधारने की दृष्टि से किया जा रहा है।

कम ब्याज पर किसानों को कर्ज़ देने के लिये 'कृषि-सुधार' नाम का फंड खोला गया, जिससे अब उन्हें अधिक सूद पर महाजनों से ऋण लेने की आवश्यकता कम रहती है। बहुतसी छोटी छोटी लागतें, जिनसे प्रजा को कष्ट पहुंचता था, माफ़ कर दी गईं। महाराणा सज्जनसिंह के समय में व्यापार की

सहूलियत के लिये दस चीज़ों के सिवा बाक़ी सब वस्तुओं का महसूल छोड़ दिया गया था, पर भीतरी व्यापार पर 'मापा' नाम का कर लगता था, जिससे राज्य को १००००० रु० की सालाना आय होती थी, परन्तु यह कर व्यापार की दृष्टि से हानिकर था, इसलिये वि० सं० १९८० (ई० स० १९२३) में इसे उठाकर इसके बदले सायर के महसूल की नई व्यवस्था की और बक़ाया माल-गुज़ारी पर जो सूद पहले लिया जाता था वह आधा कर दिया। मेवाड़ के किसान अपनी पुरानी रीति के अनुसार खेती करते थे, जिससे उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं मिलता था, इसलिये वैज्ञानिक साधनों-द्वारा खेती की उन्नति करने का नया ढंग उन्हें बतलाने के लिये उदयपुर में कृषी-फ़ार्म क़ायम किया गया; क़स्बा भीलवाड़े का, जो मेवाड़ में व्यापार का मुख्य केन्द्र है, विस्तार बढ़ाया गया और वहां एक मंडी बनाई गई, जिसका नाम "भूपालगंज" रखा गया।

ई० स० १९२३ (वि० सं० १९८०) में आबकारी का नया महकमा क़ायम किया गया और बिना लाइसेन्स के शराब की भट्टियां खोलने, बिक्री के लिये अफ़ीम तथा गांजा पैदा करने और आमतौर से अफ़ीम एवं भांग बेचने की मुमानियत की गई। लोगों में शराब, अफ़ीम आदि नशीली चीज़ों का प्रचार कम कराने के लिये "मादक-प्रचार-सुधारक संस्था" स्थापित हुई, जिसने कई नियम बनाकर जारी किये, जिनका पालन किये जाने पर मादक द्रव्यों का प्रचार कम हो जाने की सम्भावना है। मावली से मारवाड़ जंक्शन तक रेलवे लाइन बढ़ाने का काम शुरू हुआ और कांकरोली तक नई रेल खुल भी गई।

ई० स० १९०९ (वि० सं० १९६६) में कपासन तथा गुलाबपुरे में कपास निकालने (लोढ़ने) एवं रुई की गांठें बांधने के नये कारखाने खुले थे, जो ई० स० १९१७ (वि० सं० १९७४) में प्रतिवर्ष १४५००० रु० जमा करते रहने की शर्त पर पांच वर्ष के लिये ब्यावर के सेठ चंपालाल को ठेके पर दिये गये थे, परन्तु ठेके की अवधि पूरी हो जाने पर ई० स० १९२२ (वि० सं० १९७९) में ये कारख़ाने राज्य के अधिकार में लिये गये और उन पर एक ख़ास अधि-कारी नियत किया गया। ई० स० १९२६ (वि० सं० १९८३) में छोटी सादड़ी

और चित्तोड़ में भी ऐसे कारखाने खोले गये, जिससे राज्य की आय में वृद्धि होने लगी। मेवाड़ के लोगों को भी ऐसे कारखाने खोलने की आज्ञा दी गई, जिससे जहाज़पुर, आसींद, फ़तहनगर (सनवाड़ के समीप) एवं कांकरोली में ऐसे कारखाने खुल रहे हैं।

उदयपुर में शहर की सफ़ाई के लिये म्यूनिसिपल्टी की स्थापना हुई, सारे शहर में बिजली की रोशनी पहुंचाने का आयोजन किया गया, नये दवाखाने खोले गये, मेवाड़ के विद्यार्थियों को हाईस्कूल की पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद आगे पढ़ने के लिये बाहर जाना पड़ता था, इसलिये उदयपुर में इन्टरमीजियेट कालेज खोला गया, जिसके लिये शहर से कुछ दूर एक नया मकान बन रहा है। स्कूलों तथा अध्यापकों की संख्या बढ़ाई गई, ज़िला स्कूलों और शफ़ाखानों के लिये ५००००० रु० दिये गये और सरदारों के लड़कों की शिक्षा के लिये बोर्डिङ्ग हाउस सहित "भूपाल नोबल स्कूल" खोला गया, जिसके स्थायी फंड के निमित्त एक लाख रुपये और एक बहुत बड़ा मकान दिया गया। यहां उन छोटे सरदारों के, जो मेयो कॉलेज (अजमेर) का खर्च नहीं उठा सकते, लड़के शिक्षा पाते हैं। कन्याओं की शिक्षा के लिये तीन प्रायमरी स्कूल खोले गये, छात्रों को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति के रूप में ७५०० रु० दिया जाना स्वीकृत हुआ और नाबालिगों एवं कर्ज़दार जागीरदारों की जागीरों के समुचित प्रबन्ध के लिये 'कोर्ट ऑफ़ वॉर्ड्स' (शिशुहितकारिणी सभा) का अलग महकमा कायम हुआ। जागीरों के गांवों में बंदोबस्त का काम शुरू हुआ, जागीरदारों को कम सूद पर कर्ज़ देने की व्यवस्था हुई और जंगलों की पैमाइश का काम शुरू हुआ।

चाही (कुओं से सींची जानेवाली) ज़मीन के हासिल के नये क़ायदे बनाये गये। राज्य के खनिज पदार्थों की जाँच किये जाने की आज्ञा हुई; सांसी, कंजर आदि चोरी के पेशेवालों को खेती आदि औद्योगिक कामों में लगाने की इस विचार से व्यवस्था की गई कि उनका चोरी और डकैती का पेशा छूट जाय और वे शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह करें। मावली से नाथद्वारा, उदयपुर से ऋषभदेव व खेरवाड़े तक और अन्यत्र भी मोटर चलाने की आज्ञा दी गई। उदयपुर में अदालत मुन्सिफ़ी तथा मजिस्ट्रेटी कायम हुई। विचाराधीन क़ैदियों

से जो खुराक खर्च लिया जाता था वह माफ़ कर दिया गया और 'खोड़े' (क़ैदी भाग न जाय इसलिये उसका पैर काठ में डालने) की प्रथा बंद कर दी गई। वकालत की परीक्षा होने और परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवालों को प्रमाण-पत्र दिये जाने की व्यवस्था हुई।

महाराणा फ़तहसिंह का स्वर्गवास हो जाने पर वि० सं० १९८७ ज्येष्ठ वदि १२ (ई० स० १९३० ता० २५ मई) को इन महाराणा की गद्दीनशीनी हुई और ज्येष्ठ शुक्ल ९ (ता० ५ जून) को राज्याभिषेकोत्सव हुआ जिसके दूसरे ही दिन इन्होंने दरबार में निम्नलिखित आशय की अपने प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा घोषणा कराई—

महाराणा का राज्याभिषेक

जिन ज़िलों में बन्दोबस्त हुआ है उनके वि० सं० १९८५ तक के हासिल का बक़ाया माफ़ कर दिया गया है और जिनमें बन्दोबस्त नहीं हुआ है उनके उसी संवत् की ज्येष्ठ सुदि १५ की किश्त में ५ रु० सैकड़े के हिसाब से रियायत की गई है; उमरावों, सरदारों, जागीरदारों तथा माफ़ीदारों के सिवा और लोगों के ज़िम्मे वि० सं० १९७० के पहले का मुक़द्दमों के सम्बन्ध का राज्य का जो बक़ाया लेना था वह छोड़ दिया गया है। जागीरदारों के यहां के माफ़ीदारों के साथ भी यह रियायत की गई है। लोगों में पहले का राज्य का जो क़र्ज़ बाक़ी था उसमें से १५००००० रु० छोड़ दिये गये हैं। इसके सिवा विवाह, चँवरी, नाता, 'घरभूंपी' आदि छोटी छोटी सब लागतें माफ़ कर दी गई हैं। परलोकवासी महाराणा की यादगार में उदयपुर में एक सराय बनाई जायगी, जिसमें मुसाफ़िर तीन दिन ठहर सकेंगे और उनके आराम का प्रबन्ध राज्य की ओर से होगा। निजी ख़ज़ाने से १००००० रु० नोबल स्कूल को दिया गया। इस रक़म के सूद से ग़रीब राजपूत विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र मुफ़्त दिये जायँगे तथा उनके रहने के लिये राज्य के ख़र्च से छात्रालय बनवाया जायगा।

गद्दी पर बैठने के बाद महाराणा ने नीचे लिखे हुए सुधार एवं परिवर्तन किये—

महाराणाओं तथा राज्य के प्रथमवर्ग के सरदारों के बीच दीर्घकाल से अधिकार के विषय में जो झगड़ा चला आता था उसे इन महाराणा ने प्रथम श्रेणी के सरदारों (उमरावों) को न्यायसम्बन्धी अधिकार साफ़ तौर से

प्रदान कर मिटा दिया और आबकारी की उनकी क्षति पूरी करने के सम्बन्ध में उनसे समझौता कर लिया, जनता के सुबीते का विचार कर उदयपुर तथा भीलवाड़े में डिस्ट्रिक्ट और सेशन कोर्ट क़ायम किये, शिशुहितकारिणी सभा (कोर्ट ऑफ़ वॉर्ड्स) की निगरानी में जो ठिकाने हैं उन सबकी पैमाइश कर बन्दोबस्त किये जाने की आज्ञा दी, जागीरदारों के पुराने कर्ज़ के मामले बड़ी उदारता के साथ तय किये जाने का प्रबन्ध किया, महद्राजसभा को न्याय सम्बन्धी बहुतसे अधिकार प्रदान किये, शिक्षा-विभाग का काम ठीक तौर पर चलाने के लिये एक डाइरेक्टर की नियुक्ति की और उदयपुर में एक प्रदर्शिनी तथा कृषकों की उन्नति के विचार से कृषि-विभाग खोला।

ता० २० अगस्त (भाद्रपद वदि ११) को अंग्रेज़ी सरकार की ओर से महाराणा की गद्दीनशीनी का ख़रीता लेकर राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल मिस्टर एल० डब्ल्यू० रेनाल्ड्स का उदयपुर जाना हुआ। ता० २२ अगस्त (भाद्रपद वदि १३) को राजभवन के "सभाशिरोमणि" दरीखाने में दरबार हुआ, जिसमें राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल ने महाराणा की गद्दीनशीनी का अंग्रेज़ी सरकार का ख़रीता पढ़कर सुनाया। फिर उसका भाषण हुआ, जिसमें उसने स्वर्गीय महाराणा की सरलता, शिष्टता, प्रजावत्सलता, गंभीरता, अतिथिप्रियता, कुलाभिमान आदि गुणों की प्रशंसा करते हुए, वर्तमान महाराणा के शासनाधिकार ग्रहण करने के समय से लगाकर उक्त समय तक के शासन-सम्बन्धी कार्यों की, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, चर्चा कर उनकी प्रशंसा की।

अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से महाराणा को अधिकार मिलना

इन्होंने जोधपुर के रायबहादुर पंडित सर सुखदेवप्रसाद को अपना "मुसाहिब-आला" नियत किया, अपनी प्रजा को बेगार का कष्ट उठाते देखकर बेगार की प्रथा बिलकुल उठा दी, देहात से राजधानी में गल्ला आदि सामान आता था उसपर की चुंगी माफ़ कर दी। राज्य-सुधार के लिये कई क़ानून बनवाये, जिनके जारी होने पर प्रजा को और भी सुबीता होगा। इन्होंने अपने मामा अभयसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह को कोदूकोटा ग्राम जागीर में प्रदान किया।

ता० १ जनवरी सन् १९३१ (वि० सं० १९८७ पौष सुदि १२) को श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्ज ने इनको 'जी० सी० एस० आई०' की उपाधि से विभूषित किया।

इन महाराणा की गद्दीनशीनी हुए अभी केवल एक वर्ष ही हुआ है, इस-लिये यद्यपि इनका इतिहास लिखने का समय नहीं आया, तो भी इनके पिता की जीवित दशा में जब से राज्याधिकार हाथ में लिया तब से लगाकर अबतक जो कुछ सुधार इन्होंने किये उनका केवल नामोल्लेख ऊपर किया गया है।

इनकी लोगों के साथ की सहानुभूति, प्रजावत्सलता, परोपकारवृत्ति, उदारता, सहृदयता, शुद्धवृत्ति एवं गुणग्राहकता आदि गुणों को देखते हुए यह आशा की जाती है कि भविष्य में ये बहुत कुछ प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

नवां अध्याय

मेवाड़ के सरदार और प्रतिष्ठित घराने

सरदार

उदयपुर राज्य में सरदारों की प्रतिष्ठा राजपूताने के अन्य राज्यों के सरदारों की अपेक्षा अधिक है, क्योंकि यहां के राजा अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये लगभग ४०० वर्ष तक मुसलमानों से लड़ते रहे, उस समय सरदारों ने पूर्ण स्वामिभक्ति के साथ महाराणा का साथ दिया और मेवाड़ की रक्षा के लिये उनमें से बहुतों ने अपने प्राण तक उत्सर्ग किये। सरदार ही इस राज्य के मुख्य अंग रहे। मुसलमानों के समय थोड़े से सरदारों ने मेवाड़ की सेवा का परित्याग कर लोभवश बादशाही सेवा स्वीकार की, परन्तु अधिकांश सरदार बादशाही सेवा स्वीकार करने की अपेक्षा महाराणा की सेवा में रहकर अनेक आपत्तियां सहते हुए भी अपने स्वामि-धर्म की रक्षा करना ही अपना कर्तव्य समझते रहे। जब उनमें से किसी किसी की जागीर बादशाही अधिकार में चली जाती, तब भी वे बिना जागीर के महाराणा की सेवा में रहकर अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। महाराणाओं ने भी समय समय पर उनकी उत्तम सेवा की कद्र कर उनके साथ बड़े सम्मान का वर्ताव किया और उनकी प्रतिष्ठा व पद को बढ़ाया, जिससे मेवाड़ को अनेक आपत्तियां सहते हुए भी विशेष हानि नहीं हुई तथा उसका गौरव बना रहा, परन्तु महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने सरदारों के साथ अपने पूर्वजों का सा वर्ताव न कर कुछ स्वामिभक्त सरदारों को छल से मरवा डाला, जिससे कई एक सरदारों के साथ उसका विरोध हो गया, जिसका फल यह हुआ कि मेवाड़ का एक हिस्सा मरहटों आदि के हाथ में चला गया और राज्य की अवनति हुई।

मेवाड़ के सरदारों की तीन श्रेणियां हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने अपने प्रथम श्रेणी के सरदारों की संख्या १६

नियत की थी, जिससे उनको 'सोला' कहते हैं। सामान्यरूप से वे 'उमराव' कहलाते हैं। पीछे से उनकी संख्या बढ़ती गई। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने भेंसरोड़, महाराणा भीमसिंह ने कुराबड़, महाराणा जवानसिंह ने आसींद, महाराणा शंभुसिंह ने मेजा तथा महाराणा सज्जनसिंह ने सरदारगढ़ को प्रथम श्रेणी में दाखिल किया, जिससे उनकी संख्या २१ हो गई। उनकी बैठकें नियत हैं जिनकी संख्या पूर्ववत् अबतक सोलह ही है। इसलिये जो सरदार नये बढ़ाये गये हैं वे उपर्युक्त सोलह में से किसी की अनुपस्थिति में ही दरबार में उपस्थित होते हैं। द्वितीय श्रेणी के सरदारों की संख्या महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय ३२ होने से उनको 'बत्तीस' कहते हैं और सामान्यरूप से वे 'सरदार' कहलाते हैं। उनकी संख्या अब भी क़रीब पहले के जितनी ही है। महाराणाओं की इच्छा के अनुसार समय समय पर कुछ सरदारों की बैठकें ऊपर कर उनका दर्जा बढ़ाया जाता रहा है। प्रथम श्रेणी के सरदारों में ऐसा प्रायः कम हुआ है, क्योंकि उनको अपने से नीची बैठकवाले का अपने ऊपर बैठना असह्य रहा और उसके लिये वे बहुधा लड़ने तक को तैयार हो जाया करते रहे; परन्तु दूसरी श्रेणीवालों में ऐसा अधिक हुआ है, जिससे उस (दूसरी) श्रेणी के कुछ सरदार तीसरी श्रेणी में आ गये। ऐसे सरदारों की प्रतिष्ठा और मानमर्यादा अबतक पूर्ववत् बनी हुई है। कितने एक सरदार मेवाड़ से जो ज़िले निकल गये उनके साथ मारवाड़, ग्वालियर आदि में चले गये।

तीसरी श्रेणी के सरदारों को 'गोल के सरदार' कहते हैं। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के सरदारों में से बहुधा सब को ताज़ीम है और तृतीय श्रेणी के सरदारों में से कई एक को, परन्तु सभी सरदारों को दरबार में बैठक (बैठने) की प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन सरदारों के अतिरिक्त महाराणाओं के निकट के संबन्धी और भी हैं, जिनकी भी बहुत कुछ प्रतिष्ठा है।

प्रथमश्रेणी के सरदार (उमराव)

बड़ी सादड़ी

सादड़ी के सरदार चन्द्रवंशी झाला[1] राजपूत हैं। उदयपुर राज्य के उमरावों में इनका स्थान प्रथम है। इनके पूर्वज हलवद (काठियावाड़ में) राज्य के स्वामी थे। वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) में राजा राजसिंह (राजधर) के दो पुत्र अज्जा[2] और सज्जा हलवद छोड़कर मेवाड़ के महाराणा

(१) झालावंश का पुराना नाम मकवाना था और उसका मूल स्थान सिन्ध में कीर्तिगढ़ था, जहां से सुमरा लोगों से झगड़ा हो जाने के कारण हरपाल मकवाना गुजरात चला गया। वहां के राजा कर्ण (सोलंकी) ने बड़ी जागीर देकर उसे अपने पास रखा। मकवाना वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह जनश्रुति है कि मार्कण्डेय ऋषि ने सोमयज्ञ के द्वारा उसके मूल पुरुष कुंडमाल को उत्पन्न किया। संस्कृत में यज्ञ का नाम 'मख' होने से कुंडमाल 'मकवाना' कहलाया। यह जनश्रुति कल्पना-प्रसूत होने के कारण विश्वसनीय नहीं है। सम्भव है कि मकवाना इस वंश के मूल पुरुष का और झाला इसकी शाखा का नाम हो। यदि यज्ञ से कुंडमाल की उत्पत्ति होती तो परमारों की तरह मकवाने भी अग्निवंशी कहलाते, परन्तु अग्निवंशी होना वे स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार इस वंश के झाला कहलाने के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती है कि एक बार हरपाल के बालक पुत्र को एक हाथी ने उठाकर फेंका, इतने में किसी देवी ने झपटकर उसे झेल लिया। गुजराती भाषा में झेलने के लिये 'झालना' शब्द प्रयुक्त होता है, इसलिये वह बालक झाला कहलाया। यह किंवदन्ती भाटों की कल्पनामात्र है। वि० सं० की १५ वीं शताब्दी के बने हुए मंडलीक महाकाव्य में काठियावाड़ के गोहिलों का सूर्यवंशी और झालाओं का चन्द्रवंशी होना लिखा है, जो भाटों की कल्पनाओं से अधिक विश्वास के योग्य है—

रविविधूद्भवगोहिलझल्लकैर्व्यजनवानरभाजनधारव ।

विविधवर्तनसंवितकारणैः ससमदैः समदैः समसेव्यत ॥

(गंगाधर कविराचित 'मंडलीक महाकाव्य' सर्ग ६, श्लो० २२)

(२) वंशक्रम—(१) अज्जा। (२) सिंहा। (३) आसा। (४) सुलतान। (५) बीदा (मानसिंह)। (६) देदा। (७) हरिदास। (८) रायसिंह। (९) सुलतान (दूसरा)। (१०) चन्द्रसेन। (११) कीर्तिसिंह। (१२) रायसिंह (दूसरा)। (१३) सुलतान (तीसरा)। (१४) चन्दनसिंह। (१५) कीर्तिसिंह (दूसरा)। (१६) शिवसिंह। (१७) रायसिंह (तीसरा)। (१८) दूलहसिंह।

रायमल के पास चले गये[1], जिसने उनको जागीरें देकर अपना सामन्त बनाया। अज्जा के वंशज सादड़ी के उमराव हैं, जिनका खिताब 'राजराणा' है। अज्जा महाराणा सांगा (संग्रामसिंह प्रथम) और मुग़ल बादशाह बाबर के बीच की खानवे की लड़ाई में महाराणा के साथ रहकर लड़ा। जब महाराणा के सिर में तीर लगा और वह बेहोश हो गया तब उसके सरदार उसे लड़ाई के मैदान से मेवाड़ की ओर ले चले; उस समय इस आशंका से कि महाराणा को उपस्थित न देखकर उसकी सेना कहीं यह न समझ ले कि वह युद्धभूमि में नहीं है, उन्होंने अज्जा को महाराणा का प्रतिनिधि बनाकर उस (महाराणा) के हाथी पर बिठाया और वे सब उसकी आज्ञा में रहकर लड़ने लगे। उसने महाराणा के छत्र, चँवर आदि सब राजचिह्न धारण किये, जिससे अबतक उसके वंशजों को उन्हें धारण करने का अधिकार चला आता है। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में उक्त लड़ाई में वीरता से लड़कर वह मारा गया।

उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सिंहा हुआ, जो महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तोड़ की दूसरी चढ़ाई के समय हनुमान पोल पर लड़ता हुआ काम आया। उसका पुत्र आसा महाराणा उदयसिंह की वणवीर के साथ की चित्तोड़ की लड़ाई में मारा गया। आसा के पुत्र सुलतान ने महाराणा उदयसिंह के समय अकबर की चित्तोड़ की चढ़ाई में सूरज पोल के पास वीरगति पाई। उसका पुत्र बींदा, जिसका दूसरा नाम मानसिंह था, प्रसिद्ध हल्दीघाटी की लड़ाई में मारा गया। राजराणा देदा महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय में राणपुर की लड़ाई में जहांगीर बादशाह के सेनापति अब्दुल्लाखां (फ़ीरोज़जंग) से लड़कर खेत रहा।

उसके पीछे सादड़ी का स्वामी हरिदास हुआ, जो शाहज़ादा खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में खूब लड़ा और बुद्धिमान होने के कारण बादशाह के साथ सुलह कराने में महाराणा का मुख्य सलाहकार रहा। वि० सं० १६७२ (ई० स० १६१५) में जब महाराणा अमरसिंह का बालक पौत्र जगतसिंह जहांगीर के दरबार में गया उस समय हरिदास, जो महाराणा का

(१) अज्जा व सज्जा के मेवाड़ में चले जाने से उनका छोटा भाई राणकदेव हलवद का स्वामी हुआ।

विश्वासपात्र और जगतसिंह का अतालीक था, उसके साथ भेजा गया। उससे बादशाह बहुत खुश रहा और जगतसिंह को विदा करते समय उसने ५००० रु०, एक घोड़ा और खिलअत देकर उस (हरिदास) को भी सम्मानित किया।

जहांगीर बादशाह से बागी होकर शाहज़ादा खुर्रम आगरे से भागकर आंबेर को लूटता हुआ उदयपुर पहुँचा। फिर वहां से मांडू जाते समय वह सादड़ी में ठहरा जहां एक दरवाज़ा बनवाने की आज्ञा दी और वहां अपना एक निशान खड़ा करवाया। हरिदास का पुत्र रायसिंह कई वर्षों तक बादशाह की सेवा में रहने वाली उदयपुर की सेना का सेनापति रहा। शाहजहां बादशाह के समय में उसे ८०० ज़ात और ४०० सवार का मन्सब मिला, जो बढ़ते बढ़ते १००० ज़ात तथा ७०० सवार तक पहुँच गया था। नूरपुर (कांगड़ा), बलख, बदख्शां और कन्दहार की लड़ाइयों में शाही सेना के साथ रहकर उसने अच्छी प्रतिष्ठा पाई। उसका विवाह महाराणा कर्णसिंह की राजकुमारी के साथ हुआ था।

उसके पीछे ठिकाने का अधिकारी उसका पुत्र सुलतान (दूसरा) हुआ। देवलिये (प्रतापगढ़) का रावत हरिसिंह महाराणा राजसिंह से विरोध कर औरंगज़ेब बादशाह के पास चला गया, परन्तु उससे सहायता न मिलने पर उसने राजराणा सुलतानसिंह आदि को बीच में डालकर महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली। सुलतान का उत्तराधिकारी चन्द्रसेन हुआ। महाराणा राजसिंह ने अपने कुंवर जयसिंह को औरंगज़ेब के पास अजमेर भेजा उस समय चन्द्रसेन को उसके साथ कर दिया। औरंगज़ेब के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाइयों में वह खूब लड़ा और जिस समय कुंवर जयसिंह ने चित्तोड़ के पास शाहज़ादे अकबर की सेना का संहार किया उस समय वह कुंवर के साथ था। चन्द्रसेन का उत्तराधिकारी कीर्तिसिंह और उसका क्रमानुयायी रायसिंह (दूसरा) हुआ, जो हींता के पास मरहटों के साथ के युद्ध में घायल हुआ।

सुलतानसिंह (तीसरा) वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८८) में महाराणा भीमसिंह के समय सिंधिया की सेना के साथ की हड़क्याखाल की लड़ाई में घायल होकर कैद हुआ और दो वर्ष बाद अपने ठिकाने के चार गाँव देकर छूटा।

सुलतानसिंह के पुत्र चंदनसिंह के समय मरहठों ने सादड़ी को छीन लिया, परन्तु उसने लड़कर अपने ठिकाने पर पीछा अधिकार कर लिया। उसके

पुत्र कीर्तिसिंह (दूसरे) की पुत्री दौलतकुँवर का विवाह महाराणा शंभुसिंह के साथ हुआ। कीर्तिसिंह का पुत्र शिवसिंह सिपाही विद्रोह के समय नींबाहेड़े पर अधिकार करने में कप्तान शॉवर्स का सहायक रहा। शिवसिंह का पुत्र रायसिंह (तीसरा) हुआ। उसका उत्तराधिकारी उसके छोटे भाई सुलतानसिंह का पुत्र दूलहसिंह हुआ, जो सादड़ी का वर्तमान स्वामी है।

बेदला

बेदले के सरदार चौहान राजपूत हैं और 'राव' उनका ख़िताब है। वि० सं० १२४६ (ई० स० ११९२) में सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी ने अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज को मारकर उसके बालक पुत्र गोविन्दराज को अपनी अधीनता में अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परन्तु उस(पृथ्वीराज)के भाई हरिराज ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण अपने भतीजे को अजमेर से निकाल दिया। तब वह रणथंभोर चला गया और हरिराज अजमेर का स्वामी हुआ। वि० सं० १२५१ (ई० स० ११९४) की लड़ाई में मुसलमानों ने हरिराज को हराकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। रणथंभोर में चौहानों का राज्य गोविन्दराज से लगाकर हम्मीर तक रहा। वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०१) में सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी ने रणथंभोर पर चढ़ाई कर हम्मीर को मार उसका राज्य छीन लिया। तब हम्मीर के सम्बन्धियों ने गुजरात और संयुक्त प्रान्त आदि में जाकर नये राज्य स्थापित किये।

वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में पानीपत की लड़ाई में इब्राहीम लोदी को हराकर बाबर दिल्ली का स्वामी हुआ। फिर वह महाराणा सांगा से लड़ने को चला। उस समय मैनपुरी इलाके के चंदवार स्थान से चन्द्रभान[1] चौहान ४००० सैनिक साथ लेकर महाराणा से जा मिला और खानवे की लड़ाई में मारा गया। उसके बचे हुए रिश्तेदार और सिपाही मेवाड़ की सेवा में ही रहे।

---

(१) वंशक्रम—(१) चन्द्रभान। (२) संग्रामसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) बल्लू। (५) रामचन्द्र। (६) सबलसिंह। (७) सुलतानसिंह। (८) बख़्तसिंह। (९) रामचन्द्र (दूसरा)। (१०) प्रतापसिंह (दूसरा)। (११) केसरीसिंह। (१२) बख़्तसिंह (दूसरा)। (१३) तख़्तसिंह। (१४) कर्णसिंह। (१५) नाहरसिंह।

चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई हुई उस समय चन्द्रभान का पुत्र संग्रामसिंह[1] और उसका चाचा ईसरदास वीरता से लड़कर काम आये। संग्रामसिंह का पौत्र राव बल्लू शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। जहांगीर बादशाह से सुलह हो जाने के पीछे जब सारे मेवाड़ पर उक्त महाराणा का अधिकार हो गया उस समय उसकी आज्ञा से रावत मेघसिंह चूंडावत ने नारायणदास शक्तावत को बेगूं से निकाल कर वहांपर महाराणा का अधिकार करा दिया और महाराणा ने बेगूं की जागीर बल्लू चौहान को दे दी। इससे अप्रसन्न होकर मेघसिंह बादशाह के पास चला गया, परन्तु कुछ समय पीछे कुंवर कर्णसिंह को भेजकर महाराणा ने उसे उदयपुर पीछा बुला लिया और उसकी इच्छानुसार उसे बेगूं की जागीर दी। राव बल्लू को बेगूं के बदले गंगराड़ का इलाक़ा और बेदला मिला, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है।

राव रामचन्द्र महाराणा राजसिंह की आज्ञा से कुंवर जयसिंह के साथ औरंगज़ेब बादशाह के पास गया। उसका उत्तराधिकारी सबलसिंह औरंगज़ेब के साथ उक्त महाराणा की जो लड़ाइयां हुई उनमें लड़ा और चित्तोड़ के पास कुंवर जयसिंह ने जब शाहज़ादे अकबर पर आक्रमण किया उस समय वह कुंवर के साथ था। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के साथ उसकी पुत्री देवकुंवरी का विवाह[2] हुआ, जिससे महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) का जन्म हुआ। सबलसिंह के पीछे सुलतानसिंह और उसके बाद

---

(१) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑफ़ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार' (पृ० १५) में चन्द्रभान और संग्रामसिंह के बीच समरसी, भीखम, भीमसेन, देवीसेन, रूपसेन और दलपतसेन ये छः नाम और दिये हैं जो अशुद्ध हैं। चन्द्रभान का पुत्र संग्रामसिंह था। चन्द्रभान वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में खानवे की लड़ाई और संग्रामसिंह वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६८) में अकबर की चित्तोड़ की लड़ाई में काम आया। इस प्रकार केवल ४० वर्ष के भीतर सात पुश्तों का होना संभव नहीं। बेदले के चौहानों की तीन पुरानी वंशावलियाँ मुझे मिली हैं जिनमें ये छः नाम नहीं हैं।

(२) कर्नल वॉल्टर ने लिखा है कि महाराणा अमरसिंह को राव बख़्तसिंह की पुत्री ब्याही थी, जिससे संग्रामसिंह (दूसरा) उत्पन्न हुआ (कर्नल वॉल्टर; बायोग्राफ़िकल स्केचेज़ आफ़ दी चीफ़्स आफ़ मेवार, पृ० १५)। उसका यह कथन निर्मूल है, क्योंकि महाराणा संग्रामसिंह की माता बेदले के राव बख़्तसिंह की नहीं, किन्तु रामचन्द्र के पुत्र

बख़्तसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। बख़्तसिंह के पुत्र रामचन्द्र (दूसरे) ने, जिसकी पुत्री महाराणा राजसिंह (दूसरे) को ब्याही और जो उसके साथ सती हुई थी, महाराणा अरिसिंह (दूसरे) को अधिकारच्युत कर महाराणा राजसिंह के वास्तविक पुत्र रत्नसिंह को गद्दी पर बिठाने के लिये सरदारों को उभारा, इतना ही नहीं, किन्तु वह बराबर उनके पक्ष में रहा और सात वर्ष की अवस्था में शीतला की बीमारी से असली रत्नसिंह के मर जाने पर सरदारों ने उसी उम्र के एक लड़के को रत्नसिंह बतलाकर झूठा दावेदार खड़ा किया, उस समय भी वह (रामचन्द्र) अन्य विरोधी सरदारों के समान उसी का तरफ़दार रहा।

उसका तीसरा वंशधर राव बख़्तसिंह (दूसरा) बड़ा बुद्धिमान, कार्यदक्ष, ईमानदार और स्वामिभक्त था। ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) के ग़दर के समय जब नीमच की सरकारी सेना बाग़ी हो गई तब वहां से भागकर ४० अंग्रेज़ों ने, जिनमें औरतें तथा बच्चे भी शामिल थे, डूंगला गांव में आश्रय लिया, पर वहां भी बाग़ी जा पहुंचे। यह ख़बर पाते ही महाराणा सरूपसिंह ने बाग़ियों का दमन करने के लिए मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शॉवर्स के साथ राव बख़्तसिंह को ससैन्य भेजा। बख़्तसिंह ने डूंगले से बाग़ियों को निकालकर महाराणा की आज्ञा के अनुसार औरतों और बच्चों सहित अंग्रेज़ों को हिफ़ाज़त के साथ उदयपुर पहुँचा दिया तथा जबतक उधर का विद्रोह शान्त न हुआ तबतक वह अंग्रेज़ों के साथ रहकर उन्हें बराबर

सबलसिंह की पुत्री थी, जैसा कि देवकुंवरी के बनाये हुए सीसारमा गांव के वैद्यनाथ के मंदिर की प्रशस्ति से पाया जाता है—

तदात्मजन्मा किल रामचन्द्रः····।·········॥१३॥

तदात्मजः श्रीसुलतानसिंहः स्थानं तदीयं विधिवत् प्रशास्ति·········॥१५॥

तस्माद्गुणाब्धेः सबलाभिधानाद्रमेव साक्षादुदिताभवद्या।

पितुर्गृहेऽवर्धत सद्गुणौघैर्नाम्ना युता देवकुमारिकेति ॥ १६ ॥

पित्रा च दत्ता सबलेन राज्ञा वराय योग्यामरसिंहनाम्ने ॥ १७ ॥

ततोऽमराज्ञी जयसिंहसूनोर्जाता महापुण्यपवित्रमूर्तिः।

रमेव साक्षान्मकरध्वजं सा संग्रामसिंहं सुतमापदीड्यं ॥ १८ ॥

(वैद्यनाथ के मंदिर की प्रशस्ति; प्रकरण ४)।

मदद देता रहा। उसकी इस सेवा के उपलक्ष्य में अंग्रेज़ी सरकार की ओर से उसे तलवार दी गई। महाराणा शंभुसिंह की नाबालिगी के समय वह रीजेन्सी कौंसिल का मेम्बर रहा। महाराणा सज्जनसिंह के राजत्वकाल में उसे वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७७) के दिल्ली दरबार में 'रावबहादुर' तथा उसके दूसरे वर्ष सी० आई० ई० का खिताब मिला और वह 'इजलास खास' का भी मेम्बर रहा।

उसके पीछे तख़्तसिंह और कर्णसिंह यथाक्रम ठिकाने के अधिकारी हुए। इन दोनों को भी 'रावबहादुर' का खिताब मिला और दोनों 'महद्राजसभा' के मेम्बर रहे। कर्णसिंह का पुत्र रावबहादुर नाहरसिंह बेदले का वर्तमान स्वामी और महद्राजसभा का मेंबर है। नाहरसिंह के चाचा ठाकुर राजसिंह की योग्यता से प्रसन्न होकर उसे भी अंग्रेज़ी सरकार ने 'रावबहादुर' की उपाधि दी है और वह राज्य में प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त है।

कोठारिया

कोठारिये के सरदार रणथंभोर के अंतिम चौहान राजा हम्मीर के वंशज[1] हैं और 'रावत' उनका खिताब है। बाबर और महाराणा सांगा की लड़ाई के समय संयुक्त प्रान्त के मैनपुरी ज़िले के राजौर स्थान से माणिकचन्द[2] चौहान ४००० सैनिकों को साथ लेकर महाराणा की मदद के लिए आया और वीरता से लड़कर मारा गया। उसके संबंधी और सैनिक महाराणाओं की सेवामें ही रहे। माणिकचन्द[3] के पीछे सारंगदेव, जयपाल और खान क्रमशः उसके ठिकाने

---

(१) कर्नल वॉल्टर ने कोठारिये के चौहानों का सुप्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज के चाचा कन्ह के वंश में होना लिखा है, जो भ्रम ही है, क्योंकि कन्ह नाम का पृथ्वीराज का कोई चाचा ही न था। 'पृथ्वीराज रासो' पर विश्वास करने से यह भूल हुई है।

(२) वंशक्रम—(१) माणिकचन्द। (२) सारंगदेव। (३) जयपाल। (४) खान। (५) तातारखान। (६) धर्मांगद। (७) साहिबखान। (८) पृथ्वीराज। (९) रुक्मांगद। (१०) उदयकरण (उदयभान)। (११) देवभान। (१२) बुधसिंह। (१३) फ़तहसिंह। (१४) विजयसिंह। (१५) मोहकमसिंह। (१६) जोधसिंह। (१७) संग्रामसिंह। (१८) केसरीसिंह। (१९) जवानसिंह। (२०) उरजणसिंह। (२१) मानसिंह।

(३) माणिकचन्द के भाई वीरचन्द के वंशजों के अधिकार में गुड़लां का ठिकाना है। गुड़लां से पीपली का ठिकाना निकला है।

के स्वामी हुए। वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में महाराणा विक्रमादित्य को मारकर बणवीर मेवाड़ का स्वामी बन बैठा। एक दिन भोजन करते समय उसने रावत खान को अपना झूठा भोजन खिलाना चाहा, जिससे अप्रसन्न होकर वह महाराणा विक्रमादित्य के भाई उदयसिंह के पास कुंभलगढ़ चला गया। वहां उसने साईंदास, जग्गा, सांगा आदि चूंडावतों तथा अन्य सरदारों को बुला लिया। उनकी सहायता से बणवीर को निकाल कर उदयसिंह मेवाड़ का स्वामी बना। इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने खान को 'रावत' की उपाधि दी, जो महाराणाओं के कुटुंबियों को मिलती थी।

खान का तीसरा वंशधर साहिबखान चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई के समय लड़ता हुआ मारा गया। उसका उत्तराधिकारी पृथ्वीराज शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। पृथ्वीराज का पुत्र रुक्मांगद[1] औरंगज़ेब के साथ की महाराणा राजसिंह की लड़ाइयों में महाराणा के साथ और शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ था। महाराणा जयसिंह के समय सुलह की बातचीत करने के लिए वह औरंगज़ेब के पास भेजा गया। रुक्मांगद का पुत्र उदयकरण[2] (उदयभान) महाराणा राजसिंह के समय बांसवाड़े की चढ़ाई में अपने पिता के साथ था और उसकी विद्यमानता में ही महाराणा की ओर से शाहज़ादे औरंगज़ेब के पास दक्षिण में भी भेजा गया था। जब औरंगज़ेब ने बिना अपनी अनुमति के किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की पुत्री चारुमती के साथ विवाह करने का कारण महाराणा राजसिंह से दर्याफ़्त किया तब उसके उत्तर में महाराणा ने एक अर्ज़ी उदयकरण के हाथ बादशाह के पास भेजी। मेवाड़ पर शाहज़ादे अकबर की चढ़ाई के समय उस (उदयकरण) ने बड़ी बहादुरी दिखाई और उदयपुर के शाही थाने पर आक्रमण कर उसने बहुतसे मुसलमानों को मार डाला। उसकी इस वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे १२ गांव दिये। महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर उसने कुंवर का पक्ष लिया।

---

(१) फलीचड़ा के चौहान रुक्मांगद के वंशधर हैं।

(२) बनेड़या के चौहान उदयकरण के वंशज हैं और थांवले के चौहान उसके पौत्र बुधसिंह के।

उसका उत्तराधिकारी देवभान रणबाज़खां मेवाती के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में लड़ा। उसका पोता फ़तहसिंह महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय पहले तो रत्नसिंह का तरफ़दार रहा, परन्तु जब माधवराव सिंधिया ने उदयपुर का घेरा उठा लिया तबसे उसने रत्नसिंह का साथ छोड़कर महाराणा का पक्ष लिया और रत्नसिंह के तरफ़दारों (महापुरुषों) से दो बार लड़ा। महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में फ़तहसिंह का पुत्र विजयसिंह ऊनवास गांव से कोठारिया जाते समय होलकर की सेना से घिरगया और मरहटों के मांगने पर अपने शस्त्र तथा घोड़े उनके सुपुर्द न कर उसने घोड़ों को मार डाला और स्वयं अपने साथियों सहित बड़ी वीरता से लड़कर मारा गया। विजयसिंह का सातवां वंशधर मानसिंह कोठारिये का वर्तमान सरदार है।

सलूंबर

सलूंबर के सरदार महाराणा लक्षसिंह (लाखा) के ज्येष्ठ पुत्र सत्यव्रत, त्यागी और पितृभक्त चूंडा[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

मंडोवर के राव चूंडा राठोड़ के ज्येष्ठ पुत्र रणमल की बहिन हंसबाई के साथ विवाह करने की अपने पिता महाराणा लाखा की इच्छा जानकर चूंडा ने रणमल को कहलाया कि आप अपनी बहिन की शादी महाराणा के साथ कर दें, परन्तु इसे अस्वीकार करते हुए उसने कहा कि आपसे तो अपनी बहिन की शादी करने को मैं तैयार हूं, क्योंकि उससे कोई पुत्र उत्पन्न होगा तो भविष्य में वह मेवाड़ का स्वामी बनेगा, किन्तु महाराणा को ब्याहने से मेरी बहिन की संतान को मेवाड़ के भावी स्वामी की सेवा कर निर्वाह करना पड़ेगा। इसपर चूंडा ने उत्तर दिया कि मैं सदा के लिए मेवाड़-राज्य का अपना हक़ छोड़ता हूं और एकलिंगजी की शपथ खाकर इस आशय का इक़रारनामा

---

(१) वंशक्रम—(१) चूंडा। (२) कांधल। (३) रत्नसिंह। (४) दूदा। (५) सांईदास। (६) खेंगार। (७) किशनदास। (८) जैतसिंह। (९) मानसिंह। (१०) पृथ्वीराज। (११) रघुनाथसिंह। (१२) रत्नसिंह (दूसरा)। (१३) कांधल (दूसरा)। (१४) केसरीसिंह। (१५) कुबेरसिंह। (१६) जैतसिंह (दूसरा)। (१७) जोधसिंह। (१८) पहाड़सिंह। (१९) भीमसिंह। (२०) भवानीसिंह। (२१) रत्नसिंह (तीसरा)। (२२) पद्मसिंह। (२३) केसरीसिंह (दूसरा)। (२४) जोधसिंह (दूसरा)। (२५) ओनाड़सिंह। (२६) खुंमाणसिंह।

लिख दिया कि हंसबाई से महाराणा के यदि कोई पुत्र होगा तो वही उनके पीछे मेवाड़ का स्वामी होगा और मैं उसका सेवक होकर रहूंगा।

तब रणमल ने महाराणा के ही साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया, जिससे मोकल का जन्म हुआ। चूंडा की पितृभक्ति से प्रसन्न होकर महाराणा ने आज्ञा दी कि अब से राज्य की ओर से पट्टों, परवानों आदि पर भाले का चिह्न चूंडा और उसके मुख्य वंशधर करेंगे तथा 'भांजगड़' (राज्यप्रबन्ध) का काम उन्हीं की सम्मति से होगा। महाराणा की इस आज्ञा का पालन बराबर होता रहा, परन्तु पीछे से चूंडा के मुख्य वंशधर कभी उदयपुर और कभी अपने ठिकाने में रहने लगे, जिससे सहूलियत के लिए उन्होंने भाले का चिह्न बनाने का अधिकार अपनी तरफ़ से 'सहीवालों' को दे दिया, जो अबतक सनदों पर वह चिह्न बनाते चले आते हैं।

महाराणा का देहान्त हो जाने पर मोकल को गद्दी पर बिठाकर चूंडा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इसपर राजमाता ने प्रसन्न होकर राज्य का सारा काम उसके सुपुर्द कर दिया, जिससे रणमल आदि स्वार्थी लोगों को ईर्ष्या हुई और वे उसकी ओर से राजमाता का मन फेर देने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने हंसबाई से कहा कि मोकल को मारकर चूंडा स्वयं महाराणा बनना चाहता है। उसकी इस बात पर विश्वास कर हंसबाई ने तुरन्त चूंडा को बुला भेजा और उससे कहा 'या तो तुम मेवाड़ छोड़ दो या जहां तुम कहो वहां मैं ही अपने पुत्र सहित चली जाऊं'। तब सत्यव्रत चूंडा मांडू के सुलतान के पास चला गया, जिसने उसे एक अच्छी जागीर देकर बड़े सम्मान के साथ अपने यहां रखा। जब महाराणा मोकल चाचा और मेरा के हाथ से मारा गया और उनका सहायक महपा पँवार मांडू के सुलतान महमूद खिलजी के पास चला गया तब उसे सुपुर्द कर देने के लिए महाराणा कुंभा ने सुलतान को पत्र लिखा, जिसका महाराणा को यह उत्तर देकर कि मैं अपने शरणागत को किसी प्रकार आपके हवाले नहीं कर सकता वह लड़ने की तैयारी करने लगा। उसने चूंडा को भी साथ चलने के लिए कहा, परन्तु उसने उसके साथ रहकर स्वामिद्रोही बनना किसी प्रकार स्वीकार न किया। मेवाड़ में दिन दिन रणमल का प्रभाव बढ़ता देखकर महाराणा कुंभा की माता सौभाग्यदेवी

ने इस डर से कि कहीं वह (रणमल) मेरे पुत्र को मारकर उसका राज्य न छीन ले उसकी रक्षा के लिए स्वामिभक्त चूंडा को चित्तोड़ वापस बुला लिया और उसके पुत्रों के निर्वाह के लिए बेगूं आदि के इलाके जागीर में दिये। फिर राजमाता और महाराणा की आज्ञा से रणमल के मारे जाने पर उसका पुत्र जोधा अपने भाइयों तथा सैनिकों को साथ लेकर मारवाड़ की ओर भागा, परन्तु चूंडा ने उसका पीछाकर उसके राज्य (मंडोवर) पर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में महाराणा कुंभा का ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) अपने पिता को मारकर मेवाड़ का स्वामी बन बैठा। तब राजभक्त सरदारों ने चूंडा के पुत्र कांधल की अध्यक्षता में युद्धकर उस पितृघाती को मेवाड़ से निकाल दिया और वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में उसके भाई रायमल को गद्दी पर बिठाया। सुलतान ग़यासुद्दीन के सेनापति ज़फ़रख़ां के साथ की महाराणा रायमल की लड़ाइयों में कांधल लड़ा। उसका उत्तराधिकारी रत्नसिंह बाबर के साथ की महाराणा सांगा की लड़ाई में महाराणा के साथ था। जब महाराणा सिर में तीर लगने से बेहोश हुआ और कुछ सरदार उसे मेवाड़ की ओर ले जाने लगे, उस समय इस आशंका से कि उस (महाराणा) को युद्धस्थल में न देखकर राजपूत हतोत्साह हो जायँगे, उन्होंने उसका प्रतिनिधि बनकर उसके हाथी पर बैठने तथा राजचिह्न धारण करने के लिए रावत रत्नसिंह से कहा, जिसपर उसने यही उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज मेवाड़ का राज्य छोड़ चुके हैं, इसलिए मैं क्षण भर के लिए भी राज्यचिह्न फिर धारण नहीं कर सकता, परन्तु जो महाराणा का प्रतिनिधि बनेगा उसकी आज्ञा में रहकर प्राण रहते तक लडूंगा। इसपर बड़ी सादड़ीवालों का पूर्वज अज्जा महाराणा का प्रतिनिधि बनाया गया और उसकी अध्यक्षता में रहकर रत्नसिंह ने लड़ते हुए वीर-गति पाई।

उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र दूदा हुआ, जो बहादुरशाह की चित्तोड़ की चढ़ाई के समय वीरता के साथ लड़कर काम आया। उसका क्रमानुयायी उसका भाई सांईदास हुआ, जिसको महाराणा उदयसिंह (दूसरे) ने उसकी वंश-परंपरागत जागीर का स्वामी बनाया। चित्तोड़ पर जब अकबर की चढ़ाई हुई उस समय वह सूरजपोल दरवाज़े के सामने अपने पुत्र अमरसिंह

सहित लड़ता हुआ मारा गया। सारंगदास का उत्तराधिकारी खेंगार हुआ। उस के पीछे उसके दो पुत्रों कृष्णदास (किशनदास) और गोविन्ददास में ठिकाने के लिए झगड़ा हुआ जिसे मिटाने के लिए महाराणा ने यह आज्ञा दी कि एक भाई तो 'भांजगड़' (राज्य-प्रबन्ध) का अधिकार स्वीकार करे और दूसरा ठिकाने का। जागीर से भांजगड़ का महत्व अधिक समझकर किशनदास ने भांजगड़ स्वीकार की और जागीर अपने भाई को दे दी।

उन दिनों सलूंबर पर सिंहा राठोड़ का अधिकार था। वह छापा मारकर मेवाड़ की प्रजा को सताता था, इसलिए किशनदास ने रावत जैतसिंह सारंगदेवोत की सहायता से उसे मारकर उसके ठिकाने पर अधिकार कर लिया। तब से ही सलूंबर उसके वंशजों के अधिकार में है।

महाराणा उदयसिंह ने अपनी राणी भटियाणी पर विशेष प्रेम होने के कारण उसके पुत्र जगमाल को, जो उसका नवां पुत्र था, अपना उत्तराधिकारी नियत किया, परन्तु महाराणा का देहान्त होने पर किशनदास की इच्छा के अनुसार महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र तथा राज्य का वास्तविक हक़दार प्रतापसिंह ही गद्दी पर बिठाया गया। इससे अप्रसन्न होकर जगमाल बादशाह अकबर के पास चला गया। किशनदास हल्दी घाटी की लड़ाई में महाराणा प्रतापसिंह के साथ रह कर लड़ा था। महाराणा को मरते समय अत्यन्त दुखी देखकर किशनदास के उत्तराधिकारी रावत जैतसिंह ने उसके दुःख का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि मुझे दुःख केवल इस बात का है कि मेरा पुत्र अमरसिंह कुछ आरामपसन्द है, इसलिये कष्ट और आपत्तियां सहकर अपने देश की स्वतन्त्रता तथा वंश के गौरव की रक्षा न कर सकेगा। मेरी आत्मा इस शरीर को शान्तिपूर्वक तभी छोड़ सकती है जब इस गुरुतर भार को उठाने की आप लोग स्वयं प्रतिज्ञा करें। इस पर जैतसिंह तथा अन्य सरदारों ने भी बापा रावल की गद्दी की शपथ खाकर जब वैसी ही प्रतिज्ञा की तब शान्तिपूर्वक महाराणा का देहावसान हुआ।

वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में महाराणा अमरसिंह ने जब ऊंटाले के बादशाही थाने पर चढ़ाई करना चाहा उस समय उससे शक्तावतों ने अनुरोध किया कि इस बार आपकी सेना की हरावल में चूंडावतों के बजाय हम

लोग रहेंगे। इसपर महाराणा ने आज्ञा दी कि अब से हरावल में रहकर लड़ने का अधिकार उसी पक्ष का समझा जायगा, जो ऊंटाले के गढ़ में सबसे पहले प्रवेश करेगा। यह आज्ञा सुनते ही चूंडावत और शक्तावत अपनी अपनी सेना सहित ऊंटाले की ओर रवाना हुए। चूंडावतों का सरदार रावत जैतसिंह तथा उसके साथी ऊंटाले पहुँचते ही सीढ़ी लगाकर क़िले की दीवार पर चढ़ गये, परन्तु छाती पर गोली लगने से जैतसिंह के नीचे गिरते ही उसकी आज्ञा के अनुसार उसके साथियों ने उसका सिर काटकर किले में फेंक दिया। इसके पीछे दरवाज़ा तोड़कर शक्तावतों ने भी किले में प्रवेश किया, परन्तु इसके पहले ही चूंडावतों ने जैतसिंह का कटा हुआ सिर किले में फेंक दिया था। इससे चूंडावतों का हरावल में रहने का अधिकार बना रहा। जैतसिंह का पुत्र मानसिंह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। मानसिंह के पीछे क्रमशः पृथ्वीराज और रघुनाथसिंह सलूंबर के स्वामी हुए।

महाराणा राजसिंह के समय डूंगरपुर का रावल गिरधर, बांसवाड़े का रावल समरसिंह और प्रतापगढ़ का रावत हरिसिंह मेवाड़ से स्वतन्त्र बन बैठे। इसपर महाराणा ने प्रधान फ़तहचन्द की अध्यक्षता में रावत रघुनाथसिंह, रावत मानसिंह (सारंगदेवोत), महाराज मोहकमसिंह शक्तावत आदि सरदारों को भेजकर उन्हें अधीन किया। रघुनाथसिंह महाराणा का मुसाहब था। बादशाह औरंगज़ेब की तरफ़ से मुन्शी चन्द्रभान उदयपुर गया उस समय उसने रघुनाथसिंह की योग्यता आदि के विषय में बादशाह को बहुत कुछ लिखा। इससे स्वार्थी लोग ईर्षावश रघुनाथसिंह के विरुद्ध महाराणा के कान भरने लगे, जिसका फल यह हुआ कि उस(महाराणा)ने चूंडा और उसके वंशजों का सारा उपकार भूलकर सलूंबर की जागीर का पट्टा पारसोली के राव केसरीसिंह के नाम लिख दिया, जिससे अप्रसन्न होकर रघुनाथसिंह अपने ठिकाने को चला गया और उसपर केसरीसिंह का अधिकार न होने दिया। उसका पुत्र रत्नसिंह (दूसरा) महाराणा की सेवा में बना रहा और मेवाड़ पर औरंगज़ेब की चढ़ाई में उक्त महाराणा की सेवा में रहकर लड़ा, हसनअलीख़ां को परास्त किया, शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में वह कुंवर के साथ रहा, गोगूंदे की घाटी में उसने दिलावरख़ां को घेरा और रात

को घाटी से निकलते हुए उससे लड़ाई की। इसके सिवा औरंगज़ेब से मेवाड़ की रक्षा करने के लिये शाहज़ादे मुअज़्ज़म को मिलाने के उद्योग में भी वह शामिल रहा।

महाराणा जयसिंह और उसके कुंवर अमरसिंह (दूसरे) के बीच बिगाड़ हो जाने पर रत्नसिंह का उत्तराधिकारी कांधल (दूसरा) महाराणा का तरफ़दार रहा। कुंवर का पक्षपाती होने से पारसोली के सरदार केसरीसिंह को महाराणा ने मरवाना चाहा। तब उसकी आज्ञा के अनुसार कांधल ने थूर के तालाब पर मौक़ा पाकर केसरीसिंह की छाती में अपना कटार घुसेड़ दिया। केसरीसिंह ने भी मरते मरते कांधल पर अपने कटार का वार किया। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये।

रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में कांधल के पुत्र केसरीसिंह ने अपने भाई सामन्तसिंह को ससैन्य भेजा। मालवे के पठानों ने जब मंदसोर ज़िले के कई गांवों को लूट लिया उस समय महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने केसरीसिंह आदि सरदारों को उनपर भेजा, जिन्होंने उन्हें लड़ाई में हराकर भगा दिया। केसरीसिंह की इस सेवा से महाराणा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सच्ची स्वामि-भक्ति के कारण उस (केसरीसिंह) की प्रतिष्ठा बढ़ाई। केसरीसिंह के उत्तराधिकारी कुबेरसिंह ने महाराणा जगत्सिंह को पत्र लिखकर राजपूताने से मरहटों को निकाल देने के लिये राजपूताने के सब राजाओं को एकता के सूत्र में बांधने की सम्मति दी, परन्तु उसमें सफलता न हुई।

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) का देहान्त होने पर कुबेरसिंह के पुत्र जैतसिंह (दूसरे) ने कुंवर प्रतापसिंह को क़ैद से छुड़ा कर गद्दी पर बिठाया और महाराणा राजसिंह (दूसरे) की नाबालिग़ी में वह राज्य का मुसाहब रहा। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के मरने पर उसके पुत्र रामसिंह और भतीजे विजयसिंह के बीच गद्दी के लिये झगड़ा हुआ उस समय रामसिंह ने जयआपा सिंधिया को अपनी मदद के लिये बुलाया, जिससे विजयसिंह ने जोधपुर छोड़-कर नागोर में शरण ली और आपस में समझौता करा देने के लिये महाराणा को लिखा। तब महाराणा ने रावत जैतसिंह को नागोर भेजा, परन्तु विजयसिंह के

दो राजपूतों-द्वारा जयआपा के मारे जाने पर मरहटों ने राजपूतों पर आक्रमण किया, जिसमें जैतसिंह लड़ता हुआ मारा गया।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के अनुचित वर्ताव से बहुतसे सरदार उसके विरोधी हो गये और उसे राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। जैतसिंह के उत्तराधिकारी जोधसिंह पर सरदारों से मिल जाने का झूठा ही सन्देह हो जाने के कारण जब वह नाहरमगरे में महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ तब महाराणा ने विष मिला हुआ पान निकालकर उससे कहा कि या तो इसे तुम खा जाओ या मुझे खिला दो। इसपर उस स्वामिभक्त ने तुरन्त पान खा लिया और वहीं उसका देहान्त हो गया। उसका पुत्र पहाड़सिंह महाराणा के इस अनुचित व्यवहार का कुछ भी ख़याल न कर अपने वंश की प्राचीन मर्यादा का पालन करने के लिए उसकी सेवा में उपस्थित हो गया और वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६६) में उज्जैन की लड़ाई में सिंधिया की मरहटी सेना से लड़कर उसने पूर्ण युवावस्था में ही वीरगति पाई।

उसका उत्तराधिकारी भीमसिंह हुआ, जिसकी सलाह से उक्त महाराणा ने अमरचन्द बड़वे को अपना प्रधान बनाया। वह उदयपुर पर माधवराव सिंधिया की चढ़ाई में मरहटों से खूब लड़ा और सिंधिया के साथ सुलह हो जाने पर महाराणा ने उसे पुरस्कार देकर सम्मानित किया। फिर उसपर उदयपुर की रक्षा का भार छोड़कर महाराणा महापुरुषों से लड़ने गया। इसके पीछे मेहता सूरतसिंह क़िलेदार से चित्तोड़ का क़िला खाली कराने के लिए महाराणा ने उसे भेजा। उसने वहां जाकर सूरतसिंह से क़िला छीन लिया तब महाराणा ने क़िला उसी की सुपुर्दगी में रखा। महाराणा हंमीरसिंह (दूसरे) के समय वेतन न मिलने के कारण सिंधी सिपाहियों ने विद्रोह किया उस समय भीमसिंह ने उन्हें क़िले में बुलाया और तनख्वाह के बदले ज़मीन देकर उन्हें शान्त किया। महाराणा भीमसिंह के समय रावत भीमसिंह का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह तथा आमेट के रावत प्रतापसिंह की सहायता से वह राज्य का सारा कारबार चलाता था। चूंडावतों और शक्तावतों के बीच बिगाड़ और लड़ाइयां होने के पीछे जब महाराणा शक्तावतों के पक्ष में हुआ उस समय उन्होंने चूंडावतों का ज़ोर तोड़ने और भीमसिंह

से चित्तोड़ का क़िला खाली करने के लिए अपने हिमायती झाला ज़ालिमसिंह को और उसी की सलाह से माधवराव सिंधिया को भी मदद के लिए बुलाया। सिंधिया, ज़ालिमसिंह और शक्तावतों की सेना-सहित महाराणा ने चित्तोड़ पहुंचकर क़िले पर मोर्चे लगाये, तब भीमसिंह ने सिंधिया के सेनापति आंबाजी इंगलिया की मारफ़त महाराणा को कहलाया कि यदि आप हमारे शत्रु ज़ालिमसिंह को कोटे वापस भेज दें तो क़िला खाली कर आपकी सेवा में हाज़िर होने में मुझे कोई उज्र नहीं है। इसे महाराणा के स्वीकार कर लेने और ज़ालिमसिंह के लौट जाने पर वह (भीमसिंह) क़िला खाली कर महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया। वि० सं० १८५० (ई० स० १७६४) में महाराणा के डूंगरपुर घेर लेने पर गद्दीनशीनी के दस्तूर के तीन लाख रुपये तथा सेना का ख़र्च दिलाकर भीमसिंह ने महाराणा और रावल फ़तहसिंह के बीच मेल कराया। फिर वि० सं० १८५३ (ई० स० १७६६) में वह मुसाहब बनाया गया। लकवा के साथ की गणेशपन्त की लड़ाइयों में वह लकवा की ओर से लड़ा।

भीमसिंह के पीछे भवानीसिंह, रत्नसिंह और पद्मसिंह क्रमशः सलूंबर के स्वामी हुए। महाराणा सरूपसिंह के समय पद्मसिंह का पुत्र केसरीसिंह अपने पिता का सारा अधिकार छीनकर ठिकाने का मालिकसा बन बैठा और महाराणा के राजत्वकाल के आरम्भ में उसका भी प्रीतिपात्र बना। आसींद के रावत दूलहसिंह की सलाह से, जिससे केसरीसिंह की अनबन थी, महाराणा ने पद्मसिंह को सलूंबर का स्वामी माना और उसकी आज्ञा के अनुसार ठिकाने का काम केसरीसिंह के द्वारा किये जाने की आज्ञा दी। इसपर अप्रसन्न होकर केसरीसिंह सलूंबर चला गया। फिर पद्मसिंह का देहान्त होने पर वह सलूंबर का स्वामी हुआ। तब उसने चाहा कि महाराणा वंश-परंपरागत प्रथा के अनुसार सलूंबर आकर मातमपुर्सी का दस्तूर अदा करें, पर इसे स्वीकार न कर महाराणा ने अपने चाचा दलसिंह को सलूंबर भेजना चाहा, जिसे केसरीसिंह ने स्वीकार न किया। इस प्रकार महाराणा और केसरीसिंह के बीच अनबन चलती ही रही। फिर नियमित रूप से नौकरी न करने के अपराध में महाराणा ने उसके कई गांव ज़ब्त कर लिए, परन्तु उस (केसरीसिंह) ने अपने ज़ब्त किये हुए गांवों से राज्य के सैनिकों को निकाल दिया और उनपर फिर

क़ब्ज़ा कर लिया। इसपर महाराणा ने उसका दमन करने के लिए अंग्रेज़ी सरकार से सहायता मांगी, परन्तु उसने साफ़ इन्कार कर दिया। महाराणा के साथ केसरीसिंह का विरोध बराबर जारी रहा और महाराणा के समय सरदारों के साथ का उसका सम्बन्ध स्थिर करने के लिए दो क़ौलनामे हुए, जिनमें से किसी पर भी उस(केसरीसिंह)ने हस्ताक्षर न किये।

वि० सं० १६१६ (ई० स० १८६२) में केसरीसिंह का देहान्त होने पर बंबोरे का रावत जोधसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और महाराणा शंभुसिंह ने सलूंबर जाकर प्राचीन रीति के अनुसार मातमपुर्सी की रस्म अदा की। वि० सं० १९५७ (ई० स० १६००) में जोधसिंह के मरने पर बंबोरे से रावत ओनाड़सिंह गोद गया, जिसका वि० सं० १९८६ में देहान्त होने पर चावंड का रावत खुमाणसिंह सलूंबर का स्वामी हुआ।

बीजोल्यां

बीजोल्यां[1] के सरदार परमार (पँवार) राजपूत हैं। पहले उन्हें 'राव' का ख़िताब मिला था फिर उसके अतिरिक्त 'सवाई' की भी उपाधि मिली। वे मालवे के परमारों के वंशज हैं। कभी उज्जैन और कभी धार उनकी राजधानी रही। दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुग़लक के समय मालवे का सारा प्रदेश मुसलमानों के अधिकार में चला गया, जिससे परमारों के कुछ वंशधर तो अजमेर में, कुछ दक्षिण में और कुछ अन्यत्र चले गये।

बीजोल्यां के परमारों का मूल पुरुष अशोक[2] जगनेर से महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के पास गया और महाराणा रत्नसिंह के राजत्वकाल में जब महाराणा सांगा की राणी कर्मवती अपने पुत्र विक्रमादित्य को मेवाड़ का राज्य दिलाने के प्रपञ्च में लगी उस समय वह (अशोक) बादशाह बाबर के पास

---

(१) बीजोल्यां मेवाड़ में एक प्राचीन स्थान है, जिसका वृत्तान्त पहले लिखा जा चुका है।

(२) वंशक्रम-(१) अशोक। (२) सज्जनसिंह। (३) ममरखान। (४) डूंगरसिंह। (५) शुभकरण। (६) केशवदास। (७) इन्द्रभान। (८) बैरीसाल। (९) दुर्जनसाल। (१०) विक्रमादित्य। (११) मान्धाता। (१२) शुभकरण (दूसरा) सवाई। (१३) केशवदास। (१४) गोविन्ददास। (१५) कृष्णसिंह। (१६) पृथ्वीसिंह। (१७) केसरीसिंह।

उस सम्बन्ध में बात चीत करने के लिये भेजा गया। उसका चौथा वंशधर शुभकरण शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा और उसने शाहज़ादे के साथ सुलह कर लेने की कुंवर कर्णसिंह को सलाह दी। वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१४) में वह महाराणा की तरफ़ से बादशाह जहांगीर के पास भेजा गया। उसका तीसरा वंशधर वैरीसाल, जो महाराणा राजसिंह का मामा था, औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयों में महाराणा के साथ रहकर लड़ा और शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ रहा। महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर वह महाराणा का तरफ़दार रहा।

उसका चौथा वंशधर शुभकरण (दूसरा) सरदारों के साथ की महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की लड़ाइयों में महाराणा के पक्ष में रहकर बड़ी वीरता से लड़ा, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे 'सवाई' की उपाधि दी। उसके पीछे केशवदास हुआ, जिसने मरहटों से लड़कर अपना ठिकाना, जिसपर उनका अधिकार हो गया था, छीन लिया[1]। उसकी जीवित दशा में ही उसके पुत्र शिवसिंह तथा शिवसिंह के ज्येष्ठ पुत्र गिरधारीदास का भी देहान्त हो गया। तब शिवसिंह के पुत्र नाथसिंह और गोविन्ददास के बीच ठिकाने के अधिकार के लिये झगड़ा हुआ, जो लगातार तीन वर्ष तक जारी रहा। इसी अरसे में नाथसिंह भी चल बसा, जिससे गोविन्ददास बीजोल्यां का स्वामी हुआ। गोविन्ददास का उत्तराधिकारी कृष्णसिंह बड़ा विद्यानुरागी था। पं० विनायक शास्त्री ने जब उदयपुर छोड़ दिया तब उसे कृष्णसिंह ने बड़े सम्मान के साथ अपने यहां रखा। बीजोल्यां से क़रीब एक मील दूर एक दिगम्बर जैनमन्दिर है, जिसके निकट के दो चट्टानों में से एक पर उक्त मन्दिर से सम्बन्ध रखनेवाला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ता० ५ फरवरी ई० स० ११७०) का चौहान राजा सोमेश्वर के समय का बड़ा शिलालेख तथा दूसरे पर 'उत्तमशिखरपुराण' नामक जैनग्रंथ उसी संवत् का खुदा हुआ है। इन दोनों अमूल्य लेखों के संरक्षण के सम्बन्ध में मेरे अनुरोध करने पर राव सवाई कृष्णसिंह ने उनपर पक्के मकान बनवा कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय

(१) कर्नल वॉल्टर; बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑफ़ दी चीफ्स् ऑफ़ मेवार, पृ० १८।

रावत दूदा (सांगावत)

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

दिया। उसके पीछे राव पृथ्वीसिंह कामा से गोद आकर बीजोल्यां का स्वामी हुआ। उसका उत्तराधिकारी राव सवाई केसरीसिंह वहां का वर्तमान सरदार है।

देवगढ़

सत्यव्रत चूंडा के पुत्र कांधल के चार पुत्रों में से दूसरा सिंह हुआ, जिसके दूसरे पुत्र सांगा[1] के वंशज सांगावत कहलाये, जो देवगढ़ के स्वामी हैं और रावत उनका ख़िताब है।

कोठारिये के रावत खान के बुलाने पर सांगा कुंभलगढ़ गया और वहां महाराणा विक्रमादित्य के भाई उदयसिंह को महाराणा मानकर उसने तथा अन्य सरदारों ने नज़राना किया और बणवीर को राज्यच्युत कर उस(उदयसिंह) को चित्तौड़ की गद्दी पर बिठाने में वह सहायक रहा। फिर महाराणा उदयसिंह का देहान्त होने पर वह महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बिठाने के पक्ष में रहा और हल्दी घाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में उसके साथ रहकर लड़ा।

उसका उत्तराधिकारी दूदा महाराणा अमरसिंह के समय ऊंटाले की चढ़ाई में जैतसिंह के साथ रहा तथा राणपुर की लड़ाई में मारा गया। उस(सांगा)का कनिष्ठ पुत्र जयमल मेवाड़ पर शाहज़ादे परवेज़ की चढ़ाई में काम आया। दूदा के पीछे ईसरदास हुआ, जो मोटाकीट नामक मेर के हाथ से लड़ाई में मारा[2] गया। उसके पीछे गोकुलदास ठिकाने का स्वामी हुआ। वह भी मेरों के साथ की लड़ाई में काम आया, जिससे उसका पुत्र द्वारकादास

---

(१) वंशक्रम-(१) सांगा। (२) दूदा। (३) ईसरदास। (४) गोकुलदास। (५) द्वारकादास। (६) संग्रामसिंह। (७) जसवंतसिंह। (८) राघवदास। (९) गोकुलदास (दूसरा)। (१०) नाहरसिंह। (११) रणजीतसिंह। (१२) कृष्णसिंह। (१३) विजयसिंह।

(२) दोहा—कीट कटारी चालवी खटकी खूमाणाह।
मोटे ईसर मारियो डाकी भर डाणाह॥ १॥

कविराजा बांकीदान; ऐतिहासिक बातों का संग्रह, संख्या ७४४।

देवगढ़ का स्वामी हुआ। महाराणा जयसिंह के जाज़िये के रुपये न देने से बादशाह औरंगज़ेब ने उसके पुर, मांडल तथा बदनोर के परगने ज़ब्त कर जुझारसिंह राठोड़ और उसके भतीजे कर्ण को दे दिये। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) को उक्त परगनों पर राठोड़ों का अधिकार बहुत खटकता था। जब राठोड़ों और उधर के चूंडावतों में झगड़ा हो गया, जिसमें कई चूंडावत मारे गये, उस समय महाराणा ने रावत द्वारकादास को राठोड़ों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी, परन्तु उसने उसका पूरा पालन न किया। महाराणा जयसिंह की गद्दीनशीनी होने पर डूंगरपुर के रावल खुमाणसिंह ने उपस्थित होकर टीके का दस्तूर पेश नहीं किया, जिससे अप्रसन्न होकर महाराणा ने डूंगरपुर पर सेना भेजी। सोम नदी पर लड़ाई हुई, जिसमें डूंगरपुर के कई चौहान सरदार मारे गये। खुमाणसिंह भाग गया और महाराणा की सेना ने शहर को लूटा। अंत में रावत द्वारकादास ने बीच में पड़कर सुलह कराई। खुमाणसिंह ने टीके का दस्तूर भेजा और सेना व्यय के रु० १७५००० की ज़मानत द्वारकादास ने दी।

उसका पुत्र संग्रामसिंह (दूसरा) रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में लड़ा और घायल हुआ। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह का देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह जयपुर का स्वामी हुआ, परन्तु महाराणा जगतसिंह (दूसरे) ने वि० सं० १७६५ की महाराजा जयसिंह की की हुई शर्त के अनुसार माधवसिंह को, जो महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का भानजा था, जयपुर की गद्दी पर बिठाना चाहा और जयपुर पर चढ़ाई कर उसका अधिकार करा देने के लिए वहां संग्रामसिंह के उत्तराधिकारी रावत जसवंतसिंह तथा अन्य सरदारों की अध्यक्षता में अपनी सेना भेजी। महाराणा जगतसिंह की मृत्यु से कुछ दिनों पहले कुंवर प्रतापसिंह को क़ैद करने का जो आयोजन हुआ उसमें जसवंतसिंह सम्मिलित था। जो सरदार इस आयोजन में शरीक़ थे उन्हें यह भय हुआ कि यदि कहीं प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा तो वह हमें अवश्य दंड देगा, इसलिए उन्होंने उसे ज़हर देकर मारने की चेष्टा की, जो विफल हुई। उक्त सरदारों की इस कुचेष्टा में भी वह शरीक़ था। प्रतापसिंह के गद्दी पर बैठने के पीछे उस (जसवंतसिंह) ने महाराज नाथसिंह से मिलकर उक्त महाराणा को अधिकारच्युत करने का उद्योग किया।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उसको राज्यच्युत कर झूठे दावेदार रत्नसिंह को महाराणा बनाने के लिए उसने अपने पुत्र राघवदास को माधवराव सिंधिया के पास भेजा, जिसने सवा करोड़ रुपये लेना स्वीकार कर उसे सहायता देने का वचन दिया। उज्जैन की लड़ाई में सिंधिया की सेना के तितर-बितर हो जाने पर उसकी सहायता के लिए जसवंतसिंह ने जयपुर से १५००० नागों (महापुरुषों) की सेना भेजी, जिससे मरहटों की जीत हुई। फिर माधवराव ने उदयपुर पर घेरा डाला और छः महीने पीछे महाराणा के कई लाख रुपये देने और गिरवी के तौर पर कुछ परगने सौंप देने पर उससे सुलह हुई। इसके पीछे जसवंतसिंह ने फ़रासीसी समरू को मेवाड़ की ओर भेजा और अपने पुत्र सरूपसिंह को उसके साथ कर दिया। उक्त महाराणा के समय मेवाड़ को बड़ी हानि पहुंची और कई परगने उस (महाराणा) के अधिकार से निकल गये जिसका मुख्य कारण जसवंतसिंह ही था।

रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने के लिए जब महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) ने उसपर चढ़ाई की उस समय मार्ग में रीछेड़ के पास जसवंतसिंह का उत्तराधिकारी रावत राघवदास महाराणा से लड़ा, परन्तु हारकर कुंभलगढ़ चला गया। फिर महाराणा भीमसिंह के समय वह रत्नसिंह का पक्ष छोड़कर महाराणा का तरफ़दार हो गया, जिसपर महाराणा स्वयं वि० सं० १८३८ चैत वदि १३ (ई० स० १७८२ ता० ११ मार्च) को देवगढ़ गया और उसको अपने साथ उदयपुर ले आया। इस प्रकार उसके महाराणा के पक्ष में हो जाने से रत्नसिंह बहुत ही कमज़ोर हो गया। चूंडावतों का ज़ोर तोड़ने और उन्हें दंड देने का इरादा कर उक्त महाराणा ने राघवदास के उत्तराधिकारी गोकुलदास (दूसरे) को माधवराव सिंधिया को सहायतार्थ बुलाने के लिए उसके पास भेजा। गणेशपन्त के साथ की लकवा की लड़ाइयों में वह (गोकुलदास) लकवा का सहायक था। गोकुलदास के निःसन्तान होने के कारण नाहरसिंह संग्रामगढ़ से गोद आया। नाहरसिंह के पुत्र रणजीतसिंह का महाराणा सरूपसिंह से विरोध रहा, जिससे महाराणा ने उसके कई गांव ज़ब्त कर लिए, परन्तु उसने उनपर बलपूर्वक फिर अधिकार कर लिया। ऐसे ही उसकी तलवारबन्दी के २५०००) रुपये उक्त महाराणा ने ले लिये,

परन्तु महाराणा शंभुसिंह के समय उसकी तहक़ीक़ात होकर वे रुपये वापिस दिये गये और आइन्दा देवगढ़ से तलवारबन्दी न लेने की आज्ञा हुई। मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स ने महाराणा और सरदारों के आपस के झगड़े मिटाने के लिए अंगरेज़ी सरकार की आज्ञा से जो क़ौलनामा तैयार किया उसपर उक्त रावत ने हस्ताक्षर न कर कुछ उज्र पेश किये। तब उससे उक्त कर्नल ने कहा—"क़ौलनामे पर पहले दस्तख़त कर दो फिर तुम्हारे उज्र मिटा दिये जायेंगे।" इसपर उसने हस्ताक्षर कर दिये। महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी में वह रीजेन्सी कौंसिल का मेम्बर हुआ। उसके पुत्र रावत कृष्णसिंह ने संग्रामगढ़ से प्रतापसिंह को गोद लिया, जो उसकी विद्यमानता में ही मर गया। प्रतापसिंह का पुत्र विजयसिंह देवगढ़ का वर्तमान स्वामी है।

बेगूं

सत्यव्रत चूंडा के मुख्य वंशधर (सलूंबरवालों के पूर्वज) खंगार के १८ पुत्रों में से पहले दो किशनदास और गोविन्ददास थे। खंगार के पीछे जागीर के लिए उनमें विवाद उपस्थित हुआ तब किशनदास ने राज्य की भांजगड़ (राज्यप्रबन्ध में सलाह देना) स्वीकार की और गोविन्ददास[1] बेगूं आदि की जागीर का स्वामी हुआ।

महाराणा प्रतापसिंह के समय जावद के पास बादशाह अक़बर की सेना से लड़ता हुआ गोविन्ददास मारा गया। गोविन्ददास का उत्तराधिकारी मेघसिंह हुआ। उस (मेघसिंह) का भाई अचलदास महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ पर की शाहज़ादे परवेज़ की चढ़ाई में लड़कर मारा गया और उस (मेघसिंह) ने वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) में रात को ऊंटाले में

(१) वंशक्रम—(१) गोविन्ददास। (२) सवाई मेघसिंह (कालीमेघ)। (३) राजसिंह। (४) महासिंह। (५) मोहकमसिंह। (६) उदयसिंह। (७) खुशालसिंह। (८) भोपालसिंह (बेगूं की ख्यात में यह नाम नहीं है)। (९) अल्लू। (१०) अनूपसिंह। (११) हरिसिंह। (१२) देवीसिंह। (१३) मेघसिंह (दूसरा)। (१४) प्रतापसिंह। (१५) महासिंह (दूसरा)। (१६) किशोरसिंह। (१७) माधवसिंह। (१८) मेघसिंह (तीसरा)। (१९) अनूपसिंह।

महावतखां की फ़ौज पर आक्रमण कर शाही फ़ौज का सामान लूट लिया। फिर वह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाइयों में लड़ा। बादशाह जहांगीर ने महाराणा अमरसिंह का बल तोड़ने के लिए उसके चाचा सगर को चित्तोड़ का राणा बना दिया और बादशाही अधिकार में गया हुआ मेवाड़ का बहुतसा प्रदेश उसे दे दिया। उसने सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाना शुरू किया और जो मिल गये उन्हें जागीरें दीं। शक्तावत नारायणदास को उसने बेगूं और रतनगढ़ के परगने दिये। बादशाह से सुलह हो जाने पर जब समस्त मेवाड़ राज्य पर महाराणा का अधिकार हो गया और सगर को मेवाड़ छोड़ना पड़ा उस समय मेघसिंह महाराणा की तरफ़ से नारायणदास को बेगूं से निकाल देने के लिए भेजा गया। उसने नारायणदास से बेगूं छुड़ा लिया। फिर बेगूं की जागीर वल्लू चौहान को दे दी गई, जिससे मेघसिंह महाराणा से रुष्ट होकर अपने पुत्र सहित बादशाह जहांगीर के पास चला गया, जिसने उसे ४०० ज़ात और २०० सवार का मन्सब देकर उसकी इच्छा के अनुसार मालपुरे का परगना दिया। उसके पुत्र नरसिंह को भी बादशाह की तरफ़ से ८० ज़ात तथा २० सवार का मन्सब और मालपुरे में जागीर दी गई। मालपुरे में रहते समय मेघसिंह ने बघेरे (अजमेर ज़िले में) का प्रसिद्ध वाराहजी का मंदिर, जिसे मुसलमानों ने तोड़ डाला था, नये सिरे से बनवाया। बादशाह के पास रहते समय वह काले रंग की पोशाक पहिनता था जिससे बादशाह ने उसका नाम कालामेघ (कालीमेघ) रखा। फिर उसे शाही सेना के साथ कांगड़े जाने की आज्ञा हुई जिसे न मानने से उसकी जागीर ज़ब्त कर ली गई। इसपर वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया तो उसकी जागीर फिर बहाल हो गई और उसके मन्सब में १०० ज़ात तथा ३० सवार की वृद्धि की गई। महाराणा की इच्छानुसार जब मालपुरे जाकर कुंवर कर्णसिंह ने अनुरोध किया तब वह पीछा उदयपुर लौट गया। तब महाराणा ने उसकी इच्छानुसार उसे बेगूं की जागीर दी।

मेघसिंह ने अपनी जीवित दशा में ही अपने सबसे छोटे पुत्र राजसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, जिससे वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में उस[1] (मेघसिंह) का देहान्त होने पर उसके ज्येष्ठ पुत्र नरसिंहदास और

(१) मेघसिंह के वंशज मेघावत कहलाते हैं।

राजसिंह के बीच ठिकाने के अधिकार के लिए झगड़ा हुआ। महाराणा जगत्-सिंह ने राजसिंह को तो बेगूं का स्वामी माना और नरसिंहदास[1] को गोठलाई की जागीर देकर शान्त किया। राजसिंह का पुत्र महासिंह मेवाड़ पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई में महाराणा राजसिंह के साथ रहकर लड़ा। महासिंह के छठे वंशधर अनूपसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर उसका चाचा हरिसिंह बेगूं का स्वामी हुआ। बूंदी का राज्य छूट जाने पर वहां का राव राजा बुधसिंह बेगूं जा रहा तो हरिसिंह के उत्तराधिकारी देवीसिंह ने उसे अपने यहां बड़े सम्मान के साथ रखा। बेगूं में १२ वर्ष रहने के पश्चात् वहां से तीन कोस दूर वाघपुरा गांव में बुधसिंह का देहान्त हुआ। रणबाजखां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में देवीसिंह महाराणा की सेना में रह कर लड़ा। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के भानजे माधवसिंह का जयपुर पर अधिकार कराने के लिए कई सरदारों के साथ महाराणा ने जो सेना भेजी उसमें देवीसिंह का पुत्र मेघसिंह (दूसरा) भी शरीक था। महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में उसने झूठे दावेदार रत्नसिंह का तरफ़दार होकर खालसे के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया। इसपर महाराणा ने उसका दमन करने के लिए माधवराव सिंधिया से सहायता मांगी और वह बड़ी सेना के साथ मेवाड़ में आया तथा भीलवाड़े होता हुआ बेगूं की तरफ़ चला। बेगूं का कथाभट्ट फ़तहराम, जो बहुत ही छोटे क़द का था, रावत की तरफ़ से सिंधिया के पास गया। सिंधिया ने उसे छोटे क़द का देख कर हंसी में कहा—'आओ वामन'। उसने उत्तर दिया—'कहिये राजा बलि'। इस पर सिंधिया ने कहा—'कुछ मांगो'। ब्राह्मण ने यही मांगा कि आप बेगूं से चले जाइये। सिंधिया ने कहा 'यदि वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६९) के स्वीकृत संधिपत्र के अनुसार बेगूं के रावत से जो सेनाव्यय लेना बाकी है वह अदा कर दिया जाय तो मैं चला जाऊं'। फ़तहराम ने तो इसे स्वीकार कर लिया, परन्तु रावत मेघसिंह ने कहा—'हम ब्राह्मण नहीं हैं जो आशीर्वाद देकर काम चलावें। हम राजपूत हैं, अतएव बारूद, गोलों और तलवारों से क़र्ज़ अदा करेंगे'। यह सुन कर सिंधिया ने बेगूं को घेर

(१) अटारी (ग्वालियर में) के जागीरदार नरसिंहदास के वंशज हैं।

लिया और बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही, परन्तु वह उसे जीत न सका। फिर उस(मेघसिंह)के पुत्र प्रतापसिंह के रावत अर्जुनसिंह तथा मरहटों से मिल जाने पर उसने ४८१२१७ रु० और बहुत से गांव देकर सिंधिया से सुलह कर ली। महाराणा भीमसिंह के समय उसने तथा उसके पुत्रों ने सींगोली, भींचोर आदि स्थानों से मरहटों को निकाल दिया, परंतु कुछ समय पीछे उन्होंने बेगूं के कई गांव फिर दबा लिये।

महाराणा भीमसिंह और सरदारों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर करने के लिए वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में कर्नल टॉड के द्वारा अंगरेज़ी सरकार ने जो क़ौलनामा तैयार कराया उसपर मेघसिंह के पौत्र रावत महासिंह (दूसरे) ने सब सरदारों से पहले हस्ताक्षर किये। महाराणा सरूपसिंह के समय उसके और सरदारों के आपस के झगड़े मिटाने के लिए वि० सं० १९११ (ई० स० १८५४) में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल जार्ज लॉरेन्स ने अंगरेज़ी सरकार की आज्ञा से जो क़ौलनामा तैयार किया उसपर भी उसने हस्ताक्षर कर दिये।

बेगूं के कई गांवों पर सिंधिया का अधिकार हो गया था, जिसके लिए तकरार चलती थी। उसकी तहक़ीक़ात करने के लिए स्वयं कर्नल टॉड ई० स० १८२२ फरवरी (वि० सं० १८७८) में बेगूं गया। रावत महासिंह ने उसका आतिथ्य कर राजबाग़ में उसे ठहराया। शाम के वक़्त कर्नल टॉड रावत से मुलाक़ात करने के लिए हाथी पर सवार होकर क़िले को चला। कालीमेघ का बनवाया हुआ बेगूं का दरवाज़ा इतना ऊंचा न था कि हौदे सहित हाथी अन्दर जा सके। महावत ने दरवाज़े में हाथी ले जाना ठीक न समझकर उसे रोकना चाहा, परन्तु टॉड ने पहले एक हाथी को अन्दर जाता हुआ देख लिया था, इसलिए उसे अन्दर ले जाने की आज्ञा दी। खाई और दरवाज़े के बीच पुल पर जाते ही हाथी भड़क गया। महावत ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह दरवाज़े की तरफ़ ही दौड़ा। कर्नल टॉड ने भी अपने बचाव का भर-सक प्रयत्न किया, परन्तु हौदे के टूटते ही वह पुल पर गिर पड़ा और बेहोशी की हालत में उठाकर तंबू में लाया गया। मध्य रात्रि तक रावत महासिंह आदि वहीं बैठे रहे और जब टॉड को होश आया और उसने उनको सीख दी तब वे गढ़ में गये। दूसरे दिन रावत ने उस दरवाज़े को बिल्कुल तुड़वा दिया।

दो दिन बाद स्वस्थ होने पर जब टॉड क़िले में गया तो रावत मेघसिंह के बनवाये हुए दरवाज़े को नष्ट हुआ देखा, जिससे उसको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उसको किसी प्रसिद्ध पुरुष के स्मारक का नष्ट होना अभीष्ट न था। तहकीक़ात के बाद टॉड ने ३२ गांव रावत को दिलाये और २४००० रु० सिंधिया को दिलाकर मामला तय करा दिया। इससे बेगूं की बिगड़ी हुई हालत फिर सुधरने लगी।

वि० सं० १८८० (ई० स० १८२३) में महाराणा की स्वीकृति से महासिंह ने ठिकाने का अधिकार छोड़ दिया और उसके पुत्र किशोरसिंह की तलवारबन्दी हुई। महाराणा जवानसिंह के समय किशोरसिंह ने होलकर के सींगोली और नदवई परगने लूट लिये। इसपर अंगरेज़ी सरकार ने होल्कर के हरजाने के २४००० रु० महाराणा से वसूल किये। महाराणा सरदारसिंह ने जादू कराने का अपराध लगाकर गोगूंदे के सरदार लालसिंह झाला को मारने के लिए उसपर शाहपुरे के राजाधिराज माधवसिंह को सेना सहित चढ़ाई करने की आज्ञा दी, उस समय किशोरसिंह ने माधवसिंह को कहलाया कि पहले मुझ से लड़कर फिर लालसिंह पर चढ़ाई करना। फिर सलूंबर के रावत पद्मसिंह कोठारिये के रावत जोधसिंह और आमेट के रावत सालमसिंह ने लालसिंह पर सेना न भेजने की महाराणा को सलाह दी, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। वि० सं० १८९६ (ई० स० १८३९) में अपने नौकर के हाथ से किशोरसिंह के मारे जाने पर महासिंह जो कभी राजगढ़, कभी कांकड़ोली और कभी वृन्दावन में रहता था, अपने ६ वर्ष के बालक पुत्र माधवसिंह सहित कांकड़ोली से बेगूं आया और अपने पुत्र के नाम से ठिकाने का काम संभालने लगा। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५८) में उसने ठिकाना माधवसिंह के सुपुर्द कर दिया। सिपाही-विद्रोह के समय माधवसिंह ने अंगरेज़ी सरकार को अच्छी सहायता दी, जिसके उपलक्ष्य में उसने उसे खिलअ़त दी। वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में माधवसिंह का देहान्त हुआ। उस समय उसका बालक पुत्र मेघसिंह केवल ५ वर्ष का था, जिससे महासिंह ने ठिकाने का काम फिर अपने हाथ में लिया। वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में महासिंह के मरने पर उसका पोता मेघसिंह (तीसरा) बेगूं का अधिकारी हुआ। मेघसिंह का पुत्र अनूपसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

देलवाड़ा

देलवाड़े के सरदार झाला राजपूत और सादड़ीवालों के पूर्वज अज्जा के छोटे भाई सज्जा[1] के वंशज हैं तथा 'राज-राणा' उनका खिताब है।

महाराणा रायमल के समय सज्जा अपने बड़े भाई अज्जा के साथ हलवद (काठियावाड़ में) से मेवाड़ में आया और महाराणा ने उसे देलवाड़े की जागीर देकर अपना सामन्त बनाया। महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तौड़ की दूसरी चढ़ाई में वह हनुमान पोल पर लड़ता हुआ मारा गया। महाराणा उदयसिंह के राजत्व-काल में सज्जा का उत्तराधिकारी जैतसिंह किसी कारण जोधपुर के राव मालदेव के पास चला गया, जिसने उसे खैरवे की जागीर दी। इसपर उस (जैतसिंह) ने मालदेव से अपनी पुत्री स्वरूपदेवी का विवाह कर दिया। जैतसिंह की इच्छा के विरुद्ध उसकी छोटी पुत्री से भी मालदेव ने शादी करना चाहा, जिससे वह मेवाड़ को लौट गया, जहां उसने अपनी पुत्री का विवाह उक्त महाराणा के साथ कर दिया। बादशाह अकबर की चित्तौड़ की चढ़ाई में जैतसिंह काम आया। उसका पुत्र मानसिंह हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में महाराणा प्रतापसिंह के साथ रहकर लड़ा और मारा गया।

मानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र शत्रुशाल जो महाराणा प्रतापसिंह का भानजा था, महाराणा से बातचीत में खटपट हो जाने के कारण जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के पास चला गया तो महाराणा ने उसकी जागीर बदनोर के राठोड़ कुंवर मनमनदास को दे दी। महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ पर शाहज़ादे खुर्रम की चढ़ाई हुई उस समय उधर शत्रुशाल जोधपुर छोड़कर मेवाड़ की ओर लौट रहा था और इधर महाराणा ने उसके भाई कल्याणसिंह को उसे वापस बुलाने के लिये भेजा। दोनों भाई मार्ग में मिले और उन्होंने मेवाड़ की सीमा पर

---

(१) वंशक्रम—(१) सज्जा। (२) जैतसिंह। (३) मानसिंह। (४) कल्याणसिंह। (५) राघोदेव। (६) जैतसिंह (दूसरा)। (७) सज्जा (दूसरा)। (८) मानसिंह (दूसरा)। (९) कल्याणसिंह (दूसरा)। (१०) राघोदेव (दूसरा)। (११) सज्जा (तीसरा)। (१२) कल्याणसिंह (तीसरा)। (१३) बैरीसाल। (१४) फ़तहसिंह। (१५) ज़ालिमसिंह। (१६) मानसिंह (तीसरा)। (१७) जसवन्तसिंह।

आवड़ सावड़ के पहाड़ों के बीच अब्दुल्लाखां की फ़ौज पर आक्रमण किया, जिसमें शत्रुशाल घायल होकर पहाड़ों में चला गया और कल्याणसिंह अपने घोड़े के मारे जाने तथा घायल होने पर शत्रु-सेना से घिर गया, जिसने उसे पकड़ कर शाहज़ादे खुर्रम के पास भेज दिया। फिर शत्रुशाल ने अच्छा हो जाने पर गोगूंदे के शाही थाने पर आक्रमण करने में वीर-गति पाई। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उक्त महाराणा ने उसके छोटे पुत्र कान्हसिंह को गोगूंदे की जागीर दी। शत्रुशाल के भाई कल्याणसिंह ने शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी दिखाई, जिससे महाराणा ने उसे कोई जागीर देना चाहा, तब उसने अपने पूर्वजों की देलवाड़े की जागीर, जिसे महाराणा प्रतापसिंह ने मेवाड़ से शत्रुशाल के चले जाने पर कुंवर मनमनदास राठौड़ को उसके जीवन-पर्यन्त के लिये दी थी, वापस दिये जाने की प्रार्थना की, जो स्वीकृत न हुई। इसके कुछ समय पीछे मनमनदास मारा गया तब कल्याणसिंह को देलवाड़े का ठिकाना वापस मिला। देवलिया (प्रतापगढ़), डूंगरपुर आदि इलाकों पर चढ़ाई करने से बादशाह शाहजहां के अप्रसन्न होने की खबर पाकर महाराणा जगत्सिंह ने कल्याणसिंह को उसके पास भेजा। वहां पहुंच कर उसने महाराणा की तरफ़ से बादशाह की सेवामें अर्ज़ी पेश की, जिससे उसकी अप्रसन्नता दूर हो गई। क़रीब डेढ़ महीने पीछे बादशाह ने उसे घोड़ा और खिलअत देकर विदा किया।

उसका पोता जैतसिंह (दूसरा) बादशाह औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयों में महाराणा राजसिंह के साथ रहकर लड़ा और शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ था। महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच अनबन हो जाने पर जैतसिंह का पुत्र सज्जा (दूसरा) कुंवर का तरफ़दार रहा और महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने रणबाज़खां का सामना करने के लिए जो सेना भेजी उसमें वह भी शरीक था। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय सज्जा का प्रपौत्र राघोदेव (दूसरा) विद्रोही सरदारों से मिलकर झूंठे दावेदार रत्नसिंह का तरफ़दार हो गया, परन्तु महाराणा ने उसे समझा बुझा कर अपनी ओर मिला लिया और कुछ दिनों पीछे मरवा डाला। महाराणा भीमसिंह के समय राघोदेव का पोता

कल्याणसिंह (तीसरा) हड़क्याखाल के पास की लड़ाई में मरहटों से लड़ा और सख़्त ज़ख़्मी हुआ। फिर जसवंतराव होलकर से नाथद्वारे की रक्षा करने के लिए उदयपुर से जो सेना भेजी गई उसमें वह भी सम्मिलित हुआ। महाराणा सरूपसिंह के समय कल्याणसिंह के पुत्र बैरीसाल के निःसन्तान मरने पर सादड़ी के कीर्तिसिंह का दूसरा पुत्र फ़तहसिंह गोद गया। वह पहले इजलास खास का मेंबर रहा फिर महद्राजसभा का सदस्य बनाया गया। फ़तहसिंह के पूर्व के यहां के सरदारों का ख़िताब 'राज' था, परन्तु महाराणा फ़तहसिंह ने उसको 'राजराणा' का और सरकार अंगरेज़ी ने 'राव बहादुर' का ख़िताब दिया। उसके ज़ालिमसिंह और विजयसिंह दो पुत्र हुए, जिनमें से पहला तो उसका उत्तराधिकारी हुआ और दूसरा कोनाड़ी (कोटा राज्य में) गोद गया। ज़ालिमसिंह के पीछे उसका पुत्र मानसिंह (तीसरा) देलवाड़े का स्वामी हुआ। उसके निःसन्तान मरने पर सादड़ी के राजराणा रायसिंह (तीसरे) के सबसे छोटे भाई जवानसिंह का पुत्र जसवंतसिंह गोद लिया गया, जो देलवाड़े का वर्तमान सरदार है।

आमेट

आमेट के सरदार सत्यव्रत चूंडा के पौत्र सिंहा के पुत्र जग्गा[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

कोठारिये के सरदार खान के बुलाने पर रावत सिंहा[2] का उत्तराधिकारी जग्गा केलवे से कुंभलगढ़ गया और उसने उक्त सरदार तथा साईदास, रावत सांगा आदि अन्य सरदारों की सहायता से बणवीर को मेवाड़ से निकालकर महाराणा विक्रमादित्य के भाई उदयसिंह (दूसरे) को गद्दी पर बिठाया। चित्तोड़ पर बादशाह अकबर की चढ़ाई हुई उस समय अपने सरदारों की

---

(१) जग्गा के वंशज होने से आमेट के सरदार जग्गावत कहलाते हैं।

(२) वंशक्रम—(१) सिंहा। (२) जग्गा। (३) पत्ता। (४) करणसिंह। (५) मानसिंह। (६) माधोसिंह। (७) गोवर्द्धनसिंह। (८) दूलेसिंह। (९) पृथ्वीसिंह। (१०) फ़तहसिंह। (११) प्रतापसिंह। (१२) सालमसिंह। (१३) पृथ्वीसिंह (दूसरा)। (१४) चत्रसिंह। (१५) शिवनाथसिंह। (१६) गोविन्दसिंह।

सलाह के अनुसार महाराणा उदयसिंह (दूसरा) जग्गा के पुत्र पत्ता और जयमल राठोड़ को सेनाध्यक्ष नियत कर मेवाड़ के पहाड़ों की ओर चला गया। उक्त चढ़ाई के समय खाने पीने का सामान खतम हो जाने पर जयमल राठोड़ की सलाह से पत्ता ने क़िले की अपनी हवेली में जौहर कराया। फिर वह राम पोल पर शाही सेना के साथ बड़ी बहादुरी से लड़ा और एक हाथी ने अपनी सूंड में पकड़कर उसे पटक दिया जिससे उसकी मृत्यु हुई। उसकी वीरता से बादशाह बहुत खुश हुआ और उसने हाथी पर बैठी हुई उसकी पत्थर की मूर्ति बनवाकर आगरे में क़िले के द्वार पर खड़ी कराई।

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय राठोड़ जुझारसिंह का, जिसे बादशाह की तरफ़ से पुर, मांडल आदि परगने मिले थे, भतीजा राजसिंह चूंडावतों से छेड़छाड़ करता था। उसने कई चूंडावतों को मारकर पुर के पास पहाड़ की गुफ़ा (अधरशिला) में डाल दिया और पत्ता के पांचवें वंशधर दूलेसिंह के चार भाइयों को पकड़ लिया। रणबाज़खां से लड़ने के लिए महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने जो सेना भेजी उसमें दूलेसिंह का उत्तराधिकारी पृथ्वीसिंह भी सम्मिलित था। उसके पुत्र मानसिंह का उसकी जीवित दशा में ही देहान्त हो जाने से उसका पोता फ़तहसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में फ़तहसिंह महाराणा की सेना में रहकर उज्जैन की लड़ाई में माधवराव सिंधिया की सेना से लड़ा और उसका पुत्र प्रतापसिंह उक्त महाराणा की महापुरुषों के साथ की लड़ाई के समय महाराणा के साथ रहा। महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल के आरंभ में राज्यकार्य चलाने में वह सलूंबर के सरदार रावत भीमसिंह तथा कुरावड़ के सरदार रावत अर्जुनसिंह का सहायक था। मेवाड़ से मरहटों को निकालने के लिए चूंडावतों की सहायता आवश्यक समझकर महाराणा की आज्ञानुसार प्रधान सोमचन्द गांधी ने रावत भीमसिंह को सलूंबर से बुलवाया उस समय प्रतापसिंह भी उसके साथ उदयपुर गया। इसी अरसे में वहां भींडर का महाराज मोहकमसिंह भी ससैन्य जा पहुंचा, जिससे प्रतापसिंह आदि चूंडावत सरदार, यह संदेह कर कि यह सब प्रपंच हम लोगों को नष्ट करने के लिए रचा गया है, तुरन्त वापस चले गये, परन्तु राजमाता उन्हें उदयपुर लौटा लाई।

चित्तोड़ से ज़ालिमसिंह झाला के चले जाने पर प्रतापसिंह भीमसिंह के साथ महाराणा के पास हाज़िर हो गया। गणेशपन्त के साथ की लकवा की लड़ाइयों में वह लकवा का तरफ़दार होकर लड़ा।

वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५७) में उसके पोते पृथ्वीसिंह (दूसरे) के निस्सन्तान मर जाने पर उसके संबन्धियों ने उसके सबसे नज़दीकी रिश्तेदार ओलोले[1] के सरदार दुर्जनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चत्रसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाना चाहा, परन्तु बेमाली के सरदार ज़ालिमसिंह ने, जो पृथ्वीसिंह का दूर का सम्बन्धी था, अपने द्वितीय पुत्र अमरसिंह को ठिकाने का अधिकार दिलाने का प्रपंच रचा। कोठारिया, देवगढ़, कानोड, बनेड़या, भैंसरोड, कोशीथल आदि ठिकानों के सरदारों ने तो वास्तविक हक़दार चत्रसिंह का और सलूंबर, भींडर, गोगूंदा, कुराबड़, बागोर, बनेड़ा, लसाणी, मान्यावास आदि ठिकानों के स्वामियों ने अमरसिंह का, जो वास्तविक हक़दार नहीं था, पक्ष लिया। महाराणा ने दोनों पक्ष के सरदारों को प्रसन्न रखने के लिए इधर चत्रसिंह को आमेट पर अधिकार कर लेने की गुप्त रीति से सलाह दी और उधर अमरसिंह के प्रतिनिधि ओंकार व्यास से तलवारबन्दी के ४४००० रु० तथा प्रधान की दस्तूरी के ५००० रुपयों का रुक्का लिखवा लिया। महाराणा की सलाह के अनुसार चत्रसिंह ने आमेट पर चढ़ाई की और वहां लड़ाई हुई, जिसमें ज़ालिमसिंह का ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह मारा गया तथा लसाणी का जागीरदार ठाकुर सुलतानसिंह घायल होकर कुछ दिनों पीछे मर गया। फिर अमरसिंह को निकालकर चत्रसिंह आमेट का स्वामी हुआ। महाराणा शंभुसिंह ने ज़ालिमसिंह के, जिसपर उसकी विशेष कृपा थी, कहने में आकर अमरसिंह को आमेट की तलवार बंधा दी, परन्तु चत्रसिंह ने आमेट न छोड़ा, जिससे महाराणा ने आमेट का स्वामी तो चत्रसिंह को ही रखा और अमरसिंह को खालसे में से २०००० रुपये वार्षिक आय की मेजा की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का अलग सरदार बनाया। चत्रसिंह का पोता गोविन्दसिंह आमेट का वर्तमान स्वामी है।

(१) मानसिंह के तीसरे पुत्र नाथूसिंह को महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय ओलोले की जागीर मिली थी।

मेजा

मेजा के सरदार आमेट के रावत माधवसिंह के चौथे पुत्र हरिसिंह के छठे वंशधर बेमालीवाले ज़ालिमसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

ज़ालिमसिंह के द्वितीय पुत्र अमरसिंह को मेजा की जागीर किस तरह मिली यह ऊपर आमेट के विवरण में लिखा जा चुका है। महाराणा शंभुसिंह ने अपने कृपापात्र ज़ालिमसिंह के विशेष अनुरोध करने पर अमरसिंह को खालसे से मेजा की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का नया सरदार बनाया और आमेट के रावत चत्रसिंह को आज्ञा दी कि ठिकाने आमेट में से भी ८००० रु० वार्षिक आय की जागीर उसे दी जाय, परन्तु चत्रसिंह ने जागीर के बजाय प्रतिवर्ष ८००० रु० नक़द उसे देना चाहा, जिससे यह मामला बहुत दिनों तक चलता रहा। अन्त में पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल इम्पी की सलाह से महाराणा सज्जनसिंह ने चत्रसिंह के उत्तराधिकारी शिवनाथसिंह से अमरसिंह को २५०० रु० वार्षिक आय की जागीर और ५५०० रु० रोकड़ सालाना दिलाकर इसका फ़ैसला कर दिया। अमरसिंह का उत्तराधिकारी राजसिंह हुआ, जिसका पुत्र जयसिंह मेजा का वर्तमान स्वामी है।

गोगूंदा

गोगूंदे के सरदार झाला राजपूत हैं और 'राज' उनका ख़िताब है। देलवाड़े के सरदार मानसिंह का पुत्र शत्रुशाल[2] अपने मामा महाराणा प्रतापसिंह से बिगाड़ हो जाने के कारण जोधपुर चला गया तब महाराणा ने उसकी जागीर बदनोर के कुंवर मनमनदास राठोड़ को दे दी। फिर महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ पर शाहज़ादे खुर्रम की चढ़ाई हुई उस समय उस (शत्रुशाल)

---

(१) वंशक्रम--(१) अमरसिंह। (२) राजसिंह। (३) जयसिंह।

(२) वंशक्रम--(१) शत्रुशाल। (२) कान्हसिंह। (३) जसवंतसिंह। (४) रामसिंह। (५) अजयसिंह। (६) कान्हसिंह (दूसरा)। (७) जसवंतसिंह (दूसरा)। (८) शत्रुशाल (दूसरा)। (९) लालसिंह। (१०) मानसिंह। (११) अजयसिंह (दूसरा)। (१२) पृथ्वीसिंह। (१३) दलपतसिंह। (१४) मनोहरसिंह। (१५) भैरूसिंह।

ने मेवाड़ में लौटकर अब्दुल्लाखां की सेना पर हमला किया और घायल होकर पहाड़ों में चला गया। इसके पीछे उसने गोगूंदे के शाही थाने पर आक्रमण किया और रावल्यां गांव में लड़ता हुआ वह मारा गया। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसके छोटे पुत्र कान्हसिंह को गोगूंदे की जागीर दी। कान्हसिंह का उत्तराधिकारी जसवंतसिंह महाराणा राजसिंह के समय शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ रहा।

जसवन्तसिंह का चौथा वंशधर जसवन्तसिंह (दूसरा) हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) से सरदारों का विरोध हो जाने पर बेदले के राव रामचन्द्र ने महाराणा को अधिकारच्युत करने के लिये उस (जसवंतसिंह) को उभारा। कुछ दिनों पीछे राजमाता झाली के गर्भ से रत्नसिंह उत्पन्न हुआ। उस समय राजसिंह तथा प्रतापसिंह की राणियों की सलाह से जसवंतसिंह उसे अपने यहां ले गया और गुप्त स्थान में रखकर उसका पालन पोषण करने लगा। फिर उसने रत्नसिंह को कुंभलगढ़ में ले जाकर महाराणा के नाम से प्रसिद्ध किया और क़रीब ७ वर्ष की अवस्था में उसके मर जाने पर जब महाराणा के विरोधी सरदारों ने उसी उम्र के दूसरे बालक को रत्नसिंह बताकर उसका पक्ष लिया उस समय जसवंतसिंह भी उसका सहायक रहा।

महाराणा सरदारसिंह के समय उसके उत्तराधिकारी शत्रुशाल (दूसरे) ने, जिससे उसके पुत्र लालसिंह ने ठिकाने का अधिकार छीन लिया था, लालसिंह का हक़ ख़ारिज कराकर अपने पोते मानसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की चेष्टा की, जो सफल न हुई। शार्दूलसिंह का तरफ़दार होने के कारण महाराणा लालसिंह से द्वेष रखता था, और उसपर जादू का अपराध लगाकर उसे मारने के लिए शाहपुरे के राजाधिराज माधवसिंह को गोगूंदे की हवेली पर जाने की आज्ञा दी। इससे बेगूं, सलूंबर, कोठारिया, आमेट आदि ठिकानों के सरदार बिगड़ उठे और उन्होंने महाराणा से लालसिंह का अपराध प्रमाणित हुए बिना उसपर सेना न भेजने की सलाह दी, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। महाराणा शंभुसिंह की नाबालिगी में रीजेन्सी कौंसिल की स्थापना हुई तब सरदारों में से उसके जो सदस्य बनाये गये उनमें लालसिंह भी था। उसका छठा वंशज भैरूसिंह गोगूंदे का वर्तमान स्वामी है।

कानोड़

कानोड़ के सरदार सत्यव्रत चूंडा के भाई अज्जा[1] के वंशज हैं और रावत उनकी उपाधि है। महाराणा मोकल के समय उसकी माता हंसबाई की आज्ञा के अनुसार चूंडा मेवाड़ छोड़कर मांडू गया, उस समय अज्जा भी उसके साथ हो लिया। मांडू के सुलतान ने दोनों भाइयों को अलग अलग जागीर देकर बड़े सम्मान के साथ अपने यहां रक्खा। मालवे का सुलतान महमूद खिलजी महपा पंवार को महाराणा कुंभा के सुपुर्द न कर उससे लड़ने की तैयारी करने लगा तब उसने अज्जा से भी साथ चलने के लिए कहा, परन्तु इसे उसने स्वामिद्रोह समझकर स्वीकार न किया। जब चित्तोड़ की रक्षार्थ रावत चूंडा के साथ बुलाया गया तब वह चित्तोड़ लौट गया।

अज्जा का पुत्र सारंगदेव मांडू के सुलतान ग़यासुद्दीन के सेनापति ज़फ़रखां के साथ की महाराणा रायमल की लड़ाई में महाराणा की सेना में रहकर लड़ा। महाराणा के तीनों कुंवरों—पृथ्वीराज, जयमल तथा संग्रामसिंह—की जन्मपत्रियां देखकर एक ज्योतिषी ने कहा कि मेवाड़ का भावी स्वामी तो संग्रामसिंह होगा। यह कथन पृथ्वीराज को इतना बुरा लगा कि उसने संग्रामसिंह को तलवार की हूल मार दी, जिससे उसकी एक आंख फूट गई। इसी अरसे में सारंगदेव जा पहुंचा। उसने पृथ्वीराज को बहुत फटकारा और संग्रामसिंह को अपने स्थान पर लाकर उसकी आंख का इलाज कराया। फिर एक दिन तीनों भाई सारंगदेव सहित भीमल गांव के देवी के मंदिर की पुजारिन के पास गये और उससे उक्त ज्योतिषी के कथन के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उसने भी कहा कि संग्रामसिंह ही राज्य का मालिक होगा। इस पर पृथ्वीराज ने संग्रामसिंह पर तलवार का वार किया, जिसे सारंगदेव ने अपने सिर पर ले लिया। इस प्रकार सख्त घायल होने पर भी उसने संग्रामसिंह को घोड़े पर सवार कराकर वहां से सेवंत्री की तरफ़ रवाना कर दिया। इसके पीछे

(१) वंशक्रम—(१) अज्जा। (२) सारंगदेव। (३) जोगा। (४) नरबद। (५) नेतसिंह। (६) भाखसिंह। (७) जगन्नाथ। (८) मानसिंह। (९) महासिंह। (१०) सारंगदेव (दूसरा)। (११) पृथ्वीसिंह। (१२) जगत्सिंह। (१३) ज़ालिमसिंह। (१४) अजीतसिंह। (१५) उम्मेदसिंह। (१६) नाहरसिंह। (१७) केसरीसिंह।

महाराणा रायमल ने सारंगदेव पर प्रसन्न होकर उसे कई लाख रुपयों की भैंसरोड़गढ़ की जागीर दी। महाराणा की यह बात कुंवर पृथ्वीराज को पसन्द न आई और उसने सारंगदेव पर, जो कुंवर सांगा का पक्षपाती था, चढ़ाई की तब उस (सारंगदेव) ने उससे लड़ना उचित न समझा और भैंसरोड़गढ़ छोड़कर वह महाराणा के विरोधी रावत सूरजमल (प्रतापगढ़वालों के पूर्वज) से जा मिला।

फिर दोनों ने मांडू के सुलतान नासिरुद्दीन की सेना को साथ लेकर चित्तोड़ पर आक्रमण किया। गंभीरी नदी के तट पर स्वयं महाराणा तथा उसकी सेना से उनकी लड़ाई हुई, जिसमें महाराणा, पृथ्वीराज, सूरजमल तथा सारंगदेव घायल हुए और सारंगदेव का ज्येष्ठ पुत्र लिम्बा मारा गया। सारंगदेव को उसके साथी राजपूत बाठरड़े ले गये जहां एक दिन उससे मिलने के लिये सूरजमल गया। उसी दिन रात को पृथ्वीराज भी ससैन्य वहां जा पहुंचा और कुछ देर तक सूरजमल तथा सारंगदेव से उसकी लड़ाई हुई। दूसरे दिन सवेरे पृथ्वीराज देवी के मंदिर में दर्शन करने का बहाना कर सारंगदेव को साथ ले गया और दर्शन करते समय उसकी छाती में कटार घुसेड़ दिया, जिससे वह वहीं तत्काल मर गया। सारंगदेव के इस प्रकार मारे जाने पर महाराणा रायमल ने उसके पुत्र जोगा को बाठरड़े की जागीर देकर संतुष्ट किया। महाराणा रायमल के पीछे जब संग्रामसिंह (सांगा) मेवाड़ का स्वामी हुआ उस समय सारंगदेव की उत्तम सेवा का स्मरण कर उसके पुत्र जोगा को मेवल प्रदेश में भी जागीर दी और सारंगदेव के नाम को चिरस्थायी रखने के लिये यह आज्ञा दी कि अब से अज्जा के वंशज सारंगदेवोत कहलायेंगे। तब से वे सारंगदेवोत कहलाने लगे।

बाबर के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाई में जोगा महाराणा की सेना में रहकर लड़ता हुआ मारा गया। महाराणा विक्रमादित्य के समय चित्तोड़ पर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की दूसरी चढ़ाई हुई उस समय जोगा के उत्तराधिकारी रावत नरबद (सारंगदेवोत), देवलिये के रावत बाघसिंह, दूदा तथा साईदास (रत्नसिंहोत, चूंडावत), अर्जुन हाडा, रावत सत्ता आदि सरदारों ने सलाह कर महाराणा को तो उसके भाई उदयसिंह सहित उसके ननि-

हाल बूंदी भेज दिया और रावत बाघसिंह को उसका प्रतिनिधि बनाया। नरबद महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर पाडल पोल पर लड़ता हुआ मारा गया। चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई के समय उसकी रक्षा का भार अपने सरदारों पर छोड़कर उनकी सलाह के अनुसार महाराणा उदयसिंह (दूसरा) मेवाड़ के पहाड़ों की ओर जाने लगा तब नरबद के पुत्र रावत नेतसिंह को वह अपने साथ लेगया। नेतसिंह ने पहाड़ों में जाते समय अपने चाचा जगमाल को अपने बहुतसे राजपूतों सहित चित्तोड़ में ही रक्खा, जो वहीं काम आया। जब रावत किसनदास चूंडावत ने सलूंबर के स्वामी सिंहा राठोड़ पर आक्रमण किया उस समय रावत नेतसिंह किसनदास का सहायक रहा। इन दोनों ने सिंहा को मार डाला तब से सलूंबर पर किसनदास का अधिकार हो गया। कुंवर मानसिंह के साथ की महाराणा प्रतापसिंह की हल्दी घाटी की लड़ाई में नेतसिंह मारा गया।

महाराणा की आज्ञा के अनुसार उसके पुत्र भाणसिंह ने बांसवाड़े और डूंगरपुर पर, जिनके स्वामियों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, आक्रमण किया। सोम नदी के तट पर लड़ाई हुई, जिसमें भाणसिंह सख्त ज़ख्मी हुआ और उसका चाचा रणसिंह काम आया, परन्तु उक्त इलाक़ों के चौहान राजपूत हार गये और उनपर महाराणा का अधिकार हो गया। मेवाड़ पर शाह-ज़ादे खुर्रम की चढ़ाई के समय रावत भाणसिंह महाराणा अमरसिंह के साथ रह-कर लड़ा। महाराणा राजसिंह ने भाणसिंह के पोते मानसिंह, रावत रघुनाथसिंह, महाराज मोहकमसिंह आदि सरदारों को भेजकर डूंगरपुर आदि इलाक़ों के स्वामियों को, जो मेवाड़ से स्वतन्त्र बन बैठे थे, अपने अधीन किया। वि० सं० १७१६ (ई० स० १६६२) में मानसिंह आदि सरदारों ने मेवल के सरकश मीनों का दमन किया। उनकी इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उन्हें सिरोपाव आदि देकर उक्त प्रदेश को उन्हीं के अधीन कर दिया। मेवाड़ पर औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई उस समय रावत मानसिंह देवारी के पास की लड़ाई में घायल हुआ और उसका काका ऊका मारा गया। कुंवर जयसिंह ने चित्तोड़ के पास शाहज़ादे अकबर पर आक्रमण कर उसकी सेना का संहार किया उस समय वह (मानसिंह) कुंवर के साथ था। मानसिंह, सलूंबर के रावत रत्नसिंह और

राव केसरीसिंह चौहान ने मिलकर औरंगज़ेब के सेनापति हसनअलीखां पर आक्रमण कर उसे पराजित किया।

महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर रावत मानसिंह का पुत्र महासिंह कुंवर का तरफ़दार रहा, परन्तु अंत में जब महाराणा और कुंवर के बीच लड़ाई की नौबत पहुंची तब उसने तथा अन्य सरदारों ने महाराणा से अर्ज़ कराई कि लड़ाई में कुंवर मारा गया तो भी दुःख आपको ही होगा, अतः उनका अपराध क्षमा किया जाय। महाराणा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, जिससे पितापुत्र में फिर मेल हो गया। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय मेवाड़ की हद में लूटमार मचानेवाले लखू चणा-वदा को महासिंह ने मारा, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको कुरावड़ और गुड़ली की दस हज़ार रुपयों की जागीर प्रदान की। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में बांदनवाड़े (अजमेर प्रांत में) के पास महाराणा और रणबाज़खां की सेनाओं में लड़ाई हुई, जिसमें महासिंह तथा रणबाज़खां दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये।

महासिंह की वीरता से प्रसन्न हो कर महाराणा ने उसके ज्येष्ठ पुत्र सारंग-देव (दूसरे) को कानोड़ की नई जागीर दी और उसकी वंशपरंपरागत बाठरड़े की जागीर उसके छोटे भाई सूरतसिंह को दी। सारंगदेव और उसके पुत्र पृथ्वी-सिंह ने मालवे की तरफ़ के लुटेरे पठानों को, जो मंदसोर ज़िले में लूट खसोट करते थे, लड़ाई में हराकर वहां से भगा दिया, परन्तु इस युद्ध में पितापुत्र दोनों सख़्त ज़ख़्मी हुए। फिर उदयपुर में त्रिपोलिया बनवाने और अगड़ पर हाथी लड़ाने की अनुमति प्राप्त करने के लिए महाराणा की तरफ़ से पंचोली बिहारी-दास के साथ रावत सारंगदेव बादशाह फ़र्रुख़सियर के पास भेजा गया। राम-पुरे के राव गोपालसिंह का पुत्र रतनसिंह मुसलमान बनकर वहां का मालिक बन बैठा। उसके मारे जाने के बाद गोपालसिंह का रामपुरे पर अधिकार कराने के लिए महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में सेना भेजी, जिसमें रावत सारंगदेव भी शरीक था। उस सेना ने रामपुरे पर कब्ज़ा कर लिया। फिर महाराणा ने गोपालसिंह को अपना सरदार बनाकर उस इलाके का कुछ हिस्सा उसे दे दिया और बाकी का अपने राज्य

में मिला लिया। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय रावत पृथ्वीसिंह ने मरहटों से लड़कर उन्हें मेवाड़ से निकाल दिया और महाराणा राजसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में उस (पृथ्वीसिंह) के पुत्र जगत्सिंह ने भी मल्हारगढ़ पर आक्रमण कर मरहटों को वहां से मार भगाया।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय गोगूंदे के सरदार जसवंतसिंह (दूसरे) ने रत्नसिंह को मेवाड़ का स्वामी प्रसिद्ध किया तब जगत्सिंह महाराणा का तरफ़दार रहा। फिर उसने उज्जैन की लड़ाई में महाराणा की सहायता के लिए अपने चाचा सकतसिंह को ससैन्य भेजा, जो वहां पर मारा गया। महाराणा भीमसिंह के समय जगत्सिंह का उत्तराधिकारी रावत ज़ालिमसिंह हड़क्याखाल के पास की लड़ाई में मरहटों से लड़ा और ज़ख्मी हुआ। चेजाघाटी के पास झाला ज़ालिमसिंह के साथ की महाराणा की लड़ाई में रावत ज़ालिमसिंह का पुत्र अजीतसिंह महाराणा की सेना में रहकर लड़ा और सख़्त घायल हुआ जिससे महाराणा ने उसे पालकी देकर कानोड़ पहुंचा दिया।

अजीतसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह हुआ। कानोड़ के सरदारों की तलवारबंदी नहीं लगती थी तो भी महाराणा सरूपसिंह ने उससे छः हज़ार रुपये वसूल कर लिये, जिसपर वह महाराणा के विरोधी सरदारों से मिल गया। इसपर महाराणा ने उसका मंडप्या गांव ज़ब्त कर लिया, परन्तु महाराणा शंभुसिंह के समय कानोड़ की तलवारबंदी की तहक़ीक़ात होने पर उक्त रावत से बेजा लिए हुए तलवारबंदी के छः हज़ार रुपये तथा मंडप्या गांव वापस दे दिये गये।

ई० स० १८५७ जनवरी (वि० सं० १९१३ माघ) में सिपाही-विद्रोह शुरू हुआ और नीमच की सेना ने भी बागी होकर छावनी जला दी तथा खज़ाना लूट लिया। क़रीब ४० अंग्रेज़ों ने, जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिल थे, डूंगला गांव में जाकर शरण ली वहां भी बाग़ियों ने उन्हें घेर लिया। यह ख़बर पाते ही मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स महाराणा की सेना के साथ बेदले के राव बख़्तसिंह व मेहता शेरसिंह सहित रवाना हुआ। उस समय महाराणा ने अपनी तरफ़ से वि० सं० १९१३ (चैत्रादि १९१४) ज्येष्ठ सुदि १४ (ता० ६ जून ई० स० १८५७) को खास रुक्का रावत उम्मेदसिंह के नाम इस आशय का लिखा कि आप स्वयं अपनी जमीयत सहित शीघ्र कप्तान शावर्स के

पास उपस्थित हो जावें और इसी आशय का एक पत्र मेहता शेरसिंह ने भी उसके पास भेजा। इसपर रावत उम्मेदसिंह बीमारी के कारण स्वयं तो उपस्थित न हो सका, परन्तु सारंगदेवोत महोवतसिंह की अध्यक्षता में अपनी जमीयत शावर्स के पास तुरन्त भेज दी, जो डूंगला गांव से बागियों को हटाने में शरीक रही। वहां घेरे हुए अंग्रेज़ों को उदयपुर पहुंचाने की व्यवस्था कर शावर्स नीमच पहुंचा तथा वहां की रक्षा का प्रबंध कर वह बागियों का पीछा करता हुआ चित्तोड़, जहाज़पुर आदि स्थानों में होता हुआ पीछा नीमच लौट गया। नीमच का उपद्रव शांत हो जाने के कारण मेहता शेरसिंह ने मोहब्बतसिंह को सीख दे दी और कानोड़ की सेना की अच्छी सेवा की प्रशंसा का पत्र रावत उम्मेदसिंह के पास भेजा।

इन्हीं दिनों फ़ीरोज़ नाम के एक हाजी ने अपने को दिल्ली का शाहज़ादा प्रसिद्ध कर दो हज़ार बागियों के साथ मंदसोर पर अधिकार कर लिया और नीम्बाहेड़ के मुसलमान हाकिम का बागियों से मिल जाने का अंदेशा देखकर कप्तान शावर्स ने नीम्बाहेड़ पर कब्ज़ा करना उचित समझकर फिर महाराणा से सेना मांगी। इस समय रावत उम्मेदसिंह ने महाराणा को अर्ज़ कराया कि मेवाड़ के अधिकार से निकले हुए नीम्बाहेड़ पर फिर अधिकार करने का यह मौक़ा है। इसपर महाराणा ने एक खास रुक्का भेजकर उसकी तजवीज़ पसंद की और लिखा कि कप्तान शावर्स और मेहता शेरसिंह से खुद मिलकर उनकी राय के मुताबिक़ काम करना चाहिये। इसपर उम्मेदसिंह ने उन दोनों से मिलकर नीम्बाहेड़ के विषय में बातचीत की और अपनी सेना अपने भाई वैरीशाल की अध्यक्षता में फिर उनके पास भेज दी। महाराणा ने भी उदयपुर से पैदल सिपाही, तोपखाना आदि एवं अन्य सरदारों की और सेना भी नीमच भेजी। नीम्बाहेड़ के अफसर के बागी हो जाने पर कप्तान शावर्स मेवाड़ी सेना के साथ वहां पहुंचा और दिन भर गोलन्दाज़ी होने के बाद नीम्बाहेड़ पर उसने अधिकार कर उसे मेवाड़वालों के सुपुर्द कर दिया, जो वैरीशाल एवं कितने एक अन्य सरदारों के प्रतिनिधियों के अधिकार में रहा। छः महीने तक वैरीशाल के वहां रहने के पश्चात् महाराणा के बुलाने पर वह उदयपुर गया तो महाराणा ने उसकी बड़ी कदर की और घोड़ा, सिरोपाव एवं मोतियों की कंठी

देकर उसे सम्मानित किया। करीब २$\frac{1}{2}$ वर्ष तक नीम्बाहेड़े पर महाराणा का अधिकार रहने के पश्चात् सरकार अंग्रेज़ी ने फिर उसे टोंक के सुपुर्द कर दिया।

उम्मेदसिंह का पुत्र नाहरसिंह हुआ, जो वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा का मेम्बर रहा। उसके सन्तान न होने के कारण उसके भाई लक्ष्मणसिंह का पुत्र केसरीसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो कानोड़ का वर्तमान स्वामी और महद्राजसभा तथा वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा का सदस्य है।

भींडर

भींडर के स्वामी महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तिसिंह[1] के मुख्य वंशज हैं और शक्तावत कहलाते हैं तथा 'महाराज' उनकी उपाधि है।

महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के समय शक्तिसिंह अपने पिता से अप्रसन्न होकर बादशाह अकबर से, जो मेवाड़ पर चढ़ाई करने का इरादा कर धौलपुर में ठहरा हुआ था, मिला। एक दिन बादशाह ने हंसी में उसे कहा 'बड़े बड़े ज़मींदार (राजा) मेरे अधीन हो चुके हैं, केवल राणा उदयसिंह अबतक नहीं हुआ है, अतएव उसपर चढ़ाई करने का मेरा विचार है, तुम इसमें मेरी क्या सहायता करोगे'? यह सुनकर शक्तिसिंह, इस विचार से कि बादशाह के पास मेरे चले आने से कहीं लोग यह न समझ लें कि मेरी ही सलाह से उसने मेवाड़ पर चढ़ाई की है, धौलपुर से भागकर चित्तोड़ लौट गया और महाराणा को अकबर के चित्तोड़ पर चढ़ाई करने के इरादे की खबर दी। फिर वह महाराणा के विरुद्ध बादशाही सेना में कभी उपस्थित न हुआ।

बादशाह जहांगीर के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों के समय शक्तिसिंह का तीसरा पुत्र बल्लू[2] बादशाही अधिकार में गये हुए ऊंटाले

१—वंशक्रम—(१) शक्तिसिंह। (२) भाण। (३) पूर्णमल। (४) सबलसिंह। (५) मोहकमसिंह। (६) अमरसिंह। (७) जैतसिंह। (८) उम्मेदसिंह। (९) खुशालसिंह। (१०) मोहकमसिंह (दूसरा)। (११) ज़ोरावरसिंह। (१२) ज़ुम्भारसिंह। (१३) मदनसिंह। (१४) केसरीसिंह। (१५) माधवसिंह। (१६) भूपालसिंह। (१७) मानसिंह।

(२) बल्लू के वंशज बठिवाबकी के शक्तावत हैं।

के क़िले के दरवाज़े पर, जिसके किंवाड़ों में तीक्ष्ण भाले लगे हुए थे, जा अड़ा, परन्तु जब उसके हाथी ने, जो मुकना था, दरवाज़े पर मोहरा न किया तब उसने भालों पर खड़ा होकर महावत को आज्ञा दी कि हाथी को मेरे शरीर पर हूल दे। महावत के वैसा ही करने से बल्लू तो मर गया, परन्तु किंवाड़ टूट जाने से महाराणा की सेना का क़िले में प्रवेश हो गया। वहां घमसान युद्ध हुआ, जिसमें क़ायमखां आदि बहुतसे शाही सैनिक मारे तथा क़ैद कर लिए गए और ऊंटाले पर महाराणा का अधिकार हो गया।

अब्दुल्लाखां के साथ की राणपुर की लड़ाई में महाराज पूर्णमल, जो शक्तिसिंह का पोता तथा भाण का पुत्र था, वीरतापूर्वक लड़कर मारा गया। महाराणा राजसिंह के समय डूंगरपुर, बांसवाड़े आदि इलाक़ों के स्वामियों के स्वतन्त्र हो जाने पर पूर्णमल के पोते (सबलसिंह के पुत्र) महाराज मोहकमसिंह, रावत रघुनाथसिंह आदि सरदारों ने उनपर चढ़ाई कर उन्हें महाराणा के अधीन किया। बादशाह औरंगज़ेब के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में मोहकमसिंह महाराणा के साथ रहकर लड़ा और अन्य सरदारों के साथ उसने राजनगर के शाही थाने पर आक्रमण किया। फिर वह शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण के समय कुंवर के साथ रहा।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उसका पांचवां वंशधर मोहकमसिंह (दूसरा), जसवन्तसिंह आदि रत्नसिंह के तरफ़दार सरदारों से मिल गया, जिन्होंने महापुरुषों की सेना साथ लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई की, परन्तु उसमें उनकी हार हुई। महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में उसके निर्बल होने के कारण चूंडावत सरदार निरंकुश हो गये, जिससे राजमाता ने मोहकमसिंह को अपने पक्ष में मिलाने की चेष्टा की। इसके पीछे भींडर पर महाराणा भीमसिंह की आज्ञानुसार कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह ने घेरा डाला, परन्तु उसी समय मोहकमसिंह के सहायक लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह ने कुरावड़ पर चढ़ाई कर दी, जिससे अर्जुनसिंह को भींडर पर से घेरा उठा लेना पड़ा। चूंडावतों और शक्तावतों के बीच विरोध हो जाने पर सोमचन्द गांधी ने, जो चूंडावतों का शत्रु था, मोहकमसिंह और लावे के शक्तावत सरदार को अपनी ओर मिला लिया तथा राजमाता से सिरोपाव आदि दिलाकर उन्हें

सम्मानित कराया। फिर उसकी सलाह से महाराणा भींडर जाकर मोहकमसिंह को अपने साथ उदयपुर ले आया। मेवाड़ को मरहटों से खाली कराने के लिए मोहकमसिंह और प्रधान सोमचन्द ने सलूंबर से रावत भीमसिंह को उदयपुर बुलाया[1]। सोमचन्द के मारे जाने पर उसके वध का बदला लेने के लिए आकोले के पास कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह से मोहकमसिंह तथा सोमचन्द के भाई सतीदास प्रधान की लड़ाई हुई, जिसमें मोहकमसिंह की जीत हुई और अर्जुनसिंह ने भागकर अपने प्राण बचाये। फिर चूंडावतों से मोहकमसिंह आदि शक्तावतों की खैरोंदे के पास लड़ाई हुई, जिसमें शक्तावतों की हार हुई। इसके उपरान्त अर्जुनसिंह के छोटे पुत्र अर्जीतसिंह ने चूंडावतों से १०००००० रु० दिलाने का वादा कर आंबाजी इंगलिया को अपनी ओर मिला लिया। तब उस (इंगलिया) ने अपने नायब गणेशपन्त को मोहकमसिंह आदि शक्तावतों का साथ छोड़कर चूंडावतों की सहायता करने के लिए लिखा, जिससे शक्तावतों का ज़ोर कम हो गया।

मोहकमसिंह के ज़ोरावरसिंह और फ़तहसिंह दो पुत्र थे, जिनमें से ज़ोरावरसिंह तो अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और फ़तहसिंह को महाराणा भीमसिंह ने बोहेड़े की जागीर दी। महाराज ज़ोरावरसिंह के कोई पुत्र न था, जिससे उसके मरने पर उसका बहुत दूर का रिश्तेदार हम्मीरसिंह पानसल से गोद गया। इसपर फ़तहसिंह के दत्तक पुत्र बख्तावरसिंह ने ठिकाने का दावा किया और कई लड़ाइयां भी लड़ीं, परन्तु भींडर पर हम्मीरसिंह का ही अधिकार बना रहा। महाराणा शंभुसिंह के समय हम्मीरसिंह रीजेन्सी कौंसिल का सदस्य बनाया गया। हम्मीरसिंह के उत्तराधिकारी मदनसिंह के भी कोई पुत्र न होने के कारण हम्मीरसिंह के चौथे बेटे दूलहसिंह का ज्येष्ठ पुत्र केसरीसिंह गोद गया और उसके पुत्र माधवसिंह के निःसन्तान मर जाने पर उस (माधवसिंह) का छोटा भाई भूपालसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। भूपालसिंह के भी पुत्र न होने से केसरीसिंह के छोटे भाई बलवंतसिंह का पुत्र मानसिंह भींडर का स्वामी हुआ, जो इस समय विद्यमान है।

1—इसका सविस्तर विवरण सलूंबर के इतिहास में लिखा जा चुका है।

बदनोर

बदनोर के सरदार मेड़तिये राठोड़ एवं मेड़तियों में मुख्य हैं। उनकी उपाधि ठाकुर है। जोधपुर बसानेवाले राव जोधा के अनेक पुत्रों में से दूदा और वरसिंह एक माता से उत्पन्न हुए थे। राव जोधा ने उन दोनों को शामिल में मेड़ते का परगना जागीर में दिया। तब से वहां के राठोड़ मेड़तिये कहलाये।

कुछ वर्षों पीछे वरसिंह ने दूदा को वहां से निकाल दिया, जिससे वह बीकानेर में जा रहा। वरसिंह ने क़हत के समय अजमेर के अधीन का सांभर शहर लूट लिया, जिसपर अजमेर के सूबेदार मल्लूखां ने वरसिंह को वचन देकर अजमेर बुलाया और उसे क़ैद कर लिया। यह खबर पाकर दूदा ने बीकानेर से जाकर वरसिंह को छुड़ा लिया। वरसिंह के पीछे उसका बेटा सीहा मेड़ते का स्वामी हुआ, परन्तु उसको अयोग्य देखकर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर कब्ज़ा कर लिया। वरसिंह की ठकुराणी सांखली ने, जो एक समझदार औरत थी, दूदा को बीकानेर से बुलाया। उसने मुसलमानों को वहां से निकाल दिया और मेड़ते पर अधिकार कर आधा अपने लिए रख शेष आधा अपने भतीजे सीहा को दे दिया। यह खबर पाकर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर चढ़ाई कर उस इलाक़े के गांवों को उजाड़ना शुरू किया, जिसपर दूदा ने सूबेदार से लड़ाई कर पहले तो उसके हाथी छीन लिये और अजमेर के पास की लड़ाई में उसको मार डाला[1]।

दूदा के वीरमदेव, रत्नसिंह, रायमल आदि पुत्र हुए। महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) के ज्येष्ठ कुंवर भोजराज के साथ रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई का विवाह हुआ था। मुग़ल बादशाह बाबर के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाई में वीरमदेव, रत्नसिंह और रायमल तीनों लड़े तथा रत्नसिंह व रायमल काम आये। वीरमदेव से जोधपुर के राव मालदेव ने मेड़ता छीन लिया, परन्तु दिल्ली के सुलतान शेरशाह सूर ने जब मालदेव पर चढ़ाई की उस समय वह (मालदेव) बिना लड़े ही भाग गया और उसके राज्य पर सुलतान का अधिकार हो गया। उस समय उसने वीरमदेव को मेड़ता दे दिया। शेरशाह

---

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातों का संग्रह; संख्या ६२०-२१।

के मरने पर मालदेव ने जोधपुर आदि पर पीछा अधिकार कर लिया। वीरमदेव के पीछे उसका पुत्र जयमल मेड़ते का स्वामी हुआ। वि० सं० १६११ (ई० स० १५५४) में राव मालदेव ने राठोड़ देवीदास (जैतावत) और अपने पुत्र चन्द्रसेन को भेजकर जयमल से मेड़ता छीन लिया। इसपर जयमल महाराणा उदयसिंह की सेवा में जा रहा और महाराणा ने उसे जागीर देकर अपना सरदार बनाया, परन्तु अपना पैतृक ठिकाना मेड़ता पुनः प्राप्त करने के उद्योग के लिए जयमल बादशाह अकबर के पास जा रहा। फिर मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन को बादशाह ने उसकी सहायता के लिए सेना देकर मेड़ते पर भेजा। वि० सं० १६१८ (चैत्रादि १६१९) चैत्र सुदि ५ (ता० २० मार्च सन् १५६२) को मेड़ते में लड़ाई हुई और मालदेव के बहुतसे राजपूत काम आये तथा मेड़ते पर पीछा जयमल का अधिकार हो गया[1]।

मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन बादशाह से बाग़ी होकर भागा और जयमल के पुत्र विट्ठलदास को साथ लेकर मेड़ते पहुंचा, उस समय मिर्ज़ा का ज़नाना नागोर में था, जिसको मेड़ते लाने के लिए उसने जयमल से कहा तो उसने अपने पुत्र सादूल को नागोर भेजा। सादूल वहां से मिर्ज़ा की औरतों को लेकर चला उस समय नागोर के हाकिम ने उसका पीछा किया। सादूल उससे लड़कर ४० राजपूतों सहित मारा गया, परन्तु मिर्ज़ा का ज़नाना मेड़ते पहुंच गया। इस प्रकार मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन की सहायता करने के कारण बादशाह अकबर जयमल से बहुत नाराज़ हुआ और मेड़ते पर सेना भेजकर उसे ले लिया, जिससे वह (जयमल[2]) पुनः महाराणा की सेवा में जा रहा और महाराणा ने बदनोर आदि उसको जागीर में देकर अपना सरदार बनाया।

वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई हुई उस समय जयमल तथा सीसोदिया पत्ता के ऊपर क़िले की रक्षा का भार

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातों का संग्रह; संख्या ८३३-३४।

(२) वंशक्रम—(१) जयमल। (२) मुकुन्ददास। (३) मनमनदास। (४) सांवलदास। (५) जसवंतसिंह। (६) जयसिंह। (७) सुलतानसिंह। (८) अभयसिंह। (९) जैतसिंह। (१०) जोधसिंह। (११) प्रतापसिंह। (१२) केसरीसिंह। (१३) गोविन्दसिंह। (१४) गोपालसिंह।

छोड़कर महाराणा स्वयं मेवाड़ के पहाड़ों की ओर चला गया। इसके पीछे लड़ाई के समय जयमल हज़ारमेखी बख़्तर पहिने हुए लाखोटा दरवाज़े के सामने मोर्चे पर बादशाह के मुक़ाबले में जा डटा और रसद ख़तम हो जाने पर उसने सब सरदारों को क़िले में एकत्र कर कहा कि अब स्त्रियों तथा बच्चों को जौहर की आग में जलाकर क़िले के दरवाज़े खोल दिये जाय एवं हम सबको अपने देश तथा वंश के गौरव की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक लड़कर प्राणोत्सर्ग करना चाहिए। उसके कथन के अनुसार जौहर हो जाने के दूसरे ही दिन सवेरे क़िले के दरवाज़े खोल दिये गये और राजपूत शाही सेना पर टूट पड़े। उस समय जयमल ने, जो रात्रि को क़िले की मरम्मत कराते समय बादशाह की गोली लगने से लंगड़ा हो गया था, कहा कि मैं चल तो नहीं सकता, परंतु लड़ने की इच्छा अभी रह गई है। यह सुनकर उसके साथी कल्ला राठोड़ ने उसे अपने कन्धे पर बिठा लिया और उससे कहा कि अब अपनी आकांक्षा पूरी कर लो। फिर दोनों बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए हनुमान पोल और भैरव पोल के बीच काम आये, जहां एक दूसरे के निकट उनके स्मारक बने हुए हैं। जयमल तथा सीसोदिया पत्ता के विलक्षण पराक्रम और असाधारण युद्ध-कौशल से प्रसन्न होकर बादशाह ने हाथियों पर बैठी हुई उनकी पत्थर की मूर्तियां बनवाकर आगरे में क़िले के दरवाज़े पर खड़ी कराईं।

जयमल का सातवां पुत्र रामदास हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया। झाला शत्रुशाल के मेवाड़ छोड़कर मारवाड़ चले जाने पर महाराणा प्रतापसिंह ने उसकी देलवाड़े की जागीर जयमल के उत्तराधिकारी बदनोर के ठाकुर मुकुन्ददास के ज्येष्ठ पुत्र मनमनदास को उसके पिता की जीवित दशा में दे दी थी। मुकुन्ददास तथा उसका भाई हरिदास दोनों महाराणा अमरसिंह के समय अब्दुल्लाख़ां के साथ की राणपुर की लड़ाई में लड़े और मारे गये। मुकुन्ददास के पुत्र मनमनदास ने केलवा गांव के पास अब्दुल्लाख़ां की फ़ौज पर छापा मारा। फिर वह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में लड़ा। महाराणा राजसिंह पर औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई उस समय मनमनदास का उत्तराधिकारी सांवलदास शाही सेना से लड़ा। फिर बादशाह के मेवाड़ से अजमेर चले जाने पर महाराणा की आज्ञा से उसने बदनोर के

शाही थाने पर ऐसा भीषण आक्रमण किया कि शाही सेनापति रुहिल्लाखां तथा उसके १२००० सवार अपना सारा सामान छोड़कर रात को ही वहां से भाग निकले और बादशाह के पास अजमेर पहुंचे। सांवलदास का पुत्र जसवंतसिंह महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय पुर, मांडल आदि शाही परगनों पर जो चढ़ाई हुई उसमें शामिल था। उस लड़ाई में बादशाही अफ़सर फ़िरोज़खां को बड़ा नुक़सान उठाकर भागना पड़ा और उन परगनों पर महाराणा का अधिकार हो गया। उस लड़ाई में जसवंतसिंह लड़ता हुआ मारा गया।

जसवंतसिंह का प्रपौत्र जयसिंह रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में लड़ा और घायल हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में बेदले के राव रामचन्द्र, गोगूंदे के झाला जसवंतसिंह (दूसरे) आदि अधिकांश सरदारों के रत्नसिंह के पक्ष में हो जाने पर भी जयसिंह का पोता अक्षयसिंह और अन्य कुछ उमराव महाराणा के ही तरफ़दार बने रहे। फिर उज्जैन तथा उदयपुर में रत्नसिंह के पक्षपाती माधवराव सिंधिया से महाराणा की जो लड़ाइयां हुईं उनमें अक्षयसिंह महाराणा के पक्ष में रहकर लड़ा और महापुरुषों के साथ की महाराणा की पहली लड़ाई में उसने अपने छोटे पुत्र ज्ञानसिंह को अपनी जमीयत के साथ भेजा। महापुरुषों के साथ की महाराणा की दूसरी लड़ाई में अक्षयसिंह का पुत्र गजसिंह महाराणा के साथ रह-कर लड़ा। महाराणा भीमसिंह के समय अंबाजी इंगलिया के नायब गणेशपंत से लकवा की जो लड़ाइयां हुईं उनमें अक्षयसिंह के उत्तराधिकारी जैतसिंह ने लकवा का साथ दिया। जैतसिंह के चौथे वंशधर गोविन्दसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर उसका निकट का कुटुम्बी गोपालसिंह गोद गया जो ठिकाने बदनोर का वर्तमान स्वामी और महद्राजसभा का मेम्बर है।

बानसी

बानसी के सरदार महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के दूसरे कुंवर शक्ति-सिंह के छोटे पुत्रों में से अचलदास के[1] वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

मेवाड़ पर शाहज़ादे परवेज़ की चढ़ाई की ख़बर पाकर महाराणा अमर-सिंह ने मांडलगढ़, मांडल और चित्तोड़ की तलहटी की शाही सेनाओं पर आक्रमण किया उस समय अचलदास मांडलगढ़ की लड़ाई में लड़ा और मारा गया। उसके पीछे नरहरदास, जसवंतसिंह और केसरीसिंह क्रमशः ठिकाने के स्वामी हुए। औरंगज़ेब के साथ की महाराणा राजसिंह की लड़ाइयों में केसरी-सिंह लड़ा। केसरीसिंह के कुंवर गंगदास (गोपालदास) ने चित्तोड़ के पास शाही सेना पर आक्रमण कर उसके १८ हाथी, २ घोड़े और कई ऊंट छीन लिए। इसपर महाराणा ने प्रसन्न होकर उसे 'कुंवर' की उपाधि, सोने के ज़ेवर सहित उत्तम घोड़ा और गांव देकर सम्मानित किया। शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह का जब आक्रमण हुआ उस समय रावत केसरीसिंह तथा गंगदास कुंवर के साथ थे और महाराणा जयसिंह से कुंवर अमरसिंह का विगाड़ हो जाने पर केसरीसिंह कुंवर का तरफ़दार रहा। रणबाज़खां के साथ महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की जो लड़ाई हुई उसमें रावत गंगदास भी महाराणा की फ़ौज के साथ था।

उसके पीछे हरिसिंह और उसके बाद उसका पुत्र हठीसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। जयपुर के महाराजा जयसिंह का देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा, इसपर ईश्वरीसिंह को हटाकर माधव-सिंह को जयपुर का स्वामी बनाने के लिए महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) और महाराजा ईश्वरीसिंह के बीच जो लड़ाइयां हुईं उनमें हठीसिंह भी विद्यमान था।

हठीसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अचलदास (दूसरे) के अपने पिता की जीवित

---

(१) वंशक्रम—(१) अचलदास। (२) नरहरदास। (३) जसवंतसिंह। (४) केसरीसिंह। (५) गंगदास। (६) हरिसिंह। (७) हठीसिंह। (८) पद्मसिंह। (९) केसरीसिंह (किशोरसिंह)। (१०) अमरसिंह। (११) अजीतसिंह। (१२) नाहरसिंह। (१३) प्रतापसिंह। (१४) मानसिंह। (१५) तख़्तसिंह।

दशा में ही मर जाने पर उस(अचलदास)का छोटा भाई पद्मसिंह[1] उसका उत्तराधिकारी हुआ। पद्मसिंह का सातवां वंशधर तख़्तसिंह बानसी का वर्तमान सरदार है।

भैंसरोड़गढ़

भैंसरोड़गढ़ के सरदार सलूंबर के रावत केसरीसिंह (प्रथम) के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

केसरीसिंह के द्वितीय पुत्र लालसिंह[2] को भैंसरोड़गढ़ की जागीर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने दी और वह दूसरी श्रेणी का सरदार बनाया गया। सरदारों से बिगाड़ हो जाने पर महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने लालसिंह को उन(सरदारों)के मुखिये बागोर के महाराज नाथसिंह को मारने की आज्ञा दी, जिसका पालन करने में वह पहले कुछ समय तक टालमटूल करता रहा फिर महाराणा के बहुत दबाव डालने पर एक दिन बागोर पहुंचकर नर्मदेश्वर का पूजन करते समय नाथसिंह की छाती में उसने कटार घुसेड़ दिया, जिससे वह तुरन्त मर गया। इसके उपलक्ष्य में महाराणा ने उसे प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया। इसके कुछ ही दिनों पीछे उस(लालसिंह)का भी देहान्त हो गया।

---

(१) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़ीकल स्केचीज़ ऑफ़ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार' (पृष्ठ २१) में हठीसिंह के पीछे अचलदास (दूसरे) का नाम लिखा है और पद्मसिंह का छोड़ दिया है, परन्तु हठीसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अचलदास तो अपने पिता की विद्यमानता में ही गुज़र गया था, जिससे वि० सं० १८११ (ई० स० १७५४) में हठीसिंह का देहान्त होने पर उसका उत्तराधिकारी उसका दूसरा पुत्र पद्मसिंह हुआ। महाराणा राजसिंह (दूसरे) का राज्याभिषेकोत्सव श्रावणादि वि० सं० १८१२ (चैत्रादि १८१३) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १७५६ ता० ३ जून) को हुआ। उस उत्सव में जो जो सरदार आदि प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे उनके नाम 'राजसिंहराज्याभिषेक काव्य' में दिये हुए हैं। उनमें बानसी के रावत पद्मसिंह का नाम है, न कि अचलदास (दूसरे) का—

बानसीनगरनायकः स्वयं वारितारिगणनायकश्च यः ।
पद्मसन्निभमुखो विराजते नामतोऽपि खलु पद्मसिंहजित् ॥

(२) वंशक्रम—(१) लालसिंह। (२) मानसिंह। (३) रघुनाथसिंह। (४) अमरसिंह। (५) भीमसिंह। (६) प्रतापसिंह। (७) इन्द्रसिंह।

क्षिप्रा नदी के पास माधवराव सिंधिया के साथ की महाराणा की सेना की लड़ाई में लालसिंह का पुत्र मानसिंह घायल होकर क़ैद हुआ, परन्तु रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह के भेजे हुए बावरी हिकमतअमली से उसे निकाल लाये। उसके निकल आने पर महाराणा को बड़ी प्रसन्नता हुई। मानसिंह का पुत्र रघुनाथसिंह हुआ। उसके पुत्र न होने से चावंड से रावत माधवसिंह का दूसरा पुत्र अमरसिंह गोद गया।

सिपाही-विद्रोह के समय उसने कप्तान शावर्स की सहायता के लिये बंबोरे के विशनसिंह को अपनी जमीयत सहित भेजा, जिसने बहुत अच्छा काम दिया। इससे प्रसन्न होकर शावर्स ने सरकार की तरफ़ से ई० स० १८५७ ता० ७ नवम्बर (वि० सं० १९१४ मार्गशीर्ष वदि ६) को उसके ठिकाने के लिये खातिरी का पत्र लिखकर उसकी तसल्ली कर दी। अमरसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भीमसिंह और उसके पीछे उसका छोटा भाई प्रतापसिंह भैंसरोड़गढ़ का सरदार हुआ। प्रतापसिंह के कोई पुत्र न था, जिससे उसने अपने सम्बन्धी भदेसर के रावत भोपालसिंह के तीसरे पुत्र इन्द्रसिंह को गोद लिया, जो भैंसरोड़गढ़ का वर्तमान सरदार है।

पारसोली

पारसोली के सरदार बेदले के स्वामी रामचन्द्र चौहान के छोटे पुत्र केसरीसिंह[1] के वंशज हैं और 'राव' उनकी उपाधि है।

केसरीसिंह पर बड़ी कृपा होने के कारण महाराणा राजसिंह ने उसे पारसोली की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया। फिर लोगों के बहकाने में आकर महाराणा सलूंबर के रावत रघुनाथसिंह से नाराज़ हो गया और उसकी जागीर का पट्टा भी केसरीसिंह के नाम लिख दिया, परन्तु वह (केसरीसिंह) सलूंबर पर अधिकार न कर सका। बादशाह औरंगज़ेब

---

(१) वंशक्रम—(१) केसरीसिंह। (२) नाहरसिंह। (३) रघुनाथसिंह। (४) राजसिंह। (५) संग्रामसिंह। (६) सावंतसिंह। (७) लालसिंह। (८) लक्ष्मणसिंह। (९) रत्नसिंह। (१०) लालसिंह (दूसरा)।

के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में केसरीसिंह ने रावत रघुनाथसिंह के पुत्र रत्नसिंह के साथ रहकर मेवाड़ के पहाड़ों में हसनअलीखां पर आक्रमण किया, जिसमें वह (हसनअलीखां) हारकर बादशाह के पास चला गया। कुंवर जयसिंह का शाहज़ादे अकबर पर आक्रमण हुआ उस समय केसरीसिंह भी उसके साथ था। महाराणा जयसिंह के समय उसने तथा रावत रत्नसिंह (चूंडावत), राठोड़ दुर्गादास, सोनिंग आदि मेवाड़ और मारवाड़ के सरदारों ने बादशाह को परास्त करने के लिये शाहज़ादे मुअज़्ज़म को उसके विरुद्ध भड़काने की चेष्टा की, जो सफल न हुई। फिर महाराणा ने केसरीसिंह, दुर्गादास आदि सरदारों को गुप्त रूप से शाहज़ादे अकबर के पास भेजा। उन्होंने औरंगज़ेब को तख़्त से उतारकर उक्त शाहज़ादे को बादशाह बनाने का प्रलोभन दे उसे अपनी ओर मिला लिया। शाहज़ादे अकबर के बाग़ी हो जाने पर बादशाह की इच्छा के अनुसार शाहज़ादे आज़म ने महाराणा कर्णसिंह के पौत्र श्यामसिंह को, जो शाही सेना में नियुक्त था, सुलह के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये महाराणा के पास भेजा। उसने महाराणा को समझाया कि इस समय अनुकूल शर्तों पर सुलह हो सकती है, यह मौक़ा नहीं चूकना चाहिये। महाराणा ने भी उसकी सलाह को पसन्द किया और उक्त शाहज़ादे, श्यामसिंह, दिलेरखां तथा हसनअलीखां की सलाह के अनुसार अर्ज़ी लिखकर केसरीसिंह, रुक्मांगद चौहान और रावत घासीराम शक्तावत को बादशाह के पास भेजा। उन्होंने बादशाह से बातचीत की और उसने सन्धि करना स्वीकार कर लिया।

महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर केसरीसिंह कुंवर का प्रधान सहायक रहा। पिता-पुत्र में मेल हो जाने के बाद भी वह कुंवर का ही तरफ़दार बना रहा, जिससे महाराणा उससे बहुत अप्रसन्न रहता और उसे मरवा डालना चाहता था। महाराणा ने सलूंबर के रावत रत्नसिंह के पुत्र रावत कांधल को, जो उसका विश्वासपात्र था, केसरीसिंह को मारने के लिये उद्यत किया। एक दिन उसने केसरीसिंह, कांधल और राठोड़ गोपीनाथ (घाणेराव का) को बादशाह के सम्बन्ध की किसी बात पर विचार कर अपनी अपनी सम्मति देने की आज्ञा दी। विचार करने का स्थान थूर का तालाब

नियत हुआ, जहां कांधल तथा केसरीसिंह दोनों पहुंचे। उस समय मौक़ा पाकर कांधल ने केसरीसिंह की छाती में अपना कटार घुसेड़ दिया और केसरीसिंह ने भी उसपर अपने कटार का वार किया। इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये। महाराणा सज्जनसिंह के समय केसरीसिंह का सातवां वंशधर लक्ष्मणसिंह इजलास ख़ास का मेम्बर चुना गया और उसका पुत्र रत्नसिंह उक्त महाराणा के राजत्वकाल में महद्राजसभा का सदस्य हुआ। रत्नसिंह का पुत्र देवीसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मर गया, जिससे उस (देवीसिंह) का पुत्र लालसिंह (दूसरा) उस (रत्नसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ जो पारसोली का वर्तमान स्वामी है।

कुरावड़

कुरावड़ के स्वामी सलूंबर के रावत केसरीसिंह के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय अर्जुनसिंह को कुरावड़ की जागीर मिली। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में ठेके पर सौंपे हुए मेवाड़ के परगनों की आमदनी तथा पेशवा का ख़िराज न भेजने के कारण मल्हारराव होलकर मेवाड़ पर आक्रमण कर ऊंटाले तक जा पहुंचा, तब महाराणा ने अर्जुनसिंह और अपने धायभाई रूपा को उसके पास भेजा, जिनके समझाने बुझाने से वह महाराणा से ५१००००० रु० लेकर वापस चला गया। माधवराव सिंधिया के साथ की उज्जैन की लड़ाई में बहुतसे सैनिकों एवं सहायक सरदारों के मारे जाने से महाराणा की सैनिक शक्ति कम हो गई, जिससे वह बहुत घबराया, परन्तु अर्जुनसिंह, भीमसिंह, अक्षयसिंह आदि सरदारों के धीरज बंधाने और उत्साह दिलाने पर सिंध तथा गुजरात के मुसलमान सैनिकों को अपनी सेना में भरती कर वह फिर लड़ने की तैयारी करने लगा। उदयपुर पर माधवराव सिंधिया की चढ़ाई हुई उस समय अर्जुनसिंह

---

(१) वंशक्रम—(१) अर्जुनसिंह। (२) जवानसिंह। (३) ईश्वरीसिंह। (४) रत्नसिंह। (५) जैतसिंह। (६) किशोरसिंह। (७) बलवन्तसिंह। (८) नरबदसिंह।

उससे लड़ा। उदयपुर में रसद कम हो जाने पर अर्जुनसिंह सिंधिया से मिला और उस(सिंधिया)को महाराणा से सुलह कर लेने पर राज़ी किया।

देवगढ़ के राघवदेव, भींडर के मोहकमसिंह आदि विरोधी सरदारों ने महापुरुषों की सेना साथ लेकर जब मेवाड़ पर चढ़ाई की तब अर्जुनसिंह और सलूंबर के रावत भीमसिंह पर उदयपुर की रक्षा का भार छोड़कर महाराणा शत्रुओं से लड़ने गया। महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के समय वेतन न मिलने के कारण सिंधी सैनिकों ने बड़ा उपद्रव मचाया तब राजमाता ने कुरावड़ से अर्जुनसिंह को बुला लिया, जो सैनिकों का वेतन चुकाने के लिये मेवाड़ की प्रजा एवं जागीरदारों से रुपये वसूल करने का विचार कर दस हज़ार सिंधियों के साथ चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ, जिसके निकट पहुंचने पर सिंधिया की मरहटी सेना से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें सिंधियों ने महाराणा के अल्पवयस्क भाई भीमसिंह के उत्साह दिलाने पर शत्रुओं से वीरतापूर्वक लड़कर उन्हें भगा दिया।

महाराणा की कमज़ोरी से अधिकांश सरदार स्वेच्छाचारी हो गये थे, इससे उन्हें दबाने के लिए राजमाता ने भींडर के शक्तावत सरदार मोहकमसिंह को अपनी ओर मिलाना चाहा। यह बात अर्जुनसिंह तथा भीमसिंह को बहुत बुरी लगी। इसके पीछे बेगूं के रावत मेघसिंह ने, जो झूठे दावेदार रत्नसिंह का तरफ़-दार था, खालसे के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया। तब महाराणा के बुलाने पर माधवराव सिंधिया ने बेगूं को जा घेरा, परन्तु वह उसे जीत न सका। इसपर अर्जुनसिंह ने मेघसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को अपनी ओर मिला लिया, जिससे लाचार होकर मेघसिंह ने ४८१२१७ रु० और बहुतसे गांव गिरवी के तौर सौंपकर सिंधिया से सुलह कर ली। महाराणा भीमसिंह के समय अर्जुन-सिंह राज्य का काम चलाने में सलूंबर के रावत भीमसिंह का सहायक हुआ। फिर उसने महाराणा की अनुमति से भींडर के शक्तावत सरदार मोहकमसिंह पर आक्रमण किया, परन्तु उसी समय लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह ने कुरावड़ पर चढ़ाई कर उसके पुत्र ज़ालिमसिंह को मार डाला। यह खबर पाकर अर्जुनसिंह भींडर से चलकर शिवगढ़ (छप्पन के पहाड़ों में) पहुंचा, जहां संग्रामसिंह के वृद्ध पिता लालसिंह से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें लाल-सिंह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

चूंडावतों और शक्तावतों के बीच बिगाड़ हो जाने पर महाराणा ने शक्तावतों का जब पक्ष लिया तब अर्जुनसिंह, रावत भीमसिंह, रावत प्रतापसिंह आदि चूंडावत सरदार अपने अपने ठिकानों को चले गये। फिर मेवाड़ को मरहटों से खाली कराने के लिए उनकी सहायता आवश्यक समझकर प्रधान सोमचन्द गांधी और भींडर के महाराज मोहकमसिंह ने महाराणा की अनुमति से रावत भीमसिंह को सलूंबर से बुलवाया उस समय अर्जुनसिंह भी उसके साथ उदयपुर गया। इसी अरसे में मोहकमसिंह भी कोटे से पांच हज़ार सवारों को साथ लेकर जा पहुंचा, जिससे अर्जुनसिंह आदि चूंडावत सरदार षड्यन्त्र का सन्देह कर वहां से तुरंत चल दिये, परन्तु राजमाता उन्हें पलाणा गांव से उदयपुर लौटा लाई।

शक्तावतों के बहकाने में आकर सोमचन्द ने चूंडावतों के कुछ गांव खालसा कर लिए थे, जिससे वे उसके शत्रु होकर उसे मारने का अवसर ढूंढने लगे। एक दिन अर्जुनसिंह और चावंड का रावत सरदारसिंह महलों में गये। उस समय सोमचन्द भी वहां था। उसे दोनों सरदारों ने सलाह के बहाने अपने पास बुलाकर दोनों तरफ़ से उसकी छाती में कटार घुसेड़ दिये, जिससे वह तत्काल मर गया। फिर अर्जुनसिंह सोमचन्द के खून से भरे हुए अपने हाथों को बिना धोये ही महाराणा के पास पहुंचा। उसे देखते ही महाराणा आगबबूला हो गया, परन्तु अपनी असमर्थता के कारण उसे कोई दण्ड न दे सका। महाराणा को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर अर्जुनसिंह वहां से चला गया।

सोमचन्द गांधी के इस प्रकार मारे जाने पर उसका भाई सतीदास शत्रुओं से उसकी हत्या का बदला लेने के लिए मोहकमसिंह आदि शक्तावत सरदारों की सहायता से सेना एकत्र कर चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ। यह खबर पाकर अर्जुनसिंह की अध्यक्षता में चूंडावतों ने चित्तोड़ से कूच किया। आकोले के पास लड़ाई हुई, जिसमें अर्जुनसिंह ने भागकर अपने प्राण बचाये।

रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने के लिए महाराणा ने आंबाजी इंगलिया की मातहती में अर्जुनसिंह, किशोरदास देपुरा आदि को वहां ससैन्य भेजा। समीचा गांव में रत्नसिंह के साथी जोगियों से महाराणा की सेना की लड़ाई हुई, जिसमें वे (जोगी) हारकर केलवाड़े भाग गये, परन्तु उक्त सेना

ने वहां से भी उन्हें मार भगाया। फिर उसने कुंभलगढ़ से रत्नसिंह को निकालकर उसपर महाराणा का अधिकार करा दिया। रत्नसिंह के निकल जाने पर अर्जुनसिंह आदि सरदार सूरजगढ़ के राज जसवंतसिंह को कुंभलगढ़ सौंपकर उदयपुर वापस चले गये।

शक्तावतों से अपने पुराने बैर का बदला लेने के लिए चूंडावतों ने अर्जुनसिंह के छोटे पुत्र अजीतसिंह को आंबाजी इंगलिया के पास भेजा। चूंडावतों से १०००००० रु० दिलाने का वादा कर उसने इंगलिया को उनका मददगार बना लिया। इसपर उसकी आज्ञा के अनुसार उसके नायब गणेशपन्त ने शक्तावतों का साथ छोड़ दिया, जिससे चूंडावतों का ज़ोर फिर बढ़ गया। अर्जुनसिंह का सातवां वंशधर नरबदसिंह कुराबड़ का वर्तमान स्वामी है।

आसींद

आसींद के सरदार कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह के चौथे पुत्र ठाकुर अजीतसिंह[1] के वंशज थे और 'रावत' उनकी उपाधि थी।

अजीतसिंह को महाराणा भीमसिंह के समय गोरख्या की जागीर मिली। उसके कोई पुत्र न था, जिससे उसने साटोले के रावत के भतीजे दूलहसिंह को गोद लिया। फिर सोमचन्द गांधी के मारे जाने के बाद शक्तावतों का ज़ोर कम हो जाने पर उसने तथा उसके पुत्र दूलहसिंह और कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह के पौत्र जवानसिंह ने महाराणा की अनुमति से सोमचन्द गांधी के पुत्र साह सतीदास प्रधान को क़ैद कर लिया। अजीतसिंह दूसरे दर्जे का सरदार था और ठाकुर कहलाता था, परंतु उसका उत्तराधिकारी दूलहसिंह, जिसे गोद लिये जाने से पहले ही महाराणा के ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह ने 'रावत' की उपाधि और आसींद की जागीर दी थी, प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया गया। ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७४) में अंगरेज़ी सरकार के साथ महाराणा का अहदनामा हुआ जिसपर महाराणा की ओर से अजीतसिंह ने दस्तख़त किये। उक्त

---

(१) वंशक्रम—(१) अजीतसिंह। (२) दूलहसिंह। (३) खुमाणसिंह। (४) अर्जुनसिंह। (५) रणजीतसिंह।

महाराणा के समय नवाब दिलेरख़ां ने मेवाड़ पर आक्रमण किया तो उससे कुंवर अमरसिंह का युद्ध हुआ। उस समय रावत दूलहसिंह कुंवर के साथ था। इस लड़ाई में दिलेरख़ां तो हारकर भाग गया, परंतु दूलहसिंह घायल हुआ।

महाराणा सरूपसिंह के राजत्वकाल में सलूंबर के कुंवर केसरीसिंह ने दूलहसिंह को, जिसका प्रभाव बहुत बढ़ गया था, राज्यकार्य से अलग करने की चेष्टा की, परंतु उसमें सफलता न हुई। केसरीसिंह की इस कार्रवाई से उसका दुश्मन होकर दूलहसिंह ने उसके पिता पद्मसिंह से, जिसका सारा अधिकार उसने छीन लिया था, महाराणा के पास अर्ज़ी पेश कराकर उस (पद्मसिंह) को सलूंबर का अधिकार वापस दिला दिया, जिससे अप्रसन्न होकर केसरीसिंह सलूंबर चला गया। फिर केसरीसिंह के मित्र मेहता रामसिंह तथा गोगूंदे के झाला लालसिंह ने महाराणा से दूलहसिंह की शिकायत कर उसके कुछ गांव ज़ब्त करा लिये और दरबार में उसका आना जाना बंद करा दिया। अंत में महाराणा की आज्ञा के अनुसार वह अपने ठिकाने को वापस चला गया। इसके उपरान्त उसपर सरदारों को बहकाने का सन्देह कर महाराणा ने उसे पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा मेवाड़ से निकाल दिये जाने की धमकी दिलाई। अपुत्र होने के कारण दूलहसिंह ने चंगेड़ी के स्वामी दौलतसिंह के पुत्र खुंमाणसिंह को गोद लिया, जो उस (दूलहसिंह) के पीछे ठिकाने का स्वामी हुआ।

महाराणा सज्जनसिंह के समय खुंमाणसिंह का पुत्र अर्जुनसिंह पहले इजलास ख़ास का, फिर महद्राजसभा का मेम्बर चुना गया। उसके पुत्र रणजीतसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर महाराणा फ़तहसिंह ने आसींद की जागीर ख़ालसा कर ली।

सरदारगढ़

सरदारगढ़ के स्वामी शार्दूलगढ़ (काठियावाड़ में) के सिंह डोडिया के पुत्र धवल[1] के वंशज हैं और 'ठाकुर' उनका ख़िताब है।

(१) वंशक्रम—(१) धवल। (२) सल। (३) माहरसिंह। (४) किसनसिंह। (५) कर्णसिंह। (६) भाण। (७) सांडा। (८) भीमसिंह। (९) गोपालदास।

महाराणा लक्षसिंह (लाखा) की माता के द्वारिका की यात्रा को जाते समय काठियावाड़ में काबों से घिर जाने पर राव सिंह मेवाड़ की सेना में शामिल होकर काबों से लड़ता हुआ मारा गया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसके पुत्र धवल को अपने यहां बुला लिया और रतनगढ़, नन्दराय, मसूदा आदि गांवों की पांच लाख की जागीर देकर अपना सरदार बनाया। मांडू के सुलतान ग़यासुद्दीन के सेनापति ज़फ़रखां से महाराणा रायमल की लड़ाई हुई, जिसमें धवल का प्रपौत्र किसनसिंह भी लड़ा। महाराणा विक्रमादित्य के समय चित्तोड़ पर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की दूसरी चढ़ाई हुई, तब किसनसिंह का पौत्र भाण सुलतान की सेना से लड़कर मारा गया। वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५७) में शेरशाह सूर के सेनापति हाजीखां और जोधपुर के राव मालदेव की संयुक्त सेना से महाराणा उदयसिंह का युद्ध हुआ, जिसमें भाण का पोता भीम घायल हुआ।

चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई के समय सरदारों ने उससे भाण के पुत्र सांडा और रावत साहिबखान के द्वारा सुलह की बातचीत की, जो निष्फल हुई। अंत में किले के दरवाज़े खोल दिये जाने पर सांडा गंभीरी नदी के पश्चिमी किनारे पर शाही फ़ौज से लड़ता हुआ मारा गया।

सांडा का उत्तराधिकारी भीमसिंह हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में लड़कर काम आया और उसका पोता जयसिंह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाई में लड़ा। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय जयसिंह के प्रपौत्र सरदारसिंह को लावे का ठिकाना मिला। उसने लावे में क़िला बनवाकर उसका नाम सरदारगढ़ रखा। फिर महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह ने लावे पर अधिकार कर सरदारसिंह के उत्तराधिकारी सामन्तसिंह को वहां से निकाल दिया। इसके पीछे महाराणा सरूपसिंह ने सामन्तसिंह के पोते ज़ोरावरसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर वि० सं० १६१२ (ई० स० १८५५) में सरदारगढ़ पर

(१०) जयसिंह। (११) नवलसिंह। (१२) इन्द्रभाण। (१३) सरदारसिंह। (१४) सामंतसिंह। (१५) शेरसिंह। (१६) ज़ोरावरसिंह। (१७) मनोहरसिंह। (१८) सोहनसिंह। (१९) लक्ष्मणसिंह। (२०) अमरसिंह।

उसका अधिकार करा दिया तथा उसे दूसरे दर्जे का सरदार बनाया और संग्रामसिंह के वंशज चत्रसिंह को निर्वाह के लिये पहाड़ी ज़िले के कोल्यारी आदि कुछ गांव दिये। ज़ोरावरसिंह का उत्तराधिकारी मनोहरसिंह हुआ।

महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी में चत्रसिंह के दावा करने पर रीजेन्सी कौंसिल ने फ़ैसला किया कि लावा शक्तावतों को वापस दे दिया जाय। मनोहर-सिंह ने लावा छोड़ना स्वीकार न कर एजेन्ट गवर्नर जनरल के पास कौंसिल के निर्णय की अपील की। इसपर एजेन्ट ने कौंसिल का फ़ैसला रद्द कर सरदारगढ़ पर मनोहरसिंह का ही अधिकार बहाल रखा। महाराणा सज्जनसिंह के राज-त्वकाल में इजलास खास की स्थापना होने पर मनोहरसिंह उसका सदस्य चुना गया। फिर वह महद्राजसभा का मेम्बर हुआ। उसकी योग्यता और कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया। मनोहरसिंह के दोनों पुत्र उसके सामने ही मर गये तब उसने अपने छोटे भाई शार्दूलसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया, परन्तु वह भी उसकी जीवित दशा में मर गया, जिससे उस (शार्दूलसिंह) का पुत्र सोहनसिंह उस (मनोहरसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ।

सोहनसिंह का पौत्र (लक्ष्मणसिंह का पुत्र) अमरसिंह सरदारगढ़ का वर्तमान स्वामी है।

महाराणा के नज़दीकी रिश्तेदार

बागोर

बागोर के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के दूसरे कुंवर नाथसिंह[1] के वंशज थे और 'महाराज' उनकी उपाधि थी।

बूंदी के कुंवर उम्मेदसिंह के छोटे भाई दीपसिंह को २५००० रु० वार्षिक आय की लाखोले की जागीर का पट्टा महाराणा की आज्ञा के बिना ही लिख देने के कारण महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने अपने कुंवर प्रतापसिंह से अप्रसन्न होकर उसे क़ैद करना चाहा और एक दिन उसे कृष्णविलास महल में बुलाया, जहां महाराणा के आदेशानुसार नाथसिंह ने उसे पीछे से पकड़ लिया। फिर महाराणा की मृत्यु से कुछ दिनों पहले नाथसिंह को यह ख़याल हुआ कि कहीं उसके पीछे प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा तो वह मुझे अवश्य दंड देगा। राघवदेव झाला (देलवाड़े का), भारतसिंह (खैराबाद का), जसवंतसिंह (देवगढ़ का), और उम्मेदसिंह (शाहपुरे का) की सलाह से उसने प्रतापसिंह को विष देकर मार डालने का उद्योग किया, परन्तु उसमें सफलता न हुई। कितने एक सरदारों से महाराणा अरिसिंह (दूसरे) का विरोध हो जाने पर उसके आदेशानुसार भैंसरोड़गढ़ के सरदार लालसिंह ने नाथसिंह को, जो राजद्रोही सरदारों का सहायक माना जाता था, मार डाला।

नाथसिंह के पीछे उसके पुत्र भीमसिंह का बेटा शिवदानसिंह बागोर का स्वामी हुआ। शिवदानसिंह के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र सरदारसिंह पीछे से महाराणा जवानसिंह का और चौथा सरूपसिंह सरदारसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। शेष दो पुत्रों में से द्वितीय पुत्र सुजानसिंह के बाल्यावस्था में ही मर जाने से शेरसिंह ठिकाने का मालिक हुआ। शेरसिंह के पांच पुत्र शार्दूलसिंह, सौभागसिंह, समर्थसिंह, शक्तिसिंह और सोहनसिंह हुए। शार्दूलसिंह पर महाराणा सरूपसिंह को ज़हर दिलाने का दोष

(१) वंशक्रम—(१) नाथसिंह। (२) शिवदानसिंह (भीमसिंह का पुत्र)। (३) शेरसिंह। (४) शंभुसिंह। (५) समर्थसिंह। (६) सोहनसिंह। (७) शक्तिसिंह।

लगाया जाकर वह क़ैद किया गया और क़ैद की हालत में ही मरा। सौभागसिंह का बचपन में ही देहान्त होगया, इसलिए शेरसिंह का उत्तराधिकारी शार्दूलसिंह का पुत्र शंभुसिंह हुआ। महाराणा सरूपसिंह ने शंभुसिंह को गोद लिया तब शेरसिंह के तीसरे पुत्र समर्थसिंह को ठिकाने का अधिकार मिला। वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में समर्थसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर महाराणा शंभुसिंह ने उसके पांचवें भाई सोहनसिंह को पोलिटिकल एजेन्ट के विरोध करने पर भी बागोर का स्वामी बना दिया और उसके बड़े भाई शक्तिसिंह को, जो वास्तविक हक़दार था, ठिकाने में से ७००० रु० वार्षिक आय की जागीर दिये जाने की आज्ञा दी। इसपर शक्तिसिंह ने बड़ा फ़साद मचाया, जिससे वह सेना भेजकर उदयपुर लाया गया।

शंभुसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर शक्तिसिंह का पुत्र सज्जनसिंह महाराणा हुआ। तब समर्थसिंह के यहां गोद जाने के कारण सोहनसिंह ने मेवाड़ की गद्दी का दावा किया, परन्तु अंग्रेज़ी सरकार ने उसका दावा स्वीकार न किया, जिसपर उसने यहांतक बखेड़ा मचाया कि अंग्रेज़ी सरकार ने सेना भेज उसे गिरफ़्तार कराकर बनारस भेज दिया और उसकी जागीर ज़ब्त हो गई। फिर उक्त सरकार की स्वीकृति से महाराणा ने उसे बनारस से वापस बुला लिया और उसके यह लिख देने पर कि भविष्य में मैं कभी मेवाड़ या बागोर का दावा न करूंगा उसके निर्वाह के लिए १०००० रु० वार्षिक नियत किये और अपने पिता शक्तिसिंह को बागोर का स्वामी बनाया। सोहनसिंह के कोई पुत्र न होने और शक्तिसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुजानसिंह के बाल्यावस्था में ही मर जाने से महाराणा फ़तहसिंह ने बागोर को ख़ालसे कर लिया।

करजाली

करजाली के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के तीसरे पुत्र बाघसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' उनकी उपाधि है।

---

(१) वंशक्रम—(१) बाघसिंह। (२) भैरवसिंह। (३) दौलतसिंह। (४) अनूपसिंह। (५) सूरजसिंह। (६) लक्ष्मणसिंह।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय झूठे दावेदार रत्नसिंह के तरफ़दार सरदार जब माधवराव सिंधिया को उदयपुर पर चढ़ा लाये उस समय बाघसिंह ने तोपों की मार से शहर पर उसका अधिकार न होने दिया। इसपर सिंधिया ने तोपों की मार बन्द कराने के लिए उसके पास ५०००० रु० भिजवाये। उसने वे रुपये लेकर महाराणा के नज़र कर दिये पर तोपों की मार ज्यों की त्यों जारी रखी, जिससे मरहटों की बड़ी हानि हुई और वे लगातार छः महीने तक लड़ते रहे तो भी शहर पर कब्ज़ा न कर सके। महापुरुषों के साथ की उक्त महाराणा की पहली लड़ाई में बाघसिंह लड़ा। फिर गोड़वाड़ पर रत्नसिंह का अधिकार हो जाने की ख़बर पाकर महाराणा ने उसे ससैन्य वहां भेजा। उसने गोड़वाड़ से रत्नसिंह को निकाल दिया। महाराणा हम्मीरसिंह के बाल्यावस्था में ही गद्दी पाने से अमरचन्द बड़वा और मेहता अगरचन्द की सलाह से महाराज बाघसिंह तथा शिवरती के महाराज अर्जुनसिंह ने राज्य की रक्षा एवं प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लिया।

बाघसिंह का उत्तराधिकारी भैरवसिंह हुआ, जो बन्दूकें तथा मूर्तियें बनाने में निपुण था। उदयपुर के सज्जननिवास बाग के निकट की काला व गोरा भैरवों में से गोरे की मूर्ति उस (भैरवसिंह) की बनाई हुई है। भैरवसिंह के निस्सन्तान होने के कारण उसके पीछे शिवरती के महाराज अर्जुनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह का दूसरा पुत्र दौलतसिंह गोद गया।

मेवाड़ की अत्यन्त निर्बल दशा में जब महाराणा भीमसिंह की कुंवरी कृष्णकुमारी को मार डालने का प्रस्ताव अमीरखां ने रखा और महाराणा को अपनी निर्बलता के कारण उसे स्वीकार करना पड़ा (जिसका सविस्तर वृत्तान्त पहले लिखा जाचुका है) उस समय महाराज दौलतसिंह (भैरवसिंहोत) को कृष्णकुमारी का वध करने की आज्ञा दी गई तो उस क्षत्रिय वीर का क्रोध भड़क उठा और उसकी देह में आगसी लग गई, जिससे आवेश में आकर उसने कहा—"ऐसा क्रूर और अमानुषिक आदेश करनेवाले की जीभ कट कर गिरजानी चाहिये। निरपराध बाला पर हाथ उठाना मेरा धर्म नहीं है, यह तो हत्यारों का काम है"। ऐसा कहकर उसने उस आज्ञा का पालन करना स्वीकार न किया। दौलतसिंह के पीछे उसका पुत्र अनूपसिंह जागीर का

स्वामी हुआ। उसके भी कोई पुत्र न था जिससे उसने अपने छोटे भाई दलसिंह के, जो शिवरती गोद गया था, द्वितीय पुत्र सूरतसिंह को गोद लिया।

महाराणा सज्जनसिंह के निस्सन्तान होने के कारण उसके पीछे मेवाड़ की गद्दी का हक़दार महाराज सूरतसिंह ही समझा गया, परन्तु उसकी निस्पृह तथा उदासीन वृत्ति के कारण उसकी स्वीकृति से ही उसका छोटा भाई फ़तहसिंह मेवाड़ का स्वामी बनाया गया। महाराणा फ़तहसिंह ने सूरतसिंह को २००० रु० की आय का सुकेर गांव देकर अपनी कृतज्ञता का अल्प परिचय दिया। सूरतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र[1] हिम्मतसिंह के शिवरती गोद चले जाने पर उस (सूरतसिंह) के पीछे उसका दूसरा पुत्र लक्ष्मणसिंह करजाली का स्वामी हुआ जो इस समय विद्यमान है।

शिवरती

शिवरती के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के चौथे कुंवर अर्जुनसिंह[2] के वंशज हैं और 'महाराज' उनकी उपाधि है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय मेवाड़ पर माधवराव सिंधिया की चढ़ाई हुई उस समय अर्जुनसिंह ने उसकी सेना से युद्ध किया। फिर गंगराड़ में महापुरुषों के साथ महाराणा की जो लड़ाई हुई उसमें वह (अर्जुनसिंह) महाराणा के साथ हरावल में रहकर बड़ी बहादुरी के साथ लड़ा और उसके कई घाव लगे[3]। महाराणा हम्मीरसिंह की नाबालिगी के समय अगरचन्द मेहता, अमरचन्द बड़वा आदि मुसाहिबों की सलाह से अर्जुनसिंह और करजाली

---

(१) महाराज सूरतसिंह का चतुर्थ पुत्र चतुरसिंह विद्वान् होने के अतिरिक्त बहुश्रुत और मेवाड़ी भाषा का उत्तम कवि था। उसका देहान्त कुछ समय पूर्व हो गया है।

(२) वंशक्रम—(१) अर्जुनसिंह। (२) सूरजमल। (३) दलसिंह। (४) गजसिंह। (५) हिम्मतसिंह। (६) शिवदानसिंह।

(३) लग्गि अजन महाराज के, समर पंचदस घाय।
कहुं तन देखिय सिलह कटि, खत्रवट छाप सुहाय॥
कृष्ण कवि; भीमविलास।

के महाराज बाघसिंह ने राज्य की रक्षा का सारा भार अपने ऊपर लिया। उसने अपनी अंतिम अवस्था में काशी-निवास किया और वहीं उसका शरीरान्त हुआ।

अर्जुनसिंह का ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह अपने पिता के जीतेजी मर गया, जिससे उसका उत्तराधिकारी शिवसिंह का पुत्र सूरजमल हुआ। सूरजमल महाराणा भीमसिंह का कृपापात्र था। महाराणा ने उसे सालेड़ा ग्राम भी दिया[1]। सूरजमल के पुत्र न था, जिससे उसका उत्तराधिकारी उसके छोटे भाई दौलतसिंह का, जो करजाली गोद गया था, द्वितीय पुत्र दलसिंह हुआ। उसकी उत्तम सेवाओं एवं स्वामि-भक्ति से प्रसन्न होकर महाराणा सरूपसिंह ने उसे ऊथरदा, तीतरड़ी आदि गांव दिये।

दलसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र गजसिंह शिवरती का मालिक हुआ। महाराणा सज्जनसिंह की नाबालिगी के समय वह रीजेन्सी कौंसिल और पीछे से महद्राजसभा का सदस्य रहा। गजसिंह के पुत्र न था, जिससे उसने अपने सबसे छोटे भाई फ़तहसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया, परन्तु फ़तहसिंह को मेवाड़ की गद्दी मिलने से उस (गजसिंह) का उत्तराधिकारी उसके छोटे भाई सूरतसिंह (करजालीवाले) का ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतसिंह हुआ। उसका ज्येष्ठ पुत्र शिवदानसिंह शिवरती का वर्तमान स्वामी है।

कारोई

कारोई के सरदार महाराणा जयसिंह के तीसरे पुत्र उम्मेदसिंह[2] के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनका ख़िताब है।

---

(१) महाराज सूरजमल की उत्तम सेवा और राजनिष्ठा पर प्रसन्न हो महाराणा भीमसिंह ने प्रथम वर्ग के कतिपय सामन्तों के देहावसान पर उनके ठिकानों में जाकर उनके उत्तराधिकारियों को मातमपुर्सी के हेतु उदयपुर लाने तथा तलवारबन्दी के समय उनको महलों में लाने का कार्य उस (सूरजमल) से लेना आरम्भ किया, तब से यह कार्य उसके वंशज करते हैं।

(२) वंशक्रम—(१) उम्मेदसिंह। (२) बख़्तसिंह। (३) गुमानसिंह। (४) बख़्तावरसिंह। (५) सूरतसिंह। (६) फ़तहसिंह। (७) हम्मीरसिंह। (८) रत्नसिंह। (९) बिजयसिंह।

जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के देहान्त के पीछे जयपुर की गद्दी के लिये ईश्वरीसिंह और माधवसिंह के बीच जब विरोध हुआ उस समय महाराणा ने माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाना चाहा और उसके लिये मल्हारराव होल्कर को अपना सहायक बनाने के विचार से उम्मेदसिंह के पुत्र बख़्तसिंह को उसके पास भेजा। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय जब माधवराव सिन्धिया ने उदयपुर पर चढ़ाई की उस समय महाराज गुमानसिंह (बख़्तसिंह का पुत्र) रमणा पोल नामक दरवाज़े पर रहकर मरहटों से लड़ा। गुमानसिंह का छठा वंशधर विजयसिंह कारोई का वर्तमान सरदार है।

बावलास

बावलास के सरदार महाराणा जयसिंह के दूसरे पुत्र प्रतापसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनका ख़िताब है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरा) बूंदी के राव राजा अजीतसिंह के हाथ से मारा गया उस समय बावलास का महाराज दौलतसिंह भी बूंदीवालों के हाथ से मारा गया और उसका छोटा भाई अनूपसिंह घायल हुआ। जब माधवराव सिन्धिया ने उदयपुर पर चढ़ाई की उस समय महाराज अनूपसिंह शिताब पोल पर तैनात रहकर लड़ा था।

अनूपसिंह का चौथा वंशधर भूपालसिंह हुआ, जिसका पुत्र रघुनाथ-सिंह बावलास का वर्तमान सरदार है।

बनेड़ा

बनेड़े के स्वामी महाराणा राजसिंह के चतुर्थ पुत्र भीमसिंह के वंशज हैं और 'राजा' उनका ख़िताब है। भीमसिंह[2] महाराणा जयसिंह से क़रीब सात महीने छोटा और बड़ा वीर था। महाराणा राजसिंह के समय मेवाड़ पर जब

(१) वंशक्रम—(१) प्रतापसिंह। (२) ज़ोरावरसिंह। (३) श्यामसिंह। (४) दौलतसिंह। (५) अनूपसिंह। (६) इन्द्रसिंह। (७) भवानीसिंह। (८) गोपालसिंह। (९) भूपालसिंह। (१०) रघुनाथसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) भीमसिंह। (२) सूरजमल। (३) सुलतानसिंह। (४) सरदारसिंह। (५) रायसिंह। (६) हम्मीरसिंह। (७) भीमसिंह (दूसरा)। (८) उदयसिंह। (९) संग्रामसिंह। (१०) गोविन्दसिंह। (११) अक्षयसिंह। (१२) अमरसिंह।

औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई तब भीमसिंह ने शाही सेना पर आक्रमण कर उसके कई थाने नष्ट कर दिये। शाहज़ादे अकबर के दबाव डालने पर सेनापति तहव्वरखां देसूरी के घाटे की ओर बढ़ा उस समय उस (भीमसिंह) ने उसका सामना किया। फिर महाराणा की आज्ञा से वह गुजरात पर चढ़ाई कर ईडर को तहस-नहस करता हुआ बड़नगर पहुंचा और उसे लूटकर वहां वालों से उसने ४०००० रु० दंड लिया। इसके बाद अहमदनगर पहुंचकर उसने दो लाख रुपयों का सामान लूटा और एक बड़ी तथा तीन सौ छोटी मसजिदों को तोड़ फोड़कर मुसलमानों-द्वारा मेवाड़ के मन्दिर तोड़े जाने का बदला लिया।

औरंगज़ेब और महाराणा जयसिंह के बीच सुलह हो जाने पर वह (भीमसिंह) औरंगज़ेब के पास अजमेर चला गया और उसकी सेवा स्वीकार कर ली। बादशाह ने उसे राजा का ख़िताब, मन्सब, मेवाड़ में बनेड़ा तथा बाहर भी कई परगने जागीर में दिये। फिर बादशाह जब दक्षिण को गया तब वह भी वहां पहुंचा और वहीं वि० सं० १७४१ (ई० स० १६८४) में उसका देहान्त हुआ। उस समय तक उसका मन्सब पांच हज़ारी हो गया था। इस समय उसके वंशजों के अधिकार में बनेड़े का ठिकाना तो मेवाड़ में और अमल्दां आदि कई ठिकाने मालवे में हैं। भीमसिंह के पीछे उसका दूसरा पुत्र सूरजमल बनेड़े का स्वामी हुआ।

सूरजमल के पुत्र सुलतानसिंह तक तो बनेड़े के स्वामी दिल्ली के मुग़ल बादशाहों के नौकर रहे, पर सुलतानसिंह के उत्तराधिकारी सरदारसिंह से लगा कर अब तक वे महाराणा की नौकरी करते चले आ रहे हैं। ई० स० १७५० (वि० सं० १८०७) में सरदारसिंह ने बनेड़े में गढ़ बनवाया। ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१३) में शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने उससे बनेड़ा छीन लिया, जिससे वह उदयपुर चला गया। उसके कुछ दिनों बाद वहां मर जाने पर महाराणा राजसिंह (दूसरे) ने बनेड़ा शाहपुरे से छुड़ाकर उसके बालक पुत्र रायसिंह को वापस दे दिया और उसकी रक्षा के लिए रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह राठोड़ की ज़मानत पर वहां कुछ सेना रख दी। सरदारों से महाराणा अरिसिंह (दूसरे) का बिगाड़ हो जाने पर रायसिंह महाराणा का तरफ़दार हुआ और उज्जैन की लड़ाई में मरहटी सेना से लड़कर मारा गया।

रायसिंह का उत्तराधिकारी हंमीरसिंह हुआ। उसने महापुरुषों से युद्ध कर गुमानभारती को मार डाला और उसका खांडा छीन लिया, जो अब तक बनेड़े में मौजूद है और दशहरे के दिन उसकी पूजा होती है।

हंमीरसिंह के पीछे भीमसिंह (दूसरा), उदयसिंह और संग्रामसिंह क्रमशः बनेड़े के स्वामी हुए।

महाराणा सरूपसिंह के समय राजा संग्रामसिंह के निस्सन्तान मरने पर बनेड़ावालों ने महाराणा की अनुमति के बिना ही गोविन्दसिंह को राजा बना दिया। इसपर महाराणा ने बनेड़े पर फ़ौज भेजे जाने की तजवीज़ की। यह खबर पाकर गोविन्दसिंह महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया और उसने यह इक़रार लिख दिया कि भविष्य में बिना महाराणा की अनुमति के बनेड़े की गद्दीनशीनी नाजायज़ समझी जायगी।

गोविन्दसिंह के पीछे उसका पुत्र अक्षयसिंह बनेड़े का स्वामी हुआ। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अमरसिंह हुआ जो बनेड़े का वर्तमान राजा है।

शाहपुरा[1]

शाहपुरे के स्वामी महाराणा अमरसिंह के द्वितीय पुत्र सूरजमल के वंशज हैं और 'राजाधिराज' उनकी उपाधि है।

सूरजमल[2] के दो पुत्र सुजानसिंह और वीरमदेव थे। बादशाह शाहजहां

---

(१) जैसे जयपुर राज्य के ठिकाने खेतड़ी का संबन्ध कोटपूतली परगने के लिये, जो सरकार अंग्रेज़ी से मिला है, सरकार अंग्रेज़ी से और खेतड़ी आदि की जागीर के लिये राज्य जयपुर से है, वैसे ही ठिकाने शाहपुरे का संबन्ध परगने फूलिया के लिये सरकार अंग्रेज़ी और परगने काछोला के लिये महाराणा से है। फूलिया परगने के लिये शाहपुरा-वाले सालाना खिराज़ के रु० १००००) सरकार अंग्रेज़ी को देते हैं और परगने काछोला के लिये अन्य सरदारों के समान महाराणा उदयपुर की नौकरी करते और उन्हें खिराज़ देते हैं।

फूलिया परगने के लिये शाहपुरे का संबन्ध पहले अजमेर ज़िले के इस्तमरारदारों की भांई अजमेर के कमिश्नर से था, परन्तु ई० स० १८६६ से उसका संबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट हाड़ोती और टोंक से है।

(२) वंशक्रम—(१) सूरजमल। (२) सुजानसिंह। (३) हिम्मतसिंह। (४)

के राज्य के प्रारम्भ में सुजानसिंह मेवाड़ की सेवा छोड़कर बादशाही सेवा में चला गया तो बादशाह ने फूलिये[1] का परगना मेवाड़ से अलग कर ८०० ज़ात और ३०० सवार के मन्सब के साथ उसे जागीर में दिया। वि० सं० १७०० (ई० स० १६४३) में उसका मन्सब १००० ज़ात और ५०० सवार तक बढ़ा। वि० सं० १७०२ (ई० स० १६४५) में १५०० ज़ात और ७०० सवार का मन्सब पाकर वह शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ कंदहार की चढ़ाई में गया। वि० सं० १७०८ (ई० स० १६५१) में उसका मन्सब २००० ज़ात और ८०० सवार हुआ और दूसरी बार कंदहार की चढ़ाई में गया। वि० सं० १७११ (ई० स० १६५४) में बादशाह शाहजहां ने चित्तोड़ के किले की नई की हुई मरम्मत को गिराने के लिये सादुल्लाख़ां को भेजा, उस समय सुजानसिंह भी उसके साथ था, जिसका बदला लेने के लिये संवत् १७१५ (ई० स० १६५८) में महाराणा राजसिंह ने शाहपुरे पर चढ़ाई कर २२००० रु० दंड के लिये और सुजानसिंह के भाई वीरमदेव का कस्बा जला दिया। वि० सं० १७१३ (ई० स० १६५६) में औरंगज़ेब की मदद के वास्ते सुजानसिंह शाहज़ादे मुअज्ज़म के साथ दक्षिण में भेजा गया। बादशाह शाहजहां के बीमार होने पर जब शाहज़ादे दाराशिकोह ने दक्षिण के सब शाही मन्सबदारों को दिल्ली चले आने की आज्ञा दी उस समय वह भी बादशाह के पास उपस्थित हो गया। फिर वह जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के साथ मालवे में भेजा गया, जहां धर्मातपुर (फतेहाबाद) की लड़ाई में शाहज़ादे औरंगज़ेब के तोपखाने पर उसने बड़ी वीरता के साथ आक्रमण किया और अपने पांच पुत्रों सहित वह काम आया[2]।

दौलतसिंह। (५) राजा भारतसिंह। (६) उम्मेदसिंह। (७) रणसिंह। (८) भीमसिंह। (९) राजाधिराज अमरसिंह। (१०) माधोसिंह। (११) जगतसिंह। (१२) लक्ष्मणसिंह। (१३) नाहरसिंह।

(१) सुजानसिंह ने बादशाह शाहजहां को प्रसन्न करने के लिये अपने अधीन के परगने फूलिया का नाम 'शाहपुरा' रक्खा और बादशाह के नाम से शाहपुरा नाम का कस्बा आबाद किया जो उक्त ठिकाने का मुख्य स्थान है।

(२) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑफ़ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार' (पृष्ठ ११) में सूरजमल को बादशाह शाहजहां-द्वारा 'राजा' का ख़िताब मिलना

सुजानसिंह का भाई वीरमदेव भी महाराणा की नौकरी छोड़कर वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४७) में बादशाह शाहजहां के पास चला गया, जिसने उसे ८०० ज़ात और ४०० सवार का मन्सब दिया। कन्दहार आदि देशों पर शाही सेना की चढ़ाइयां हुईं, जिनमें उसने बड़ी बहादुरी दिखाई। उसका मन्सब बढ़ते बढ़ते ३००० ज़ात तथा १००० सवार तक पहुंच गया। एक समय बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे १०००० रु० के रत्न प्रदान किये। फिर वह शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ दक्षिण में भेजा गया, परन्तु बादशाह के बीमार होने पर वापस बुला लिया गया। समूगढ़ की लड़ाई में वह दाराशिकोह की हरावल सेना का अफ़सर हुआ, परन्तु दारा के हार जाने पर औरंगज़ेब का तरफ़दार हो गया। शाहज़ादे शुजा तथा दारा के साथ औरंगज़ेब की जो लड़ाइयां हुईं उनमें वह खूब लड़ा। इसके बाद वह जयपुर के कुंवर रामसिंह के साथ आसाम भेजा गया। आसाम से लौटने पर वह सफ़शिकनखां के साथ मथुरा में तैनात हुआ और वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) के आसपास उसका देहान्त हुआ।

सुजानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र फ़तहसिंह भी छोटे शाही मन्सबदारों में था। धर्मातपुर की लड़ाई में वह अपने पिता के साथ रहकर लड़ता हुआ काम आया, जिससे उसका बालक पुत्र हिम्मतसिंह सुजानसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु क़रीब छः वर्ष बाद सुजानसिंह का चौथा पुत्र दौलतसिंह शाहपुरे का स्वामी बन बैठा। फ़तहसिंह के वंशज गांगावास और बरसलियावास में विद्यमान हैं।

बादशाह औरंगज़ेब ने महाराणा राजसिंह पर चढ़ाई की उस समय दौलतसिंह बादशाही फ़ौज में शामिल था। दौलतसिंह का उत्तराधिकारी भारतसिंह हुआ। वि० सं० १७६८ वैशाख सुदि ७ शनिवार (ई० स० १७११ ता० १४ अप्रेल) को बान्दनवाड़ के पास महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) और मेवाती रणबाजखां के बीच लड़ाई हुई जिसमें भारतसिंह महाराणा की सेवा[1] में रहकर लड़ा था।

लिखा है, जो भ्रम ही है। म-आ-सिरुल-उमरा तथा अन्य फ़ारसी तवारीखों में सूरजमल को कहीं 'राजा' नहीं लिखा, उसको तो केवल 'सिसोदिया' लिखा है। राजा की उपाधि तो पहले पहल भारतसिंह को मिली थी (कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १२७५)

(१) औरंगज़ेब के मरने के बाद फूलिये का इलाक़ा मेवाड़ में मिला लिया गया

भारतसिंह को उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने क़ैद किया और वह क़ैद ही में मरा[1]।

भारतसिंह का उत्तराधिकारी उम्मेदसिंह हुआ। वह फूलिये का परगना बादशाह की तरफ़ से मिला हुआ समझकर महाराणा की आज्ञा की उपेक्षा करने लगा। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के दबाने पर वह शांत हो गया, परन्तु उक्त महाराणा की मृत्यु के समाचार सुनकर उसने फिर सिर उठाया और अपने आसपास के मेवाड़ के सरदारों से छेड़छाड़ करने लगा तथा अमरगढ़ के रावत दलेलसिंह को दबाना चाहा, परन्तु उसकी वीरता के आगे उस(उम्मेदसिंह)का कुछ बस न चला, तो एक दिन दावत में बुलाकर उसने उसको धोके से मार डाला। इसपर महाराणा ने उसको उदयपुर बुलाया, परन्तु उसके हाज़िर न होने के कारण उस(महाराणा)ने शाहपुरे पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। इसकी ख़बर पाने पर बंगूं के रावत देवीसिंह के समझाने से वह उदयपुर जाकर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) की सेवा में उपस्थित हो गया। महाराणा ने एक लाख रुपये तथा फ़ौज ख़र्च लेकर उसका अपराध क्षमा किया और उसकी जागीर के पांच गांव दलेलसिंह के पुत्र को 'मूंडकटी' में दिलवाये। फिर वह फूलिया परगने पर अपना स्वतन्त्र अधिकार बतलाने लगा और वि० सं० १७६४ (ई० स० १७३७) में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के साथ बादशाह मुहम्मदशाह की सेवा में उपस्थित होकर फूलिये को मेवाड़ से फिर स्वतन्त्र कराने का उद्योग करने लगा। इसपर महाराणा ने बादशाह के पास अपना वकील भेजकर उक्त परगने को अपने नाम लिखवा लिया। वि० सं० १७६८ (ई० स० १७४१) में गगवाणा गांव के पास जयपुर के महाराजा जयसिंह और नागौर के महाराजा बख़्तसिंह के बीच लड़ाई हुई उस समय उम्मेदसिंह महाराज जयसिंह की सेना में था। इस लड़ाई में उस (उम्मेदसिंह) के दो भाई शेरसिंह और कुशलसिंह मारे गये[2]। महाराजा

था, जो मरहटों के आख़िरी वक़्त में मेवाड़ से फिर अलग हुआ (वीरविनोद भाग १, पृष्ठ १४१), इसीसे भारतसिंह महाराणा की सेवा में रहता था।

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १८७८ और २१८२।

(२) वही; संख्या २१६७।

बख़्तसिंह के भागने पर उस (उम्मेदसिंह) ने उसका बहुतसा सामान लूटकर महाराजा जयसिंह के नज़र किया।

वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में जब महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाने के लिये मल्हारराव होलकर की सहायता लेकर जयपुर पर चढ़ाई की उस समय वह (उम्मेदसिंह) महाराणा की सेना में था।

जब महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) को राज्यच्युत कर बागोर के महाराज नाथसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बिठाने का प्रपंच रचा गया, उस समय उम्मेदसिंह आदि विरोधियों ने मेवाड़ के गांव लूटना शुरू किया, परन्तु उसमें उनको सफलता न हुई। महाराणा राजसिंह (दूसरे) को बालक देखकर उम्मेदसिंह ने फिर सिर उठाया और राजा सरदारसिंह से बनेड़ा छीन लिया, जिससे सरदारसिंह महाराणा के पास उदयपुर चला गया और वहीं उसका देहान्त हुआ। फिर महाराणा ने सेना भेजी और उम्मेदसिंह से बनेड़ा छुड़ाकर सरदारसिंह के पुत्र रायसिंह का उसपर अधिकार करा दिया।

उम्मेदसिंह ने अपने छोटे बेटे ज़ालिमसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने के उद्योग में अपने ज्येष्ठ पुत्र उदोतसिंह को ज़हर देकर मार डाला और उस (उदोतसिंह) के बेटे रणसिंह को मारने के वास्ते एक सिपाही भेजा, जिसने उसपर तलवार का वार किया, जो उसके मुंह पर ही लगा। इतने में उस (रणसिंह) के १४ वर्ष के पुत्र भीमसिंह ने अपनी तलवार उठाई और सिपाही को मार डाला। इससे उम्मेदसिंह का ज़ालिमसिंह को शाहपुरे का मालिक बनाने का इरादा पूरा न होने पाया[1]। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के बुरे बर्ताव

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १८७६

ऐसी प्रसिद्धि है कि उम्मेदसिंह ने रणसिंह के वंश का नाश कर ज़ालिमसिंह को ही राजा बनाना ठान लिया था, परन्तु जब मेहडू चारण कृपाराम ने यह हाल सुना तो उसने जाकर उम्मेदसिंह को यह सोरठा सुनाया—

मिण चुण मोटोड़ाह, तैं आगे खाया घणा।
चेलक चीतोड़ाह, अब तो छोड़ उमेदसी॥

इस सोरठे का प्रभाव उसके चित्त पर ऐसा पड़ा कि उसने अपना वह दुष्ट विचार छोड़ दिया।

से अप्रसन्न होकर बहुत से उमराव उसके विरोधी हो गये, उस समय महाराणा ने उम्मेद्सिंह को अपने पक्ष में मिलाने के लिये उसको काछोले का परगना दिया, जिससे वह महाराणा का सहायक बनकर उदयपुर गया और उज्जैन की लड़ाई में माधवराव सिंधिया की सेना से वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसका उत्तराधिकारी उसका पौत्र (उद्दोतसिंह का पुत्र) रणसिंह हुआ। सात वर्ष शासन करने के पश्चात् उसका देहान्त होने पर राजा भीमसिंह और उसके पीछे उसका पुत्र अमरसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। महाराणा भीमसिंह के समय वि० सं० १८८२ (ई० स० १७२५) के माघ महीने में डाकुओं ने उदयपुर में डाका डाला और बहुतसा माल लूट लिया। उस समय वह (अमरसिंह) उदयपुर में था, इसलिये महाराणा ने उसे आज्ञा दी कि वह डाकुओं का पीछा कर उनसे माल ले आवे। महाराणा की आज्ञा पाते ही वह अपने राजपूतों सहित चढ़ा और गोगूंदे के पास डाकुओं को जा दबाया। कितने एक डाकू लड़ते हुए मारे गये और बाक़ी को गिरफ़्तार कर लूटे हुए माल सहित वह उदयपुर ले गया। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको 'राजाधिराज' की पदवी दी, जो अब तक उसके वंशजों में चली आती है।

वि० सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में उसका उदयपुर में ही देहान्त होने पर उसका पुत्र माधोसिंह शाहपुरे का स्वामी हुआ, परन्तु अमरसिंह का देहान्त होने पर फूलिया ज़िले पर सरकार अंग्रेज़ी की ज़ब्ती आ गई, जिसका महाराणा जवानसिंह को बहुत रंज हुआ, क्योंकि वह (अमरसिंह) महाराणा का फ़र्माबरदार सेवक था। इसलिये महाराणा ने वि० सं० १८८८ माघ सुदि ४ (ई० स० १८३२ ता० ५ फरवरी) को अजमेर में गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेन्टिङ्क से मुलाक़ात करते समय फूलिये पर की ज़ब्ती उठाने का आग्रह किया, जो स्वीकार हुआ और फूलिये पर से सरकारी ज़ब्ती उठ गई।

वि० सं० १९०२ (ई० स० १८४५) में माधोसिंह की मृत्यु होने पर जगत्सिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। वि० सं० १९१० (ई० स० १८५३) में उस (जगत्सिंह) के निस्सन्तान मरने पर कनेछण गांव से लक्ष्मणसिंह गोद गया। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) के सिपाही-विद्रोह के समय नीमच की सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जला दी और ख़ज़ाना लूट लिया। उदयपुर के

पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शावर्स को यह सूचना मिलते ही वह महाराणा की सेना के साथ नीमच पहुंचा और बाग़ियों का पीछा करता हुआ चित्तोड़, गंगराड़ और सांगानेर (मेवाड़ का) पहुंचा, जहां हम्मीरगढ़ तथा महुआ के स्वामिभक्त सरदार अपने सवारों सहित उक्त कप्तान से जा मिले, परन्तु जब सांगानेर से कूचकर वह शाहपुरे पहुंचा, जहां बाग़ी ठहरे हुए थे, तो वहां के स्वामी (लक्ष्मणसिंह) ने न तो क़िले के दरवाज़े खोले, न उक्त कप्तान की पेशवाई की और न रसद आदि की सहायता दी[1]।

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६९) में लक्ष्मणसिंह का निस्सन्तान देहान्त होने पर धनोप के ठाकुर बलवन्तसिंह का पुत्र नाहरसिंह शाहपुरे का राजाधिराज बनाया गया, जो इस समय विद्यमान है।

राजाधिराज नाहरसिंह प्रबन्धकुशल, विद्यानुरागी, बहुश्रुत, मिलनसार, सादा मिजाज़ और नवीन विचार का सरदार है। इसके समय में शाहपुरे की बहुत कुछ उन्नति हुई। सरकार अंग्रेज़ी ने इसकी योग्यता की क़द्र कर ई० स० १९०३ में दिल्ली दरबार के अवसर पर इसे के० सी० आई० ई० का ख़िताब प्रदान किया। इसने इङ्गलैंड की यात्रा कर वहां का अनुभव भी प्राप्त किया है। अंग्रेज़ी सरकार ने पुनः इसकी योग्यता की क़द्र कर वंशपरंपरागत ९ तोपों की सलामी का सम्मान भी इसे दिया है।

यह महद्राजसभा का मेम्बर भी रहा। महाराणा फ़तहसिंह के समय इसने अपने को स्वतन्त्र बतलाकर मेवाड़ की नौकरी में जाना बन्द कर दिया, परन्तु अन्त में सरकार अंग्रेज़ी ने यह फ़ैसला दिया कि हर दूसरे साल राजाधिराज एक महीने के लिये महाराणा की सेवा में उदयपुर हाज़िर हुआ करे, पहले जो क़ुसूर किया उसके बाबत एक लाख रुपया जुर्माना महाराणा को दे और पहले के नियमानुसार जमीयत हरसाल भेजता रहे।

---

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर आफ़ दी इंडियन म्युटिनी; पृष्ठ ३९-४०।

द्वितीय श्रेणी के सरदार

हंमीरगढ़

हंमीरगढ़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के कुंवर वीरमदेव[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है। हंमीरगढ़ के सिवा ख़ैराबाद, महुआ, सनवाड़ आदि और कई द्वितीय श्रेणी के सरदार वीरमदेव के ही वंशधर हैं।

वीरमदेव का उत्तराधिकारी भोज हुआ, जिसे घोसुंडे और अठाणे की जागीर मिली और उस (भोज) के छोटे पुत्र रघुनाथसिंह को लांगछ का पट्टा दिया गया। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) और सरदारों के बीच बिगाड़ हो जाने पर रघुनाथसिंह के प्रपौत्र धीरतसिंह (धीरजसिंह) ने महाराणा का तरफ़दार होकर माधवराव सिंधिया की सेना तथा महापुरुषों से युद्ध किया। उसकी इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उसे २५००० रु० की बाकरोल (हंमीरगढ़[2]) की जागीर दी।

धीरतसिंह सलूंबर के रावत भीमसिंह का हिमायती और ख़ास सलाहकार था। महाराणा भीमसिंह के समय प्रधान सोमचन्द और भींडर के महाराज मोहकमसिंह ने मरहटों से मेवाड़ को खाली कराने के लिये चूंडावतों की सहायता आवश्यक समझकर जब सलूंबर से रावत भीमसिंह को बुलवाया तब वह इस भय से कि कहीं शक्तावत हमें मरवा न डालें धीरतसिंह तथा आमेट के रावत प्रतापसिंह, कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह आदि कई चूंडावत सरदारों को साथ लेकर उदयपुर गया। फिर महाराणा की अनुमति से झाला ज़ालिमसिंह तथा सिंधिया के सेनापति आंबाजी इंगलिया ने हंमीरगढ़ पर चढ़ाई की। छः सप्ताह तक बड़ी बहादुरी के साथ दुश्मनों का सामना करने के बाद धीरत-

(१) वंशक्रम—(१) वीरमदेव। (२) भोज। (३) रघुनाथसिंह। (४) देवीसिंह। (५) उम्मेदसिंह। (६) धीरतसिंह (धीरजसिंह)। (७) वीरमदेव (दूसरा)। (८) शार्दूलसिंह। (९) नाहरसिंह। (१०) मदनसिंह।

(२) महाराणा हंमीरसिंह (दूसरे) की आज्ञा से बाकरोल का नाम हंमीरगढ़ रखा गया।

सिंह रावत भीमसिंह के पास चित्तोड़ चला गया और उसकी जागीर तथा क़िले पर मरहटों ने अधिकार कर लिया। लकवा के शेणवियों तथा आंबाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपंत के बीच जो लड़ाइयां हुईं उनमें धीरतसिंह शेणवियों का सहायक रहा और हंमीरगढ़ में शेणवियों से गणेशपंत के घिर जाने पर वह (धीरतसिंह) तथा कई चूंडावत सरदार १५००० सैनिक साथ लेकर शेणवियों की सहायता के लिये वहां जा पहुंचे। गणेशपंत ने बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं का सामना किया। उसने क़िले से बाहर निकलकर उनपर कई आक्रमण किये, जिनमें से एक में धीरतसिंह के दो पुत्र अभयसिंह और भवानीसिंह मारे गये।

वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१५) में धीरतसिंह के मर जाने पर उसका उत्तराधिकारी उसका पौत्र वीरमदेव (दूसरा) हुआ, जिसने पुत्र के अभाव में अपने जीते जी ही महुआ के कुंवर शार्दूलसिंह को गोद लिया। शार्दूलसिंह का पौत्र मदनसिंह हंमीरगढ़ का वर्तमान सरदार है।

चावंड

चावंड के सरदार सलूंबर के रावत कुबेरसिंह[1] के पांचवें पुत्र अभयसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में अभयसिंह के पुत्र सरदारसिंह को पहले नठारे की, फिर भदेसर और अन्त में चावंड की जागीर मिली। वि० सं० १८४६ (ई० स० १७८९) में सरदारसिंह तथा कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह दोनों ने मिलकर सोमचन्द गांधी को, जो शक्तावतों का तरफ़दार था, धोखे से मार डाला। तनख़्वाह न मिलने के कारण सिंधी सिपाहियों ने महाराणा के महलों में धरणा दिया उस समय सरदारसिंह ने उनसे कहा कि जब तक तुम्हारी तनख़्वाह न चुकाई जायगी तब तक मैं तुम्हारी हवालात में रहूंगा।

---

(१) वंशक्रम—(१) अभयसिंह। (२) सरदारसिंह। (३) रूपसिंह रावत। (४) माधोसिंह। (५) सौभाग्यसिंह। (६) गुमानसिंह। (७) मुकुन्दसिंह। (८) खुमाणसिंह।

इसपर उसे अपनी सुपुर्दगी में लेकर सिपाहियों ने धरणा तो उठा लिया, पर सोमचन्द के भाई सतीदास के इशारा करने से उसपर सख्तियां होने लगीं। फिर सतीदास तथा उसके भतीजे जयचन्द ने पठानों की चढ़ी हुई तनख्वाह चुकाकर सरदारसिंह को अपनी हिफाज़त में ले लिया और उसे आहाड़ की नदी के किनारे लेजाकर मार डाला। इसके पीछे गांधियों का प्रभाव कम हो जाने पर ठाकुर अजीतसिंह, रावत जवानसिंह और दूलहसिंह ने महाराणा की आज्ञा से साह सतीदास को पहले कुछ दिनों तक महलों में क़ैद रखा, फिर रावत जवानसिंह और दूलहसिंह वहां से उसे निकालकर दिल्ली दरवाज़े के बाहिर आहाड़ ग्राम की नदी पर ले गये और उन्होंने वहां उसका सिर काटकर सरदारसिंह के बध का बदला लिया। यह खबर सुनकर जयचन्द अपने प्राण बचाने के लिये शहर से भागा, परन्तु चूंडावतों ने नाई गांव के पास पकड़कर उसे भी मार डाला।

सरदारसिंह के पीछे रूपसिंह, माधोसिंह, सौभाग्यसिंह, गुमानसिंह और मुकुन्दसिंह क्रमशः चावंड के स्वामी हुए। मुकुन्दसिंह के पुत्र न था, जिससे भैंसरोड़गढ़ से रावत इंद्रसिंह का दूसरा पुत्र खुमाणसिंह गोद गया, जो इस समय चावंड से सलूंबर गोद गया है।

भदेसर

भदेसर के सरदार सलूंबर के रावत भीमसिंह के दूसरे पुत्र भैरवसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा भीमसिंह ने भैरवसिंह को भदेसर का ठिकाना दिया। वह अधिकतर सलूंबर में ही रहा करता था। वि० सं० १८७० (ई० स० १८१३) में सिंधियों की फ़ौज मेवाड़ की तरफ़ आई तो भैरवसिंह ने बसी (सलूंबर से दो कोस) के पास उससे लड़ाई कर उसे भगा दी, परन्तु वह वहीं काम आ गया। उसके पुत्र न होने से चावंड के रावत सरदारसिंह के दूसरे पुत्र हंमीर-

(१) वंशक्रम—(१) भैरवसिंह। (२) हंमीरसिंह। (३) उम्मेदसिंह। (४) भूपालसिंह। (५) तख्तसिंह।

सिंह को, जिसको ठिकाना रायपुर (साहाड़ां के पास) मिला था, गोद लिया। उसके वक्त में अमीरखां ने भदेसर छीनकर वहां अपना थाना बिठा दिया और ठिकाने को नींबाहेड़े में मिला लिया। हंमीरसिंह ने रायपुर से चढ़कर भदेसर से मुसलमानों का थाना उठा दिया और उसपर फिर अपना अधिकार जमा लिया। हंमीरसिंह का देहान्त वि० सं० १६१२ (ई० स० १८५५) में हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र उम्मेदसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण चावंड के रावत सौभाग्यसिंह का पुत्र भूपालसिंह वि० सं० १६१८ (ई० स० १८६१) में गोद लिया गया। उसने भदेसर में महल आदि बनवाये। उसके तीन पुत्र मानसिंह, तेजसिंह और इंद्रसिंह हुए। तेजसिंह को सलूंबर के रावत जोधसिंह ने गोद लिया, परन्तु उसका देहान्त जोधसिंह की विद्यमानता में ही हो जाने से उसका बड़ा भाई मानसिंह[1] सलूंबर गोद गया। उस(भूपालसिंह)के तीसरे पुत्र इंद्रसिंह को भैंसरोड़गढ़ के रावत प्रतापसिंह ने अपनी विद्यमानता में गोद लिया। इस तरह भूपालसिंह के पुत्र न रहने के कारण उसने चावंड से अपने भतीजे तख़्तसिंह को गोद लिया, जो भदेसर का वर्तमान रावत है।

बोहेड़ा

बोहेड़े के सरदार भींडर के महाराज मोहकमसिंह (दूसरे) के दूसरे पुत्र फ़तहसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा भीमसिंह के समय फ़तहसिंह[2] को बोहेड़े की जागीर और 'रावत' का खिताब दिया गया। उसके निस्सन्तान मर जाने पर सकतपुरे से बख़्तावरसिंह गोद गया। उस(फ़तहसिंह)के बड़े भाई भींडर के महाराज ज़ोरावरसिंह के भी पुत्र न था, जिससे उसके देहान्त होने पर उसका बहुत दूर का रिश्तेदार हंमीरसिंह, जो वास्तविक हक़दार न था, पानसल से गोद गया।

(१) मानसिंह का देहान्त भी जोधसिंह की विद्यमानता में हो गया, जिससे बंबोरे से ओनाड़सिंह सलूंबर गोद गया।

(२) वंशक्रम—(१) फ़तहसिंह। (२) बख़्तावरसिंह। (३) अदोतसिंह। (४) रत्नसिंह। (५) दौलतसिंह। (६) नाहरसिंह।

इसपर फतहसिंह का दत्तक होने के कारण बख़्तावरसिंह ने महाराणा जवान-सिंह के समय भींडर के लिए दावा किया और वह कई लड़ाइयां भी लड़ा, पर जब उनसे कोई फल न निकला तब वह भींडर के गांवों में लूटमार करने लगा। इसपर उसकी जागीर ज़ब्त करली गई, पर कुछ दिनों पीछे महाराणा की सेवा में उपस्थित हो जाने पर उसे लौटा दी गई।

बख़्तावरसिंह के पीछे उसका छोटा भाई अदोतसिंह, जिसे उस (बख़्तावर-सिंह) ने अपनी जीवित दशा में ही गोद लिया था, बोहेड़े का मालिक हुआ। अदोतसिंह के समय भींडर के महाराज हंमीरसिंह ने बोहेड़े पर चढ़ाई की, पर अदोतसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ उसका सामना किया, जिससे वह (हंमीरसिंह) उसकी जागीरपर अधिकार न कर सका। महाराणा शंभुसिंह के राजत्वकाल में हंमीरसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र शक्तिसिंह को उक्त जागीर दिलाये जाने का दावा किया, जिसपर रिजेंसी कौंसिल ने शक्तिसिंह का हक़ स्वीकार करते हुए यह फ़ैसला दिया कि वह (शक्तिसिंह) अदोतसिंह का उत्तराधिकारी समझा जाय और कुंवरपदे में गुज़ारे के लिए उसे बोहेड़े की जागीर में से ३००० रु० वार्षिक आय के दो गांव-देवाखेड़ा और बांसड़ा-दिये जायें। इसके थोड़े ही दिनों पीछे शक्तिसिंह का देहान्त हो गया। तब महाराज हंमीरसिंह ने महाराणा शंभुसिंह की सेवा में दावा पेश किया कि मेरा तीसरा पुत्र रत्नसिंह अदोतसिंह का दत्तक समझा जाय। महाराणा ने उसका दावा स्वीकार कर लिया, पर अदोतसिंह ने महाराणा की अनुमति के बिना ही अपने भतीजे केसरीसिंह को गोद ले लिया। उसकी इस कार्रवाई से अप्रसन्न होकर महाराणा ने उसकी जागीर के दो गांव-बांसड़ा और देवाखेड़ा-ज़ब्त कर लिये। इसपर अदोतसिंह ने महाराणा की सेवा में अर्ज़ कराई कि आप तो हमारे स्वामी हैं दो गांव तो क्या बोहेड़े की सारी जागीर भी छीन लें तो भी मुझे कोई उज्र नहीं, परन्तु भींडर-वालों को तो एक बीघा भूमि देना मुझे मंजूर नहीं, मेरे ठिकाने का मालिक तो केसरीसिंह ही होगा।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८४) में अदोतसिंह का देहान्त हो जाने पर महाराज हंमीरसिंह के पुत्र मदनसिंह ने अपने भाई रत्नसिंह को बोहेड़े की जागीर दिलाये जाने की प्रार्थना महाराणा सज्जनसिंह से की। इसपर केसरीसिंह

तलब किया गया, परन्तु जब वह हाज़िर न हुआ तब महाराणा की आज्ञा से राय मेहता पन्नालाल के छोटे भाई लक्ष्मीलाल की अध्यक्षता में उदयपुर से सेना भेजी गई, जिसका बड़ी बहादुरी के साथ सामना करने के बाद केसरीसिंह और उसके साथी बोहेड़े से भाग निकले, परन्तु राज्य की सेना ने उनका पीछा कर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। इसके बाद महाराणा ने फ़ौज ख़र्च की वसूली के लिए बोहेड़े का मंगरवाड़ गांव तो अपने अधिकार में रखा और रावत रत्नसिंह को बोहेड़े का स्वामी बनाया।

रत्नसिंह स्वामिभक्त और प्रबन्धकुशल सरदार था। उसने उजड़े हुए ठिकाने को फिर से आबाद किया और सीमासम्बन्धी झगड़े मिटाकर उसका सुप्रबन्ध किया।

वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र दौलतसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

बुरी सोहबत में पड़ जाने से दौलतसिंह को शराब पीने की लत पड़ गई, जिससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वि० सं० १९५४ (ई० स० १८९७) में वह इस संसार से चल बसा। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई नाहरसिंह हुआ, जो इस समय बोहेड़े का स्वामी है।

भूंणास

भूंणास के सरदार महाराणा राजसिंह के आठवें पुत्र बहादुरसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' (बावा) उनकी उपाधि है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) से बिगाड़ हो जाने पर मेवाड़ के कितने एक सरदार माधवराव सिंधिया को उदयपुर पर चढ़ा लाये। उस समय बहादुरसिंह का प्रपौत्र शिवसिंह महाराणा का तरफ़दार होकर मरहटों से लड़ा। उसका छठा वंशधर एकलिंगसिंह भूंणास का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) बहादुरसिंह। (२) अभयसिंह। (३) देवीसिंह। (४) शिवसिंह। (५) केसरीसिंह। (६) नाहरसिंह। (७) बाघसिंह। (८) किशनसिंह। (९) चतुरसिंह। (१०) एकलिंगसिंह।

पीपल्या

पीपल्या के सरदार महाराणा उदयसिंह (द्वितीय) के पुत्र महाराज शक्तिसिंह के १३ वें पुत्र राजसिंह के दूसरे बेटे कल्याणसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय इस ठिकाने पर हाथीराम चंद्रावत का अधिकार था। वि० सं० १६५९ (ई० स० १६०२) में हाथीराम ने महाराणा के एक ऊंट को, जिसपर उस (महाराणा) के कपड़े लदे हुए थे और जो पाटन से पीपल्या होता हुआ उदयपुर जा रहा था, पकड़ लिया। इसपर महाराणा की आज्ञा से कल्याणसिंह[1] ने पीपल्या जाकर हाथीराम को गिरफ़्तार कर लिया और उसे अपने साथ उदयपुर ले गया। इस सेवा के उपलक्ष्य में कल्याणसिंह को महाराणा की ओर से यह ठिकाना मिला। इसके पहले वह सतखंधे का स्वामी था।

महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के राजत्व-काल में रामपुरे के राव गोपालसिंह के पुत्र रत्नसिंह ने रामपुरे पर अधिकार कर लिया। इसपर गोपालसिंह ने बादशाह औरंगज़ेब से उसकी शिकायत की, परन्तु उस (रत्न-सिंह) ने अनिष्ट से बचने तथा बादशाह को प्रसन्न करने के लिये इस्लाम-धर्म स्वीकार कर अपना नाम इस्लामख़ां और रामपुरे का इस्लामाबाद रखा, जिससे बादशाह ने उसी को रामपुरे का ठिकाना दे दिया। तब गोपालसिंह महाराणा के पास जाकर शाही इलाक़ों में लूटमार करने लगा। उसे इस काम में महाराणा का इशारा पाकर कल्याणसिंह के भाई कीता[2] के पुत्र उदयभान ने पूरी मदद दी।

---

(१) वंशक्रम—(१) कल्याणसिंह। (२) हरिसिंह। (३) हठीसिंह। (४) बाघसिंह। (५) जयसिंह। (६) केसरीसिंह। (७) भीमसिंह। (८) ज़ालिमसिंह। (९) गोकुलदास। (१०) हिम्मतसिंह (रावत)। (११) लक्ष्मणसिंह। (१२) किशन-सिंह। (१३) जीवनसिंह। (१४) भीमसिंह। (१५) सज्जनसिंह।

(२) कीता के दो पुत्र शूरसिंह और उदयभान थे। शूरसिंह के वंशज विनोते के स्वामी हैं और उदयभान को महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने मलकाखाजख्यां की जागीर दी थी।

कल्याणसिंह के पीछे हरिसिंह, हठीसिंह तथा बाघसिंह क्रमशः ठिकाने के मालिक हुए। महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के समय सतारे के कितने एक अधिकारी छत्रपति महाराज शाहू के विरोधी हो गये। तब छत्रपति की इच्छानुसार महाराणा ने रावत बाघसिंह को सतारे भेजा, जिसने उनके बीच मेल करा दिया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर राज्याभिषेक शक[1] ५२ (वि० सं० १७८३=ई० स० १७२६) में छत्रपति शाहू ने अपने सब हिन्दू तथा मुसलमान अधिकारियों के नाम आज्ञापत्र जारी कर बाघसिंह और उसके वंशजों की प्रतिष्ठा एवं मान-मर्य्यादा को बनाये रखने का आदेश करते हुए उसके सम्बन्ध में लिखा 'ये बड़े सत्पुरुष तथा मेरे कुल के हैं। इन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है। इन्हीं के प्रताप से भारत में हिन्दू-राज्य अब तक स्थिर है। मेरा आदेश न मानकर कोई हिन्दू इनकी मर्यादा को तोड़ने की दुश्चेष्टा करेगा तो उसके सात पूर्वज नरकगामी होंगे और यदि मुसलमान इनकी इज्ज़त बिगाड़ने की कोशिश करेगा तो उसे सूअर का मांस खाने का पाप लगेगा'।

बाघसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र जयसिंह हुआ, जिसको उक्त महाराणा ने अपना प्रतिनिधि बनाकर छत्रपति शाहू के पास भेजा। वह (शाहू) जयसिंह का भी उसके पिता की भांति बड़ा सम्मान करता और उसे 'काका' कहकर पुकारता था। वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में जयसिंह का देहान्त हो जाने पर उसका पुत्र केसरीसिंह पीपल्ये का स्वामी हुआ। वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में केसरीसिंह ने अपने गढ़ की मरम्मत कराई और इन्दौर के महाराज मल्हारराव के साथ भाई-चारे का सम्बन्ध स्थापित किया।

महाराणा अरिसिंह के समय माधवराव सिंधिया ने उदयपुर पर घेरा डाला और अन्त में सन्धि हुई उस समय जो रुपये उसको देने ठहरे उनमें से कई लाख रुपये सरदारों से वसूल करने की व्यवस्था हुई; तदनुसार पीपल्ये से ३५०००) रु० लेने की महाराणा ने आज्ञा दी, जिसका पालन न करने के कारण महाराणा ने उसकी जागीर ज़ब्त कर ली तो वह उदयपुर चला गया

(१) राज्याभिषेक संवत्, जिसको दक्षिणी लोग 'राज्याभिषेक शक' या 'राजशक' कहते हैं, प्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के दिन अर्थात् वि० सं० १७३१ ज्येष्ठ शुक्ला १३ से चला था। अब इसका प्रचार नहीं रहा।

और वहीं उसका देहान्त हुआ, जिसपर महाराणा ने उसके पुत्र भीमसिंह को पीपल्ये की जागीर पीछी देदी।

भीमसिंह के पौत्र गोकुलदास के समय मरहटों की सेना मेवाड़ में लूटमार करती हुई पीपल्या जा निकली और उस(गोकुलदास)से कहलाया कि या तो फ़ौजख़र्च दो या गढ़ खाली कर दो, परन्तु उसने इन दो बातों में से एक भी नहीं मानी। तब उक्त सेना ने उसके गढ़ पर घेरा डाल दिया और लड़ाई छिड़ गई जो एक महीने तक जारी रही। अन्त में मरहटों को गढ़ से घेरा उठाना पड़ा। इस युद्ध में उसके २० या २५ रिश्तेदार काम आये। महाराणा सरूपसिंह और उसके सरदारों के बीच अनबन हो गई उस समय गोकुलदास का पुत्र हिम्मतसिंह उस(महाराणा)का सहायक रहा। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे 'रावत' की उपाधि से सम्मानित किया। महाराणा का शरीरान्त हो जाने पर हिम्मतसिंह अपने पुत्र लक्ष्मणसिंह को ठिकाने का अधिकार सौंपकर वृन्दावन में जा रहा और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

वि० सं० १६२५ (ई० स० १८६८) में लक्ष्मणसिंह अपने भाइयों के हाथ से मारा गया और शेरसिंह का पुत्र किशनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। किशनसिंह का तीसरा वंशधर सज्जनसिंह पीपल्या का वर्तमान स्वामी है।

बेमाली

बेमाली के सरदार आमेट के स्वामी माधवसिंह के तीसरे पुत्र हरिसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

हरिसिंह[1] के पीछे ज़ोरावरसिंह, देवीसिंह, चतुर्भुज, नाथसिंह, भैरवसिंह और ज़ालिमसिंह क्रमशः बेमाली के स्वामी हुए।

महाराणा सरूपसिंह के समय आमेट के रावत पृथ्वीसिंह का वि० सं० १६१३ (ई० स० १८५७) में देहान्त हो जाने पर ज़ालिमसिंह ने, जो पृथ्वी-

---

(१) वंशक्रम—(१) हरिसिंह। (२) ज़ोरावरसिंह। (३) देवीसिंह। (४) चतुर्भुज। (५) नाथसिंह। (६) भैरवसिंह। (७) ज़ालिमसिंह। (८) लक्ष्मणसिंह। (९) शिवनाथसिंह। (१०) केसरीसिंह। (११) सोभागसिंह।

सिंह का दूर का रिश्तेदार था, अपने द्वितीय पुत्र अमरसिंह को ठिकाने का अधिकार दिलाना चाहा और तलवारबंदी के ४४००० तथा प्रधान की दस्तूरी के ४००० रु० देकर महाराणा की स्वीकृति प्राप्त कर ली। इसपर जीलोला के सरदार दुर्जनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चत्रसिंह ने, जो पृथ्वीसिंह का सब से नज़दीकी रिश्तेदार होने के कारण ठिकाने का वास्तविक हक़दार था, महाराणा के गुप्त परामर्श के अनुसार आमेट पर चढ़ाई कर अधिकार कर लिया। ज़ालिमसिंह से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें उस (ज़ालिमसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह मारा गया। आमेट का अधिकार रावत चत्रसिंह को दिलाने की महाराणा की गुप्त कार्यवाही का पता चल जाने पर अमरसिंह के तरफ़दार सरदारों ने खैरवाड़े के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान ब्रुक को लिखा कि अमरसिंह को आमेट का अधिकार न दिलाया जायगा तो मेवाड़ में भारी बखेड़ा खड़ा हो जायगा। अन्त में आमेट का स्वामी तो चत्रसिंह ही बनाया गया, पर महाराणा शंभुसिंह ने रावत अमरसिंह को आमेट तथा खालसे में से जागीर देकर मेजा का प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया।

ज़ालिमसिंह को महाराणा शंभुसिंह ने रावत का ख़िताब दिया। उसके पीछे लक्ष्मणसिंह और उसके बाद शिवनाथसिंह बेमाली का मालिक हुआ। शिवनाथसिंह के निस्सन्तान मरने से केसरीसिंह गोद गया। केसरीसिंह के पीछे सोभागसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जो विद्यमान है।

ताणा

ताणा के सरदार सादड़ी के स्वामी कीर्तिसिंह के दूसरे पुत्र नाथसिंह के वंशज हैं और 'राज' उनकी उपाधि है।

नाथसिंह[१] को महाराणा अमरसिंह के समय ताणा की जागीर और 'राज' का ख़िताब दिया गया। नाथसिंह का पांचवां वंशधर देवीसिंह महाराणा सज्जनसिंह के समय में इजलास खास एवं महद्राजसभा का सदस्य बनाया गया। उसका पौत्र रत्नसिंह ताणे का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) नाथसिंह। (२) गुलाबसिंह। (३) किशोरसिंह। (४) हम्मीरसिंह। (५) भैरवसिंह। (६) देवीसिंह। (७) अमरसिंह। (८) रत्नसिंह।

रामपुरा

रामपुरे के सरदार बदनोर के स्वामी जोधसिंह के पुत्र गिरधारीसिंह के वंशज हैं।

महाराणा सरूपसिंह के समय गिरधारीसिंह[1] को रामपुरे की जागीर दी गई। गिरधारीसिंह के पीछे संग्रामसिंह और उसके बाद गुलाबसिंह रामपुरे का स्वामी हुआ। गुलाबसिंह का पुत्र रामसिंह रामपुरे का वर्तमान सरदार है।

खैराबाद

खैराबाद के सरदार महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के तीसरे पुत्र वीरमदेव[2] के वंशज हैं और 'बाबा' उनकी उपाधि है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय वीरमदेव का प्रपौत्र संग्रामसिंह रणबाज़खां के साथ की लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़ा। जब महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठलाने के लिये चढ़ाई की और जामोली गांव में उसका ठहरना हुआ उस समय अवकाश देखकर उसने पास के देवली गांव को, जो पहले मेवाड़ का था, परन्तु सावर (अजमेर ज़िले में) के शक्तावत ठाकुर इन्द्रसिंह ने दबा लिया था, छुड़ाना चाहा। ठाकुर इन्द्रसिंह गांव देने को राज़ी हो गया, परन्तु उसका युवा पुत्र सालिमसिंह, जो विवाह कर लौटा ही था और विवाह के वस्त्राभूषण भी न उतरे थे, राज़ी न हुआ और शीघ्र ही अपने राजपूतों को एकत्र कर लड़ने को तैयार हो गया। महाराणा ने यह खबर सुनकर राणावत भारतसिंह (वीरमदेवोत) को तोपखाने के साथ कुछ सेना देकर उससे लड़ने के लिये भेजा। भारतसिंह ने सालिमसिंह

---

(१) वंशक्रम—(१) गिरधारीसिंह। (२) संग्रामसिंह। (३) गुलाबसिंह। (४) रामसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) वीरमदेव। (२) ईसरीदास। (३) सबलसिंह। (४) संग्रामसिंह। (५) भारतसिंह। (६) शक्तिसिंह। (७) मोहकमसिंह। (८) सालिमसिंह। (९) अजीतसिंह। (१०) लक्ष्मणसिंह। (११) किशोरसिंह। (१२) जोधसिंह। (१३) बाघसिंह।

को बहुत समझाया, परन्तु उसने एक न मानी, तब भारतसिंह ने गोलन्दाज़ी शुरू की। तीन दिन तक तोपों और बन्दूकों से सामना हुआ, चौथे दिन सालिमसिंह दरवाज़े खोलकर बाहर आया और बड़ी वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया और भारतसिंह ने देवली पर अधिकार कर लिया।

जब महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय माधवराव सिन्धिया ने उदयपुर पर घेरा डाला उस समय शक्तिसिंह (भारतसिंहोत) एकलिङ्गगढ़ से दक्षिण की ओर की ताराबुर्ज़ पर नियत होकर लड़ा और उक्त महाराणा की टोपल गांव के पास महापुरुषों के साथ की लड़ाई में भी वह महाराणा की सेना में रहकर बड़ी वीरता से लड़ा।

शक्तिसिंह का सातवां वंशधर बाघसिंह खैराबाद का वर्तमान स्वामी है।

महुवा

महुवा के सरदार खैराबाद के स्वामी बाबा संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र पृथ्वीसिंह के वंशज हैं और उनका खिताब 'बाबा' है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में मेवाड़ के अधिकांश सरदार राजद्रोही होकर उदयपुर पर माधवराव सिंधिया को चढ़ा लाये उस समय पृथ्वीसिंह[1] के पुत्र सूरतसिंह ने मरहटों से युद्ध किया और महापुरुषों से महाराणा की जो लड़ाइयां हुई उनमें भी वह लड़ा। उसका पांचवां वंशधर हंमीरसिंह महुवा का वर्तमान सरदार है।

लूणदा

लूणदा के सरदार सलूंबर के रावत किसनदास के दसवें पुत्र विट्ठलदास के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

विट्ठलदास के पौत्र दयालदास का पुत्र रणछोड़दास[2] को महाराणा

(१) वंशक्रम—(१) पृथ्वीसिंह। (२) सूरतसिंह। (३) केसरीसिंह। (४) बिशनसिंह। (५) शिवसिंह। (६) ग्यानसिंह। (७) हंमीरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) रणछोड़दास। (२) दौलतसिंह। (३) नाहरसिंह। (४) पृथ्वीसिंह। (५) शिवसिंह। (६) अजीतसिंह। (७) गुलाबसिंह। (८) जवानसिंह। (९) रणजीतसिंह।

अरिसिंह के समय लूणदा की जागीर दी गई। उसके दो पुत्र अजबसिंह और दौलतसिंह हुए। अजबसिंह को तो थाणे का ठिकाना मिला और दौलतसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। दौलतसिंह के पीछे नाहरसिंह जागीर का मालिक हुआ। रावत की उपाधि पहले पहल उसी ने प्राप्त की। उसका छठा वंशधर रणजीतसिंह लूणदा का वर्तमान स्वामी है।

थाणा

थाणे के सरदार लूणदा के स्वामी रणछोड़दास के ज्येष्ठ पुत्र अजबसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

अजबसिंह[1] के पीछे सिंहा, कुशलसिंह, कीर्तिसिंह और विजयसिंह क्रमशः ठिकाने के स्वामी हुए। विजयसिंह को 'रावत' की पदवी मिली। उसके ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह के बाल्यावस्था में ही मर जाने से उस (विजयसिंह) का उत्तराधिकारी सूरजमल हुआ। सूरजमल का प्रपौत्र खुमाणसिंह थाणे का वर्तमान सरदार है।

जरखाणा (धनेर्या)

जरखाणे के सरदार शिवरती के महाराज अर्जुनसिंह के दूसरे पुत्र बहादुरसिंह के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनकी उपाधि है।

बहादुरसिंह[2] के पीछे जवानसिंह, जसवंतसिंह और मदनसिंह क्रमशः जागीर के स्वामी हुए। मदनसिंह के निस्सन्तान मरने पर उसका भाई पृथ्वीसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

पृथ्वीसिंह के पुत्र मोड़सिंह के भी पुत्र न होने के कारण उसका उत्तराधिकारी उसका भाई उदयसिंह हुआ, जो इस समय विद्यमान है।

---

(१) वंशक्रम—(१) अजबसिंह। (२) सिंहा। (३) कुशलसिंह। (४) कीर्तिसिंह। (५) विजयसिंह। (६) सूरजमल। (७) गंभीरसिंह। (८) प्रतापसिंह। (९) खुमाणसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) बहादुरसिंह। (२) जवानसिंह। (३) जसवंतसिंह। (४) मदनसिंह। (५) पृथ्वीसिंह। (६) मोड़सिंह। (७) उदयसिंह।

केलवा

केलवे के सरदार मारवाड़ के राव सलखा के द्वितीय पुत्र जैतमाल के वंशज राठोड़ बीदा[1] के वंशधर हैं और ठाकुर कहलाते हैं।

वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में भीमल गांव में देवी के मन्दिर की पुजारिन का एक ज्योतिषी के इस कथन का समर्थन करने पर कि महाराणा रायमल का उत्तराधिकारी तो कुंवर संग्रामसिंह होगा, महाराणा के दो बड़े कुंवरों-पृथ्वीराज और जयमल-से संग्रामसिंह की लड़ाई हुई, जिसमें वह सख्त घायल होने पर वहां से भागता हुआ सेवंत्री गांव में पहुंचा। संयोगवश उस समय वहां बीदा सकुटुम्ब रूपनारायण के दर्शनार्थ गया हुआ था। उसने संग्रामसिंह को खून से तरबतर देखकर घोड़े से उतारा और उसके घावों पर पट्टियां बांधी। इसी अरसे में उस(संग्रामसिंह)का पीछा करता हुआ जयमल भी वहां पहुंच गया। उसने संग्रामसिंह को सुपुर्द कर देने के लिए बीदा से कहा, परन्तु शरणागत राजकुमार की रक्षा करना अपना धर्म समझकर उसे तो अपने घोड़े पर सवार कराकर गोड़वाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया और वह अपने छोटे भाई सीहा व अपने बेटों तथा बहुतसे राजपूतों सहित जयमल और उसके सैनिकों से लड़कर काम आया। उसके साथ उसकी धर्मपत्नी सती हुई, जिसका स्मारक रूपनारायण के मन्दिर के पास अबतक विद्यमान है। उस समय उस(बीदा)का एक पुत्र नेतसिंह, जो मारवाड़ में था, बचने पाया।

जब संग्रामसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ उस समय अपने लिए निस्वार्थ बुद्धि से सकुटुम्ब प्राण देनेवाले बीदा का उसको स्मरण आया और उसकी

(१) वंशक्रम—(१) बीदा। (२) नेतसिंह। (३) शंकरदास। (४) तेजमाल। (५) वीरभाण। (६) गोकुलदास। (७) सांवलदास। (८) किशनदास। (९) मोहकमसिंह। (१०) खुंमाणसिंह। (११) अनूपसिंह। (१२) माधवसिंह। (१३) बैरीसाल। (१४) धीरतसिंह। (१५) ओनाड़सिंह। (१६) मदनसिंह। (१७) रूपसिंह। (१८) दौलतसिंह।

बहुत कुछ प्रशंसा[1] कर उसके पुत्रों में से कोई जीवित हो तो उसका सम्मान कर बीदा के ऋण से मुक्त होने का विचार किया, परन्तु उस समय बीदा के पुत्र नेतसिंह का पता न लगने से बीदा के छोटे भाई सीहा के बेटे को बदनोर[2] की जागीर दी। अपने पिछले समय जब महाराणा को बीदा के पुत्र नेतसिंह के विद्यमान होने का पता लगा तब उसने आशिया चारण करमसी को उसे लाने के लिये भेजा, परन्तु उसके आने के पहले ही महाराणा का परलोकवास हो गया, जिससे महाराणा रत्नसिंह ने उसको बेमाली की जागीर दी। फिर बीदा की उक्त सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा उदयसिंह ने भी उसे बणोल की जागीर दी। नेतसिंह चित्तोड़ पर बादशाह अकबर की चढ़ाई के समय शाही सेना से लड़कर मारा गया और उसका पुत्र शंकरदास, उसके दो भाई केनदास और रामदास तथा उस (शंकरदास) का बेटा नरहरदास हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में काम आये।

शंकरदास का उत्तराधिकारी तेजमाल मुसलमानों के साथ की महाराणा प्रतापसिंह तथा महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। उस (तेजमाल) का पुत्र वीरभाण मांडलगढ़ की चढ़ाई में महाराणा राजसिंह के साथ रहकर मारा गया। उसके पीछे गोकुलदास और उस (गोकुलदास) के उपरान्त सांवलदास बणोल का स्वामी हुआ। मेवाड़ पर औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय जब शाही सेना ने राजनगर की ओर कूच किया तब महाराणा ने यह संदेह कर कि वह राजसमुद्र के बांध को तोड़ने जा रही है, कई सरदारों को उसकी रक्षा के लिये वहां भेजा, जिनमें केलवे की तरफ़ से ठाकुर सांवलदास का चाचा आनन्दसिंह भी था, परन्तु पीछे से महाराणा को जब यह मालुम हुआ कि बादशाह केवल मन्दिरों को तुड़वाता है तालाबों को नहीं तब उसने सरदारों

(१) सांच वचन अवसाण सुध नाहर ना नट्टे
जेतमाल कुल जनमिया मुख कह न पलट्टे।
जेमलरा दल जूझिया करवाळां कट्टे
सांगो भोगे चित्रकोट सर बीदा सट्टे ॥
(प्राचीन पद्य)

(२) अब उसके वंश में मांडल के पास बावड़ी गांव है।

को पत्र लिखकर वापस बुला लिया। पत्र में भूल से आनन्दसिंह का नाम लिखना रह गया, जिससे उसने वापस जाने से इन्कार कर दिया और वह वहीं रह गया। दूसरे दिन वह और उसके साथी शाही सेना से लड़कर सबके सब मारे गये। उसका स्मारक राजसमुद्र के बांध के पास अबतक विद्यमान है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय भोमट के भोमिये बाग़ी हो गये तो महाराणा ने किशनदास को उनपर भेजा। उनके साथ की लड़ाई में किशनदास के बहुतसे कुटुम्बी काम आये, परन्तु भोमिये महाराणा के अधीन हो गये। इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उस (किशनदास) को वि० सं० १७७१ (ई० स० १७१४) में बेमाली और बणोल के बदले देसूरी की बड़ी जागीर तथा उसके जो कुटुम्बी वहां मारे गये उनके पुत्रों को २७ गांव दिये, जो महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उनसे छूट गये, परन्तु अब तक वहां उनकी 'भोम' मौजूद है। फिर वि० सं० १७७९ (ई० स० १७२२) में उसे देसूरी के बदले केलवे का ठिकाना मिला।

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में माधवसिंह के लिये जयपुर की सेना के साथ की राजमहल के पास की लड़ाई में किशनदास के उत्तराधिकारी मोहकमसिंह और उसके चाचा चतरसिंह ने बड़ी वीरता बतलाई, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको आगरिया की जागीर देना चाहा, परन्तु उसी के अर्ज़ करने पर वह जागीर उसके चाचा (चतरसिंह) को दी गई, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है। मोहकमसिंह का नवां वंशधर दौलतसिंह केलवे का वर्तमान सरदार है।

बड़ी रूपाहेली

बड़ी रूपाहेली के सरदार बदनोर के स्वामी राव जयमल राठोड़ के प्रपौत्र श्यामलदास के तीसरे पुत्र साहबसिंह[1] के वंशज हैं और 'ठाकुर' कहलाते हैं।

(१) वंशक्रम—(१) साहबसिंह। (२) शिवसिंह। (३) अनूपसिंह। (४) गोपालसिंह। (५) सालिमसिंह। (६) सवाईसिंह। (७) बलवन्तसिंह। (८) चतुरसिंह।

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) की डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि परगनों पर चढ़ाई हुई उस समय साहबसिंह उसके साथ था और वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय रणबाज़खां की सेना से लड़कर घायल हुआ।

साहबसिंह के पीछे उसका पुत्र शिवसिंह रूपाहेली का स्वामी हुआ। वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह का देहान्त हो जाने पर माधवसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाने के लिए महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने जयपुर पर चढ़ाई की उस समय वह उसके साथ था। इसके पीछे उसने महाराणा की आज्ञा से जोधपुर के महाराजा अभयसिंह से मिलकर उसे माधवसिंह का तरफ़दार बना लिया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे एक गांव दिया।

वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने बनेड़े पर अधिकार कर लिया। तब उस(शिवसिंह)ने वहां के स्वामी सरदारसिंह को सकुटुम्ब अपने यहां रखा। फिर वह उसे उदयपुर ले गया जहां उस(सरदारसिंह)का देहान्त हो जाने पर महाराणा ने उदयपुर से सेना भेजकर बनेड़े पर उसके पुत्र रायसिंह का अधिकार करा दिया और वहां उस(रायसिंह)की रक्षा के लिए शिवसिंह की ज़मानत पर कुछ सेना रख जाने की आज्ञा दी। उज्जैन में माधवराव सिंधिया के साथ जब युद्ध हुआ तब अनूपसिंह, कुबेरसिंह आदि उस(शिवसिंह)के पांच पुत्र तथा उसका पौत्र गोपालसिंह महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर मरहटों से लड़े। इस युद्ध में कुबेरसिंह काम आया और मेहता अगरचन्द तथा रावत मानसिंह (भैंसरोड़गढ़ का) क़ैद हुए, जिनको उस(शिवसिंह)के भेजे हुए बावरी लोग हिकमत-अमली से निकाल लाये। जब सिंधिया ने उदयपुर पर घेरा डाला तब वह अपने बेटे व पोते सहित हाथीपोल दरवाज़े पर नियुक्त था। फिर महापुरुषों के साथ की लड़ाइयों में भी वह लड़ा। वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६६) में मोखरूंदा गांव के पास महाराणा तथा राजद्रोही सरदारों के बीच की लड़ाई में भी वह (शिवसिंह) महाराणा की सेना में था।

शिवसिंह के पौत्र गोपालसिंह ने अपने दादा के साथ रहकर कई युद्धों में बड़ी वीरता दिखाई। इसके सिवा वह मेवाड़ पर तुलाजी सिंधिया तथा

थीभाई की चढ़ाई के समय महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर लड़ा। फिर आंबाजी इंगलिया के प्रतिनिधि नाना गणेश से रूपाहेली में उसकी लड़ाई हुई, जिसमें वह सख्त घायल हुआ और उसके तीन भाई, चार चाचा तथा १४० साथी काम आये।

गोपालसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र सालिमसिंह हुआ। मरहटों और पिंडारियों के उपद्रव से तंग आकर महाराणा भीमसिंह ने जब अंगरेज़ी सरकार से संधि की तब महाराणा ने संधि के नियम स्थिर करने के लिए आसींद के सरदार अजीतसिंह के साथ सालिमसिंह को दिल्ली भेजा। वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान टॉड ने मेरवाड़े के उपद्रवी मेरों के दमन के लिए महाराणा से अनुरोध किया। इसपर महाराणा ने मेरवाड़े पर सालिमसिंह की अध्यक्षता में सरदारों की जमीयतें भेजीं। मेरों से मेवाड़ी सेना की कई लड़ाइयां हुईं, जिनमें बहुतसे मेर मारे गये और सालिमसिंह घायल हुआ, परन्तु उसने बोरवा, झाक, लुलुवा आदि मेरों के मुख्य स्थानों पर अधिकार कर मेरवाड़े में शांति स्थापित की। उसके लौट जाने पर मेरों ने फिर लूटमार आरम्भ कर दी। उन्होंने झाक के अंग्रेज़ी थानेदार को मार डाला और कई थाने उठा दिये। इसपर कप्तान टॉड ने फिर ठाकुर सालिमसिंह को मेरवाड़े पर भेजा और उधर नसीराबाद से कुछ अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुंची। दोनों सेनाओं ने मेरों को हराकर बोरवा, रामपुरा, सापोला, हथूण, बरार, बली, कूकड़ा, चांग, सारोठ, जवाजा आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया और वहां थाने बिठा दिये। रामगढ़ की लड़ाई में हथूण का खान तथा उसके साथ के २०० मेर बहादुरी से लड़कर मारे गये। मेवाड़ के सरदारों में से भगवानपुरे का रावत मोहकमसिंह खेत रहा। कप्तान टॉड ने ठाकुर सालिमसिंह को लिखा कि किसी थाने में १०० से कम आदमी न रखे जावें। इन्हीं दिनों मेरवाड़े में महाराणा भीमसिंह और कप्तान टॉड के नाम पर भीमगढ़ तथा टॉडगढ़ बनाये गये। सारे प्रदेश में शान्ति स्थापित कर सेनाएं अपने अपने स्थानों को वापस लौट गईं। मेरों को भविष्य में किसान बनाने के विचार से उन्हें कई स्थानों में ज़मीन दी गई। इस प्रकार मेरवाड़े में शान्ति स्थापित किये जाने का अधिकांश श्रेय मेवाड़ की सेना को ही है। सालिमसिंह

की इस सेवा से प्रसन्न होकर कप्तान टॉड ने उसे प्रशंसापत्र दिया और महाराणा ने सदा के लिए 'अमरबलेणा' घोड़ा, बाड़ी तथा सीख का सिरोपाव देकर सम्मानित किया।

खैराड़ प्रदेश में मीनों के उपद्रव मचाने पर उनका दमन करने के लिए सालिमसिंह के पुत्र सवाईसिंह की अध्यक्षता में दो बार राज्य की सेना भेजी गई। उसके समय लांबे के सरदार बाघसिंह ने रूपाहेली की कुछ भूमि दबा ली। इसपर रूपाहेली और लांबावालों में लड़ाई हुई, जिसमें बाघसिंह के भाई लक्ष्मणसिंह एवं हंमीरसिंह, उसका दत्तक पुत्र बहादुरसिंह तथा न्यारा गांव का बाघसिंह गौड़ मारा गया और सवाईसिंह के तरफ़दारों में से छोटी रूपाहेली का शिवनाथसिंह तथा दो अन्य राजपूत काम आये।

सवाईसिंह के मरने पर उसका पुत्र बलवंतसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जिससे बाघसिंह ने अपने पुत्र आदि की मूंडकटी के बदले तसवारिया गांव लेना चाहा और उसे एजेन्ट गवर्नर जनरल कर्नल ब्रुक की सिफ़ारिश से महाराणा शंभुसिंह ने उक्त गांव दिलाये जाने की आज्ञा भी दे दी। इसी अर्से में ठाकुर बलवंतसिंह इस संसार से चल बसा और उसका उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र चतुरसिंह हुआ, जो इस समय विद्यमान है। अपनी आज्ञा का पालन न होने पर महाराणा ने मेहता गोकुलचन्द की मातहती में तसवारिये पर राज्य की सेना भेजी। तब चतुरसिंह की माता और चाचा ने महाराणा को फ़ौज-खर्च देकर उससे प्रार्थना की कि आप चाहें तो तसवारिया गांव अपने अधिकार में कर लें, परन्तु वह लांबावालों को न दिया जाय। महाराणा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अबतक वह गांव राज्य के ही अधिकार में है।

भगवानपुरा

भगवानपुरे के सरदार देवगढ़ के स्वामी रावत जसवन्तसिंह के तीसरे पुत्र सरूपसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

---

(१) वंशक्रम—(१) सरूपसिंह। (२) ज़ोरावरसिंह। (३) मोहकमसिंह। (४) शिवदानसिंह। (५) सुजानसिंह।

देवगढ़ का इलाक़ा मगरा-मेरवाड़े से मिला हुआ होने के कारण वहां के उपद्रवी मेर लोग अकसर उधर के मेवाड़ के गांवों में लूटमार करते और मौका पाकर उनपर कब्ज़ा भी कर लेते थे। कालूखां नाम के मेर ने भगवानपुरा आदि गांवों पर कब्ज़ा कर लिया, परन्तु सरूपसिंह ने उनपर हमला कर कालूखां को मांडल के पास मार डाला और भगवानपुरे में गढ़ बनाकर वह वहीं रहने लगा। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने उसको वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १८००) वैशाख सुदि १३ (ई० स० १७४३ ता० २५ अप्रेल) को गोड़वाड़ में १५ गांवों सहित जोजावर की जागीर दी, जो महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय गोड़वाड़ का इलाक़ा जोधपुर के महाराजा को सौंपा गया उस समय जोधपुर की सेवा स्वीकार न करने के कारण ज़ब्त हो गई। तब से मेवाड़ में भगवानपुरे की ही जागीर उसके रही।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय महाराणा और सरदारों के बीच के बखेड़े में देवगढ़ का रावत जसवन्तसिंह महाराणा के विरोधी सरदारों का मुखिया बना और जयपुर से महापुरुषों की सेना ले आया, जिससे उज्जैन की लड़ाई में सिन्धिया की विजय हुई। फिर उसने उदयपुर पर घेरा डाला और अन्त में उससे सुलह हो गई। फिर जसवन्तसिंह ने जयपुर जाकर फ्रान्सीसी सेनापति समरू को रुपयों का लालच देकर अपने पुत्र सरूपसिंह के साथ मेवाड़ पर भेजा। खारी नदी के किनारे लड़ाई होने के बाद समरू किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह के समझाने से महाराणा से सुलह कर लौट गया। तत्पश्चात् सरूपसिंह महाराणा की सेवा में आ गया और सरदारों में दाख़िल हुआ। मरहटों वगैरह का उपद्रव देखकर महाराणा भीमसिंह ने संवत् १८३५ (ई० स० १७७८) में उस (सरूपसिंह) को लिखा कि हमारी स्वीकृति है कि तुम्हारी जागीर पर कोई हमला करे तो लड़ना और जागीर को मत छोड़ना। वि० सं० १८३६ (ई० स० १७७९) में रावत सरूपसिंह का देहान्त हुआ और उसका ५ वर्ष का बालक पुत्र ज़ोरावरसिंह भगवानपुरे का स्वामी हुआ।

वि० सं० १८४८ (ई० स० १७९१) में महाराणा भीमसिंह माधवराव सिन्धिया से मुलाक़ात करने के लिये उदयपुर से नाहर मगरे गया उस समय महाराणा के साथ के सरदारों में ज़ोरावरसिंह भी शामिल था और वहां पठान

सैनिकों ने उपद्रव कर महाराणा की ड्योढ़ी पर हमला किया उस वक़ उनसे लड़ने में वह भी शरीक़ था। दौलतराव सिंधिया का सैनिक अफ़सर शेणवी (सारस्वत) ब्राह्मण लकवा दादा मेवाड़ में था उस समय सिन्धिया के दूसरे अफ़सर आंबाजी इंगलिया का प्रतिनिधि गणेशपंत भी मेवाड़ में था। इन दोनों में हंमीरगढ़ के पास लड़ाई हुई। तब महाराणा ने १५००० सेना चूंडावतों की अध्यक्षता में लकवा की सहायतार्थ भेजी, जिसमें रावत ज़ोरावरसिंह भी शामिल था। फिर गणेशपंत की सहायता के लिये आंबाजी इंगलिया ने गुलाबराव कोदब को ससैन्य मेवाड़ पर भेजा, जिसके साथ की मूसामूसी गांव के पास की लड़ाई में चूंडावतों की हार हुई और कई राजपूत मारे गये, जिनमें रावत ज़ोरावरसिंह का कामदार भंडारी माणकचंद भी था।

वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में उपर्युक्त कालूखां का बदला लेने के लिये उसके कुटुम्बी शमशेरखां ने देवगढ़ जाते हुए मार्ग में कालेरी गांव के पास ज़ोरावरसिंह को घेर लिया और लड़ाई हुई, जिसमें शमशेरखां मारा गया और दौलतगढ़वालों का एक भाई मेघराज ज़ख़्मी हुआ, जिसको भगवानपुरे से जागीर दी गई, जो अबतक उसके वंशजों के अधिकार में है। ज़ोरावरसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा भीमसिंह ने उसे थाणा नाम का गांव दिया। वह गांव मगरा-मेरवाड़े से मिला हुआ होने के कारण उधर मेर लोग लूटमार किया करते थे, जिससे वह थाणे में रहने लगा। वि० सं० १८४५ (ई० स० १७८८) में मेर लोग थाणे की गायें घेर ले गये, जिसपर ज़ोरावरसिंह ने उनका पीछा किया तो बरार के पास लड़ाई हुई और ज़ोरावरसिंह मारा गया, जहां उसका चबूतरा बना हुआ है। उसके पुजारी को उसकी पूजा के निमित्त गांव अलगवास में माफ़ी की जमीन दी गई है।

ज़ोरावरसिंह का उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र मोहकमसिंह हुआ। मेरों की लड़ाई में उसके पिता के मारे जाने के कारण वि० सं० १८४६ भाद्रपद वदि ११ (ई० स० १७८९ ता० २७ अगस्त) को महाराणा भीमसिंह ने आलमास गांव उसको दिया, जो पीछे से बखेड़ों के समय उसके हाथ से निकल गया, परन्तु वहां उसके वंशजों की भौम चली आती है। वि० सं० १८६४ (ई० स० १८०७) के मार्गशीर्ष में मरहटों की फ़ौज ने भगवानपुरे पर गोलन्दाज़ी

शुरू की और लड़ाई हुई, जिसमें कई आदमी मारे गये, परन्तु रावत सरूपसिंह के दूसरे पुत्र सोभागसिंह की वीरता के कारण मरहटे गढ़ पर अधिकार न कर सके। वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में दौलतराव सिंधिया ने अजमेर का इलाक़ा अंग्रेज़ सरकार के सुपुर्द किया और उसी वर्ष सरकार ने नसीराबाद में छावनी क़ायम की तथा मेरवाड़े के उपद्रवी मेरों को दबाने की आवश्यकता होने के कारण महाराणा को अपने हिस्से का प्रबन्ध करने के लिये लिखा। इसपर कप्तान टॉड ने महाराणा की सम्मति से मेरवाड़े पर रूपाहेली के ठाकुर सालिमसिंह की अध्यक्षता में उधर के सरदारों की जमीयत भेजी, जिसने मेरों को दबाकर शान्ति स्थापित की, परन्तु वि० सं० १८७६ (ई० स० १८२०) में फिर मेरों ने उपद्रव कर भाक के थानेदार को मार डाला और कई थाने उठा दिये। इसपर कप्तान टॉड ने फिर ठाकुर सालिमसिंह को मेरवाड़े पर भेजा और उधर से नसीराबाद से कुछ अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुंची। दोनों सेनाओं ने मेरों को हराकर बोरवा आदि कई स्थानों में थाने बिठला दिये। रामगढ़ के पास बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें हथूण का खान तथा उसके साथ के २०० मेर मारे गये और मेवाड़ के सरदारों में से वि० सं० १८७६ (चैत्रादि १८७७) ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १८२० ता० २५ मई) को रावत मोहकमसिंह वीरता से लड़कर मारा गया।

उसका पुत्र शिवदानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। रावत मोहकमसिंह के मारे जाने के कारण महाराणा भीमसिंह ने प्रसन्न होकर उसके ठिकाने की तलवारबंदी तथा भोम की लागत वंशपरंपरा के लिये वि० सं० १८७७ श्रावण वदि ६ (ई० स० १८२० ता० ३१ जुलाई) को माफ़ कर दी और मापा नाम की वहां की लागत भी उसी को बख़्श दी। उसका देहान्त वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९१) में हुआ जिसके पहले उसका पुत्र हंमीरसिंह और पौत्र पृथ्वीसिंह दोनों मर गये थे, जिससे उसका प्रपौत्र सुजानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो भगवानपुरे का वर्तमान स्वामी है।

नेतावल

नेतावल के सरदार महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के छोटे पुत्र नाथसिंह के द्वितीय पुत्र सूरतसिंह[1] के वंशज हैं। उनकी उपाधि 'महाराज' है।

महाराज नाथसिंह के पांच पुत्र थे, उनमें से ज्येष्ठ पुत्र भीमसिंह की सन्तान बागोर पर रही। दूसरे पुत्र सूरतसिंह के कोई औलाद नहीं हुई, इसलिये उसके छोटे भाई ज़ालिमसिंह का पौत्र रूपसिंह उसके गोद रहा[2]। रूपसिंह को महाराणा भीमसिंह ने सोनियाणा और चावंड्या नामक ग्राम अपनी ओर से जागीर में प्रदान किये, किन्तु मेवाड़ में उस समय मरहटों और पिंडारियों के उपद्रव के कारण उन गांवों के वीरान होने से वह जयपुर चला गया, जहां उसको उसके पूर्वजों की भांति सम्मान के साथ यथेष्ट आय की जागीर प्राप्त हुई और उस जागीर में के दो ग्रामों-गेणोली और भजेड़ा-पर अद्यावधि उसके वंशधरों का अधिकार है। शेष जागीर उसके ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह के मेवाड़ में लौट जाने पर ज़ब्त हो गई। महाराणा जवानसिंह और सरदारसिंह की गया-यात्रा के समय शिवसिंह उनके साथ रहा। गया से लौटते समय महाराणा सरदारसिंह ने उसे अपने साथ उदयपुर लाकर वि० सं० १८९७ (ई० स० १८४०) में वर्तमान नेतावल की जागीर प्रदान की, जो पहले ज़ालिमसिंह को मिल चुकी थी।

महाराज शिवसिंह महाराणा सरूपसिंह का बड़ा विश्वासपात्र था। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में ग़दर के अवसर पर कर्नल शावर्स की अध्यक्षता में निम्बाहेड़ पर चढ़ाई हुई, जिसमें वह (शिवसिंह) अपनी जमीयत

(१) वंशक्रम—(१) सूरतसिंह। (२) रूपसिंह। (३) शिवसिंह। (४) समदरसिंह। (५) भूपालसिंह। (६) हरिसिंह।

(२) 'चीफ्स एन्ड लीडिङ्ग फेमिलीज़ इन राजपूताना' नामक पुस्तक में सूरतसिंह के पीछे रूपसिंह का होते की जगत्सिंहोत राणावत शाखा से गोद आना लिखा है (ई० स० १९२४ का संस्करण), जो बिलकुल निराधार है। पुराने पत्रादि से स्पष्ट है कि रूपसिंह रणसिंह का औरस पुत्र था और रणसिंह बागोर के महाराज नाथसिंह के तृतीय पुत्र ज़ालिमसिंह का बेटा था। रणसिंह अपने पिता की विद्यमानता ही में मर गया, जिससे रूपसिंह प्रथम अपने दादा ज़ालिमसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु बाद में गोद जाने से सूरतसिंह का उत्तराधिकारी हुआ।

सहित विद्यमान था। वि० सं० १९१५ (ई० स० १८५८) में बागोर के महाराज शेरसिंह का देहान्त होने पर उसके पुत्रों में परस्पर झगड़े की आशंका देख महाराणा ने उसको बागोर भेजा तो वह उन्हें समझाकर उदयपुर ले गया। वि० सं० १९१९ (ई० स० १८६२) में उसकी मृत्यु होने पर समदरसिंह नेतावल का स्वामी हुआ। समदरसिंह का पुत्र भूपालसिंह और उसका हरिसिंह हुआ, जो नेतावल का वर्तमान स्वामी है।

पीलाधर

पीलाधर के सरदार महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के दूसरे पुत्र बागोर के महाराज नाथसिंह के चौथे पुत्र भगवत्सिंह[1] के वंशज हैं। भगवत्सिंह का उत्तराधिकारी गुलाबसिंह हुआ। उसका सातवां वंशधर जोधसिंह पीलाधर का वर्तमान स्वामी है।

नींबाहेड़ा (लीमाड़ा)

नींबाहेड़े के सरदार बदनोर के ठाकुर सांवलदास के पांचवें पुत्र अमरसिंह के वंशज हैं और 'ठाकुर' कहलाते हैं।

सांवलदास के पुत्र अमरसिंह[2] राठोड़ को महाराणा अमरसिंह के राजत्वकाल में नींबाहेड़े की जागीर मिली। अमरसिंह का उत्तराधिकारी सूरजसिंह हुआ, जो रणबाज़खां और महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के बीच की बांदनवाड़े के समीप की लड़ाई में महाराणा की सेना में था। सूरजसिंह के पीछे महासिंह और उसके बाद उसका उत्तराधिकारी हरिसिंह हुआ। महाराणा

---

(१) वंशक्रम—(१) भगवत्सिंह। (२) गुलाबसिंह। (३) अभयसिंह। (४) विजयसिंह। (५) मुकुन्दसिंह। (६) मोहनसिंह। (७) बदनसिंह। (८) लक्ष्मणसिंह। (९) जोधसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) अमरसिंह। (२) सूरजसिंह। (३) महासिंह। (४) हरिसिंह। (५) किशनसिंह। (६) सोभागसिंह। (७) वीरमदेव। (८) अमरसिंह (दूसरा)। (९) दूलहसिंह। (१०) मोकमसिंह।

अरिसिंह (दूसरे) से महापुरुषों का जो युद्ध गंगार के समीप हुआ उसमें हरिसिंह बड़ी वीरता से लड़ा। हरिसिंह का पांचवां वंशधर दूलहसिंह हुआ। उसके निःसन्तान मरने पर मोड़सिंह गोद गया, जो नींबाहेड़े (लीमाड़े) का वर्तमान स्वामी है।

बाठरड़ा

बाठरड़े के स्वामी सारंगदेवोत रावत मानसिंह के छठे पुत्र सूरतसिंह[1] के वंशज हैं और उनकी उपाधि 'रावत' है।

महाराणा जयसिंह का अपने कुंवर अमरसिंह से बिगाड़ हो जाने पर कुंवर अमरसिंह अपने पिता पर चढ़ाई करने के लिए सेना लेने को अपने ननिहाल बूंदी गया उस समय सूरतसिंह उसके साथ था। इस बात से महाराणा उसपर अप्रसन्न हुआ, जिससे वह रामपुरे के रावत रत्नसिंह (इस्लामखां) के पास चला गया, जिसने उसको कनभेड़ का हाकिम बनाया, जहां वह कुछ वर्ष तक रहा। उसके ज्येष्ठ भ्राता महासिंह के अर्ज़ करने पर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) में उसे पीछा मेवाड़ में बुला लिया और रावत का खिताब दिया। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय वि० सं० १७६८ (ई० स० १७११) में महाराणा की रणबाज़खां मेवाती के साथ बांदनवाड़े के पास लड़ाई हुई, जिसमें वह अपने ज्येष्ठ भ्राता महासिंह के साथ था। दोनों भाई बड़ी वीरता से लड़े और महासिंह रणबाज़खां को मारकर मारा गया और सूरतसिंह सख्त घायल हुआ। इन दोनों भाइयों की वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने महासिंह के पुत्र सारंगदेव को बाठरड़े के एवज़ कानोड़ की बड़ी जागीर दी तथा सूरतसिंह को बाठरड़े की जागीर देकर दूसरी श्रेणी का सरदार बनाया। सूरतसिंह का पुत्र प्रतापसिंह अपने पिता की विद्यमानता ही में गुज़र गया, जिससे उस(सूरतसिंह)का पौत्र जोगीराम उसका क्रमानुयायी हुआ।

---

(१) वंशक्रम—(१) सूरतसिंह। (२) जोगीराम। (३) एकलिंगदास। (४) मोहब्बतसिंह। (५) दलेलसिंह। (६) मदनसिंह। (७) माधोसिंह। (८) दिलीपसिंह।

वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने माधोसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठलाने के लिए चढ़ाई की उस समय जोगीराम और उसका चाचा पद्मसिंह दोनों उसके साथ थे। बनास नदी के तट पर राजमहल के पास जयपुरवालों के साथ की लड़ाई में पद्मसिंह तो मारा गया और जोगीराम घायल हुआ। जोगीराम के पीछे उसका पुत्र एकलिंग-दास ठिकाने का स्वामी हुआ। वि० सं० १८४८ (ई० स० १७९१) में सलूंबर के रावत भीमसिंह से चित्तोड़ का क़िला खाली कराने के लिए महाराणा भीम-सिंह ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय एकलिंगदास महाराणा की सेना में था। एकलिंगदास के पुत्र मोहब्बतसिंह के समय आंबाजी इंगलिया ने ठिकाने बाठरड़े पर चढ़ाई कर उसे लूटा और मोहब्बतसिंह को कैद कर लिया, परन्तु महाराणा भीमसिंह ने आंबाजी से कह सुनकर उसे कैद से छुड़ा दिया। वि० सं० १८५९ (ई० स० १८०२) में महाराणा की झाला ज़ालिमसिंह आदि के साथ चेजा घाटी के पास लड़ाई हुई, जिसमें वह (मोहब्बतसिंह) वीरता से लड़ा। इससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे चार गांव और दिये।

उसके पुत्र कल्याणसिंह का देहान्त उसके सामने ही हो गया, जिससे उसका पौत्र दलेलसिंह उसके पीछे ठिकाने का स्वामी हुआ। महाराणा सज्जन-सिंह के समय मगरा ज़िले के भील बाग़ी हो गये, जिसपर महाराणा ने अपने मामा महाराज अमानसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजी, जिसमें दलेलसिंह का पुत्र मदनसिंह भी शरीक था। दलेलसिंह ने महाराणा फ़तहसिंह को अपने यहां मेहमान किया उस समय उसके पुत्र मदनसिंह ने भेड़का के पहाड़ में शेर (सुनहरी) की शिकार कराई, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने मदनसिंह को सोने के तोड़े, घोड़ा, सिरोपाव आदि और उसके पिता को घोड़ा, सिरोपाव आदि देकर सम्मानित किया। वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में महाराणा की आज्ञा से दलेलसिंह सब अधिकार अपने पुत्र मदनसिंह को देकर काशी में जा रहा और आठ वर्ष पीछे वहीं उसकी मृत्यु हुई। मदनसिंह का उत्तरा-धिकारी माधवसिंह शिक्षित, प्रबन्धकुशल, अच्छा सवार और शिकारी था। उसने मेयो कॉलेज में शिक्षा पाई थी। उसका पुत्र दिलीपसिंह बाठरड़े का वर्तमान स्वामी है।

बंबोरी

बंबोरी के सरदार श्रीनगर (अजमेर ज़िले में) वाले कर्मचन्द परमार (पँवार) के वंशज हैं।

महाराणा रायमल का सब से छोटा कुंवर संग्रामसिंह (सांगा) भीमल गांव में अपने भाइयों के साथ की लड़ाई में घायल होकर सेवंत्री गांव में पहुंचा, जहां से राठोड़ बीदा ने उसको अपने घोड़े पर सवार कराकर गोड़वाड़ में पहुंचा दिया। वहां से वह श्रीनगर (अजमेर ज़िले में) के परमार (पँवार) कर्मचन्द की सेवा में जा रहा। एक दिन कर्मचन्द अपने साथियों सहित जंगल में आराम कर रहा था उस समय सांगा भी कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे सो रहा था। कुछ देर बाद उधर जाते हुए दो राजपूतों ने देखा कि एक सांप सांगा के सिर पर फन फैलाये हुए छाया कर रहा है। उन राजपूतों ने यह बात कर्मचन्द से कही, जिसे सुनकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ और उसने वहां जाकर अपनी आंखों से यह घटना देखी। यह देखकर सांगा के साधारण पुरुष होने के विषय में उसे सन्देह हुआ। बहुत पूछताछ करने पर उसने अपना सच्चा हाल कह दिया, जिससे कर्मचन्द बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उससे कहा कि आपको छिपकर नहीं रहना चाहिये था। फिर उसने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

जयमल और पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे महाराणा (रायमल) को सांगा का पता लग जाने पर कर्मचन्द और सांगा को अपने पास बुलाया और कर्मचन्द पर प्रसन्न होकर उसे अच्छी जागीर दी।

जब महाराणा सांगा का राज्याभिषेक हुआ तब दूसरे ही साल उसने अपनी आपत्ति के समय में की हुई सेवा के निमित्त कर्मचन्द को परबतसर, मांडल, फूलिया, बनेड़ा आदि पन्द्रह लाख की वार्षिक आय के परगने जागीर में देकर उसे 'रावत' की उपाधि दी। कर्मचंद ने अपना नाम चिरस्थायी रखने के लिये उन परगनों के कई गांव ब्राह्मण, चारण आदि को दान में दिये, जिनमें से अबतक कितने ही उनके वंशजों के अधिकार में हैं। उसके पीछे उस (कर्मचंद) की बड़ी जागीर ज़ब्त हो गई। अब उसके वंश में बंबोरी की जागीर रह गई है।

कर्मचन्द का वंशज रूपसिंह[1] हुआ, जिसका ग्यारहवां वंशधर तेजसिंह बंबोरी का वर्तमान सरदार है।

सनवाड़

सनवाड़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के तीसरे पुत्र वीरमदेव[2] के वंशज होने से वीरमदेवोत राणावत कहलाते हैं और बाबा (महाराज) उनका खिताब है। खेराबाद के बाबा संग्रामसिंह के छोटे पुत्र शंभुसिंह को सनवाड़ की जागीर मिली।

कुंभलगढ़ की क़िलेदारी का काम वीरमदेवोतों के अधिकार में रहता है। इस समय भी क़िलेदार जसवंतसिंह है, जो सनवाड़ के छोटे भाइयों में है।

महाराज शंभुसिंह, मल्हारराव होलकर की जयपुर पर चढ़ाई के समय, महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) की आज्ञानुसार लड़ने को गया और वह माधवराव सिंधिया की मेवाड़ पर चढ़ाई के समय भी महाराणा की सेना में था।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) को बूंदीवाले अजीतसिंह ने अमरगढ़ के पास अचानक वर्छे से मारा उस समय शंभुसिंह भी काम आया।

महाराणा भीमसिंह का मरहटी सेना से हड़क्याखाल के पास युद्ध हुआ, जिसमें उस(शंभुसिंह)का पौत्र दौलतसिंह अपने भाई कुशलसिंह सहित शामिल था। इस लड़ाई में कुशलसिंह वीरतापूर्वक लड़कर काम आया। दौलतसिंह का पुत्र भैरवसिंह हुआ।

भैरवसिंह के तीसरे वंशधर नाहरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसका भतीजा गोवर्द्धनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो सनवाड़ का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) रूपसिंह। (२) मुकुन्दसिंह। (३) चन्द्रसिंह। (४) मालदेव। (५) पद्मसिंह। (६) दलेलसिंह। (७) जोधसिंह। (८) सोहनसिंह। (६) संग्रामसिंह। (१०) हम्मीरसिंह। (११) जयसिंह। (१२) तेजसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) शंभुसिंह। (२) जैतसिंह। (३) दौलतसिंह। (४) भैरवसिंह। (५) गिरधारीसिंह। (६) लछमणसिंह। (७) नाहरसिंह। (८) गोवर्द्धनसिंह।

करेड़ा

करेड़े के सरदार देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह के पुत्र गोपालदास[१] के वंशज हैं और 'राजाबहादुर' उनकी उपाधि है। यह उपाधि उनको जयपुर दरबार की तरफ़ से मिली हुई है।

गोपालदास को महाराणा राजसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में करेड़े की जागीर मिली। उस(गोपालदास)के पांचवें वंशधर दलेलसिंह के निस्सन्तान मरने पर अमरसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जो करेड़े का वर्तमान सरदार है।

अमरगढ़

अमरगढ़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के पांचवें पुत्र काना[२] (कान्हसिंह) के वंशज (कानावत) हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

काना के नवें वंशधर दलेलसिंह को 'रावत' की उपाधि मिली। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने उस(दलेलसिंह)को मार डाला, जिसपर महाराणा ने उस(उम्मेदसिंह)को दण्ड दिया इतना ही नहीं, किन्तु उसके पांच गांव दलेलसिंह के पुत्र को मूंडकटी में दिलाये।

दलेलसिंह का तीसरा वंशधर गोविन्दसिंह अमरगढ़ का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) गोपालदास। (२) अजीतसिंह। (३) मोहनसिंह। (४) भवानीसिंह। (५) ज़ालिमसिंह। (६) दलेलसिंह। (७) अमरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) कानसिंह। (२) परशुराम। (३) रामसिंह। (४) रत्नसिंह। (५) भगवन्तसिंह। (६) नवलसिंह। (७) कोजूराम। (८) मेघसिंह। (९) रणसिंह। (१०) दलेलसिंह। (११) जवानसिंह। (१२) शिवसिंह। (१३) गोविन्दसिंह।

लसाणी

लसाणी के सरदार आमेट के रावत पत्ता के चौथे पुत्र शेखा[1] के वंशज हैं। शेखा के पुत्र दलपतसिंह को महाराणा राजसिंह (प्रथम) की तरफ़ से लसाणी की जागीर मिली।

दलपतसिंह का आठवां वंशधर गजसिंह टोपलमगरी और गंगार के पास महापुरुषों के साथ की लड़ाइयों में बहादुरी से लड़ा। उसका तीसरा वंशधर सुलतानसिंह महाराणा स्वरूपसिंह के समय आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के निःसन्तान मरने पर, चत्रसिंह व अमरसिंह के बीच हक़दारी का जो झगड़ा हुआ उसमें अमरसिंह का तरफ़दार रहा।

सुलतानसिंह के पौत्र केसरीसिंह का उत्तराधिकारी खुंमाणसिंह लसाणी का वर्तमान सरदार है।

थर्यावद

थर्यावद के सरदार महाराणा प्रतापसिंह के तीसरे पुत्र सहसमल[2] के वंशज हैं और 'रावत' उनका खिताब है।

कुंवर कर्णसिंह ने शाही खज़ाना लूटने के लिए मारवाड़ के दूनाड़े गांव तक खज़ाने का पीछा किया उस समय सहसमल कुंवर की सेना के शरीक था। बादशाह शाहजहां के समय दक्षिण में लड़ाई चल रही थी उस समय बादशाह की इच्छानुसार महाराणा जगत्सिंह ने सहसमल के पुत्र भोपतराम

---

(१) वंशक्रम—(१) शेखा। (२) दलपतसिंह। (३) मोहनसिंह। (४) ईसरदास। (५) उम्मेदसिंह। (६) अमरसिंह। (७) सामंतसिंह। (८) केसरीसिंह। (९) बुधसिंह। (१०) गजसिंह। (११) नाहरसिंह। (१२) जसकरण। (१३) सुलतानसिंह। (१४) जसवंतसिंह। (१५) केसरीसिंह। (१६) खुंमाणसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) सहसमल। (२) भोपतराम। (३) केसरीसिंह। (४) वीरमदेव। (५) विजयसिंह। (६) बख़्तसिंह। (७) सकतसिंह। (८) जोधसिंह (रावत)। (९) सूरजमल। (१०) पेमसिंह। (११) रायसिंह। (१२) रघुनाथसिंह। (१३) बख़्तावरसिंह। (१४) विजयसिंह। (१५) केसरीसिंह (दूसरा)। (१६) प्रतापसिंह। (१७) जसवंतसिंह। (१८) खुंमाणसिंह।

को अपनी सेना के साथ भेजा, जो बादशाही सेना में रहकर लड़ा। उस (भोपतराम) के छठे वंशधर जोधसिंह[1] को रावत का खिताब मिला।

जोधसिंह के चौथे वंशधर रघुनाथसिंह से प्रतापगढ़ (देवलिया) के रावत सामंतसिंह ने धर्यावद का परगना छीन लिया, जिसपर महाराणा भीमसिंह ने वि० सं० १८५० (ई० स० १७९३) में सामंतसिंह से दण्ड लेकर उस (रघुनाथसिंह) का परगना पीछा उसके सुपुर्द करा दिया। रघुनाथसिंह का चौथा वंशधर प्रतापसिंह हुआ। उसका पुत्र जसवंतसिंह निस्सन्तान मरा। जिसका उत्तराधिकारी खुमाणसिंह धर्यावद का वर्तमान सरदार है।

फलीचड़ा

फलीचड़ा के सरदार कोठारिये के रावत रुक्माङ्गद के पुत्र हरिनाथ[2] के वंशज हैं और 'ठाकुर' कहलाते हैं।

---

(१) जोधसिंह का छोटा भाई उदयसिंह महाराजा माधवसिंह के पास जयपुर चला गया, जिसने उसको ३२००० रु० की आय की जागीर दी। उसका उत्तराधिकारी देवसिंह हुआ। उसके दो पुत्र गोपालसिंह और गोविन्दसिंह हुए। गोपालसिंह जयपुर की जागीर का स्वामी हुआ और गोविन्दसिंह को अलग जागीर मिली। गोविन्दसिंह के चार पुत्र गुलाबसिंह, बलवन्तसिंह, किशनसिंह और मोहब्बतसिंह हुए। अपनी जागीर छूट जाने पर गुलाबसिंह अलवर के राजा बिनेसिंह के पास चला गया, जिसने उसको केसरोली की ६००० रु० की जागीर दी। गुलाबसिंह के पुत्र न होने के कारण उसने अपने छोटे भाई बलवंतसिंह के तीसरे पुत्र देवीसिंह को गोद लिया। उसको महाराजा रामसिंह ने जयपुर में करणवास की जागीर दी। देवीसिंह के दो पुत्र बहादुरसिंह और भीमसिंह हुए। बहादुरसिंह अपने पिता की जागीर करणवास का स्वामी हुआ और भीमसिंह अलवर की जागीर केसरोली का।

बहादुरसिंह वयोवृद्ध, बुद्धिमान्, विद्यानुरागी और पुराने ढंग का सरदार है। वह महाराजा रामसिंह और माधवसिंह का कृपापात्र रहा और राज्य के कई महकमों पर नियुक्त रहा। महाराजा माधवसिंह ने अपनी जीवित दशा में उसको अपने पुत्र मानसिंह का अतालीक (Guardian) बनाया था।

(२) वंशक्रम—(१) हरिनाथ। (२) नाथसिंह। (३) शोभानाथ। (४) जोरावरनाथ। (५) हरिनाथ (दूसरा)। (६) प्रतापनाथ। (७) बख़्तावरनाथ। (८) शंभुनाथ।

फलीचड़े का ठिकाना महाराणा राजसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में हरिनाथ के पुत्र नाथसिंह को जागीर में मिला। नाथसिंह का उत्तराधिकारी शोभानाथ हुआ। उसके चौथे वंशधर बख़्तावरनाथ का पुत्र शंभुनाथ फलीचड़े का वर्तमान सरदार है।

संग्रामगढ़

संग्रामगढ़ के सरदार देवगढ़ के रावत संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र जयसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में जयसिंह को संग्रामगढ़ की जागीर मिली।

जयसिंह के उत्तराधिकारी साईंदास के पांचवें वंशधर सुजानसिंह का पुत्र कल्याणसिंह संग्रामगढ़ का वर्तमान सरदार है।

विजयपुर

विजयपुर के सरदार बानसी के रावत नरहरदास के चौथे पुत्र विजयसिंह[2] के वंशज हैं।

विजयसिंह का ग्यारहवां वंशधर नवलसिंह हुआ। उसका उत्तराधिकारी प्रतापसिंह विजयपुर का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) जयसिंह। (२) साईंदास। (३) नाथसिंह। (४) अमरसिंह। (५) गुलाबसिंह। (६) प्रतापसिंह। (७) सुजानसिंह। (८) कल्याणसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) विजयसिंह। (२) कुशलसिंह। (३) लालसिंह। (४) जैतसिंह। (५) अचलदास। (६) बख़्तसिंह। (७) बहादुरसिंह। (८) मोहकमसिंह। (९) भैरवसिंह। (१०) माधोसिंह। (११) जवानसिंह। (१२) नवलसिंह। (१३) प्रतापसिंह।

तृतीय श्रेणी के सरदार

द्वितीय श्रेणी के सरदार विजयपुर तक माने जाते हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि अलग अलग महाराणाओं की इच्छानुसार कुछ सरदारों की बैठकें ऊपर कर दी गई, जिससे कितने एक द्वितीय श्रेणी के सरदार तीसरी श्रेणी में आ गये, परन्तु उनकी मान-मर्यादा पूर्ववत् बनी हुई है। ऐसे ही तीसरी श्रेणी के सरदारों में से कितने एक को ताज़ीम का सम्मान भी है। इस श्रेणी के सरदारों में से कितने एक का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

बंबोरा

बंबोरे के सरदार सलूंबर के रावत कांधल के पुत्र सामंतसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय की रणबाज़खां के साथ की लड़ाई में सामंतसिंह घायल हुआ। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उक्त महाराणा ने उसे बंबोरे की जागीर दी। उसका पोता (खुमाणसिंह का पुत्र) कल्याणसिंह उज्जैन की लड़ाई में लड़ा। उसके प्रपौत्र जोधसिंह के सलूंबर के रावत केसरीसिंह के उत्तराधिकारी होने पर उस (जोधसिंह) का पुत्र प्रतापसिंह बंबोरे का स्वामी हुआ और प्रतापसिंह के उत्तराधिकारी ओनाड़सिंह के सलूंबर गोद चले जाने पर उस (प्रतापसिंह) के पीछे ठिकाना नोली से मोड़सिंह गोद गया, जो इस समय विद्यमान है।

रूपनगर

रूपनगर के सरदार सोलंकी वंश के राजपूत हैं और वे 'ठाकुर' कहलाते हैं।

(१) वंशक्रम—(१) सामन्तसिंह। (२) खुमाणसिंह। (३) कल्याणसिंह। (४) सालमसिंह। (५) हमीरसिंह। (६) जोधसिंह। (७) प्रतापसिंह। (८) ओनाड़सिंह। (९) मोड़सिंह।

सोलंकियों से गुजरात का राज्य छूटने पर देपा नाम का सोलंकी गुजरात से राण या राणक (भिणाय, अजमेर ज़िले में) में जा बसा। देपा का पुत्र भोज[1] या भोजराज राण से लास (लाछ) गांव (सिरोही राज्य में माल मगरे के पास) में जा बसा। भोज और सिरोही के राव लाखा के बीच शत्रुता हुई और उनकी लड़ाइयां होती रहीं। राव लाखा ने पांच या छः लड़ाइयों में हारने के पीछे ईडर के राव की सहायता से भोज को मारा और सोलंकियों से लास का ठिकाना छीन लिया। तब वे (सोलंकी) मेवाड़ में महाराणा रायमल के पास कुम्भलगढ़ पहुंचे। उस समय देसूरी का इलाक़ा मादड़ेचे चौहानों के अधिकार में था। वहां के चौहान महाराणा की आज्ञा की अवहेलना करते थे, जिससे महाराणा तथा उसके कुंवर पृथ्वीराज ने भोज के पाता आदि पुत्रों को कहा कि मादड़ेचों को मारकर देसूरी का इलाक़ा लेलो। इसपर सोलंकी रायमल तथा उसके पुत्र सामन्तसिंह ने अर्ज़ की कि मादड़ेचे तो हमारे रिश्तेदार हैं। महाराणा ने उत्तर दिया कि दूसरी जागीर तो देने को नहीं है। तब उन्होंने मादड़ेचों को मारकर १४० गांव सहित देसूरी की जागीर ले ली। रायमल के चार पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र शंकर के वंशज जीलवाड़े के सोलंकी हैं और रूपनगरवाले छोटे पुत्र सामन्तसिंह के वंशज हैं।

सामन्तसिंह का भाई भैरवदास गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तोड़ की दूसरी चढ़ाई में भैरवपोल पर लड़ता हुआ काम आया और उस-(सामन्तसिंह)का पौत्र वीरमदेव खुर्रम के साथ की लड़ाई में महाराणा अमरसिंह के साथ रहकर खूब लड़ा। वीरमदेव का तीसरा वंशधर बीका (विक्रम) मेवाड़ पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय महाराणा राजसिंह की सेवा में रहकर लड़ा और उसने शाहज़ादे अकबर और तहव्वरखां के साथ के युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई तथा उनका ख़ज़ाना लूट लिया। बीका का उत्तरा-

(१) वंशक्रम—(१) भोज। (२) पाता। (३) रायमल। (४) सामन्तसिंह। (५) देवराज। (६) वीरमदेव। (७) जसवन्तसिंह। (८) दलपतिसिंह। (९) बीका (विक्रम)। (१०) सूरजमल। (११) श्यामलदास। (१२) वीरमदेव (दूसरा)। (१३) जीवराज। (१४) कुंवरसिंह। (१५) रत्नसिंह। (१६) सरदारसिंह। (१७) नवलसिंह। (१८) बैरीसाल। (१९) भूपालसिंह। (२०) अजीतसिंह।

धिकारी सूरजमल हुआ। वह रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह की लड़ाई में शरीक था। सूरजमल का दसवां वंशधर अजीतसिंह रूपनगर का वर्त्तमान सरदार है।

बरसल्यावास

बरसल्यावास के स्वामी शाहपुरे के सरदार सुजानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र फ़तहसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनकी उपाधि है। फ़तहसिंह के सातवें वंशधर भवानीसिंह का प्रपौत्र मेघसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

केर्या

केर्या के सरदार महाराणा कर्णसिंह के दूसरे पुत्र गरीबदास[2] के वंशज हैं और 'बाबा' उनकी उपाधि है। गरीबदास के आठवें वंशधर भूपालसिंह का पौत्र गुलाबसिंह केर्या का वर्तमान स्वामी है।

आमल्दा

इस ठिकाने के स्वामी महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के पांचवें पुत्र कान्हसिंह के वंशज होने के कारण कान्हावत कहलाते हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है। कान्हसिंह के बेटे परशुरामसिंह के दूसरे पुत्र वैरीशाल को आमल्दे का ठिकाना मिला।

मंगरोप

मंगरोप के सरदार महाराणा प्रतापसिंह के ग्यारहवें पुत्र पूरणमल[3]

---

(१) वंशक्रम—(१) फ़तहसिंह। (२) हिम्मतसिंह। (३) किशोरसिंह। (४) किशनसिंह। (५) शंभुनाथ। (६) चन्द्रसिंह। (७) सुजानसिंह। (८) भवानीसिंह। (९) फ़तहसिंह (दूसरा)। (१०) जसवंतसिंह। (११) मेघसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) गरीबदास। (२) मनोहरदास। (३) भूपसिंह। (४) उद्योतसिंह। (५) पद्मसिंह। (६) सांवलदास। (७) सुजानसिंह। (८) फ़तहसिंह। (९) भूपालसिंह। (१०) रामसिंह। (११) गुलाबसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) पूरणमल (पूरा)। (२) नाथसिंह। (३) महेशदास।

(पूरा) के वंशज (पूरावत) हैं और 'महाराज' (बाबा) उनकी उपाधि है। कहा जाता है कि पूरणमल ने द्वारका जाते समय लूनावाड़े (गुजरात में) के सोलंकी राजा की, जिसपर जूनागढ़ का मुसलमान सूबेदार चढ़ आया था, सहायता की और मुसलमानों से वीरतापूर्वक लड़कर उन्हें हरा दिया। उसकी इस सेवा के बदले वहांवालोंने उसके छोटे पुत्र सबलसिंह को अपने यहां रख लिया और उस(सबलसिंह)को वतौर जागीर के मालिकपुर, आडेर आदि गांव दिये, जो अबतक पूरावतों के कथनानुसार उसके वंशजों के अधिकार में है।

पूरणमल के उदयपुर लौट जाने पर महाराणा अमरसिंह ने उसे मंगरोप की जागीर दी। पूरणमल ने जंगल साफ़ कर मंगरोप गांव बसाया। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र नाथसिंह हुआ। नाथसिंह के महेशदास तथा मोहकमसिंह दो पुत्र हुए, जिनमें से पहला तो उसके पीछे ठिकाने का स्वामी हुआ और दूसरे को महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) ने अर्जन की जागीर दी।

महेशदास के वंशज महेशदासोत और मोहकमसिंह के मोहकमसिंहोत कहलाते हैं। मंगरोप तथा आर्जुण के ठिकाने तो महेशदासोतों और गुरला, गाड़रमाला, सिंगोली एवं सूरावास के ठिकाने मोहकमसिंहोतों के हैं। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय महाराज महेशदास ने नंदराय में अजमेर के मुसलमान सूबेदार की सेना से लड़कर उसे तितर-बितर कर दिया। उक्त महाराणा की आज्ञा से महेशदास ने सरकश भीलों के नठारा और भोराई की पालों पर चढ़ाई कर उनका दमन किया, परन्तु इस चढ़ाई में उसके गले में एक तीर लगा, जिससे वह मर गया। उसके पीछे मंगरोप का स्वामी उसका पुत्र जसवंतसिंह हुआ।

बादशाह औरंगज़ेब ने पुर, मांडल और बदनोर के परगने, जो जज़िये के एवज़ में ख़ालसा किये गये थे, राठोड़ सुजानसिंह (मोटे राजा उदयसिंह के वंशज) के पुत्र जुझारसिंह और कर्ण को दे दिये। जुझारसिंह के भतीजे राजसिंह ने, जो उन परगनों के प्रबन्ध के लिये वहां रहता था, कई चूण्डावतों को

(४) जसवंतसिंह। (५) रत्नसिंह। (६) भवानीसिंह। (७) विशनसिंह। (८) बिरदसिंह। (९) मर्यादसिंह। (१०) गिरिवरसिंह। (११) रणजीतसिंह। (१२) ईसरीसिंह। (१३) भूपालसिंह। (१४) नाहरसिंह।

मारकर पुर के पास की अधरशिला नाम की गुफ़ा में डाल दिया और वह आमेट के रावत दूलहसिंह के चार भाइयों को पकड़कर ले गया। इसपर क्रुद्ध होकर महाराणा अमरसिंह ने महाराज जसवन्तसिंह तथा देवगढ़ के सरदार द्वारकादास रावत को गुप्त रूप से आज्ञा दी कि राठोड़ों पर चढ़ाई कर उन्हें मेवाड़ से निकाल दो। महाराणा की आज्ञा के अनुसार द्वारकादास अपनी सेना साथ लेकर रवाना हुआ, परन्तु बागोर के पास लसवा गांव में ठहर जाने के कारण नियत स्थान पर जसवन्तसिंह से मिल न सका। जसवन्तसिंह ने पुर पर अकेले चढ़ाई कर राठोड़ों को पराजित किया। किशनसिंह[1] के पुत्र राजसिंह ने पुर से भागकर मांडल में शरण ली, परन्तु जसवन्तसिंह और उसके भतीजे बख़्तसिंह ने वहां से भी उस (राजसिंह) को भगा दिया। इस चढ़ाई में दोनों पक्ष के बहुतसे राजपूत काम आये। जसवन्तसिंह के चार या पांच सौ साथी मारे गये, जिनमें उसका छोटा भाई प्रेमसिंह भी था।

जसवन्तसिंह की उक्त सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा अमरसिंह ने उसे आटूंण गांव दिया, जो अबतक मंगरोप के महाराज के कुटुम्बियों के अधिकार में है। जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी रत्नसिंह हुआ। अपने भानजे माधवसिंह को जयपुर की गद्दी दिलाने के लिये ईसरीसिंह से महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) की जो लड़ाई खारी नदी के किनारे हुई उसमें महाराज रत्नसिंह और उसका भाई रणसिंह, जो आज्यों का सरदार था, महाराणा की सेना में रहकर लड़ा। उसकी इस सेवा के बदले मेवाड़ राज्य की ओर से रत्नसिंह को दांदूथल और रणसिंह को सिंगोली गांव मिला। दांदूथल अब ख़ालसे के अन्तर्गत है, परन्तु वहां मंगरोप के कुटुम्बियों की अबतक भोम है तथा सिंगोली अबतक रणसिंह के वंशजों के अधिकार में है। रत्नसिंह के पीछे भवानीसिंह और उसके उपरान्त विशनसिंह मंगरोप का स्वामी हुआ।

वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६९) में उज्जैन के पास माधवराव सिंधिया से महाराणा अरिसिंह (दूसरे) का जो युद्ध हुआ उसमें विशनसिंह के नाबालिग होने के कारण उसकी जमीयत महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर लड़ी। इस लड़ाई में मंगरोप के बहुतसे राजपूत काम आये। इसके उपरान्त

(१) किशनसिंह के वंशज इस समय जूनिया (अजमेर ज़िले में) के इस्तमरारदार हैं।

महाराणा भीमसिंह की आज्ञा से महाराज विशनसिंह ने अपने भाई पद्मसिंह को, जो आर्ज्या का सरदार था तथा मुहब्बतसिंह को, जो गाडरमाले का अधिकारी था, साथ लेकर पुर पर चढ़ाई की और वहां से मरहटों को निकाल दिया। इस चढ़ाई में विशनसिंह तथा उसके भाइयों के बहुत से आदमी मारे गये। महाराज विशनसिंह के पीछे विरदसिंह, मर्यादसिंह, गिरवरसिंह और रणजीतसिंह क्रमशः ठिकाने के स्वामी हुए। रणजीतसिंह का प्रपौत्र नाहरसिंह मंगरोप का वर्तमान सरदार है।

मोई

जयसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री से महाराणा राजसिंह का विवाह हुआ था। इस सम्बन्ध के कारण उस(मनोहरदास)के पौत्र सबलसिंह का एक पुत्र महासिंह[1] मेवाड़ में गया और उसको मोई की जागीर मिली। मोई के सरदार महासिंह के वंशज हैं।

महासिंह के पीछे जुझारसिंह, सुरताणसिंह, पृथ्वीसिंह और अजीतसिंह क्रमशः ठिकाने के मालिक हुए। वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२)में जसवन्तराव होल्कर सिंधिया से गहरी हार खाकर मेवाड़ में गया, जहां सिंधिया की सेना उसका पीछा करती हुई जा पहुंची। तब होल्कर ने नाथद्वारे जाकर वहां के गोस्वामियों से रुपये वसूल करना और मंदिरों की सम्पत्ति लूटना चाहा। यह खबर पाकर महाराणा भीमसिंह ने कई सरदारों आदि के साथ भाटी अजीतसिंह को भी वहां भेजा। वहां से वे लोग गोस्वामी तथा मंदिरों की मूर्तियों को साथ लेकर चल दिये और ऊनवास होते हुए उदयपुर लौट गये। अजीतसिंह के चौथे वंशधर किशोरसिंह के निःसन्तान मर जाने पर मोरवण से दीपसिंह गोद गया, जिसका उत्तराधिकारी अमरसिंह मोई का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) महासिंह। (२) जुझारसिंह। (३) सुरताणसिंह। (४) पृथ्वीसिंह। (५) अजीतसिंह। (६) इन्द्रसिंह। (७) प्रतापसिंह। (८) भूपालसिंह। (६) किशोरसिंह। (१०) दीपसिंह। (११) अमरसिंह।

गुरलां

इस ठिकाने के सरदार मंगरोप के स्वामी महेशदास के छोटे भाई मोहकमसिंह के वंशज (मोहकमसिंहोत पूरावत) हैं और 'बाबा' इनकी उपाधि है।

डाबला

डाबले के सरदार बदनोर के ठाकुर मनमनदास के छठे पुत्र सबलसिंह के वंशज हैं। यह ठिकाना राठोड़ हरिसिंह को महाराणा राजसिंह के समय में मिला था।

झाडौल

इस ठिकाने के सरदार सादड़ी के स्वामी झाला देदा के द्वितीय पुत्र श्यामसिंह[1] के वंशज हैं और 'राज' उनकी उपाधि है। श्यामसिंह का तेरहवां वंशधर कुबेरसिंह झाडौल का वर्तमान सरदार है।

जामोली

जामोली के सरदार महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के नवें पुत्र जगमाल के द्वितीय पुत्र विजयसिंह[2] के वंशज हैं और 'बाबा' उनका ख़िताब है। विजयसिंह का सातवां वंशधर फ़तहसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) श्यामसिंह। (२) महासिंह। (३) अमरसिंह। (४) अगरसिंह। (५) मोहकमसिंह। (६) महासिंह (दूसरा)। (७) अमरसिंह (दूसरा)। (८) दुर्जनशाल। (९) नाहरसिंह। (१०) सालमसिंह। (११) बदनसिंह। (१२) देवीसिंह। (१३) सरदारसिंह। (१४) कुबेरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) विजयसिंह। (२) अगरसिंह। (३) पृथ्वीसिंह। (४) देवीसिंह। (५) नाथसिंह। (६) सरूपसिंह। (७) प्रतापसिंह। (८) फ़तहसिंह।

गाडरमाला

इस ठिकाने के स्वामी गुरलां के पूरावत बाबा बख्तसिंह के भाई भूपतसिंह के वंशधर हैं और उनकी भी उपाधि 'बाबा' है। भूपतिसिंह के वंशज केसरीसिंह के निःसन्तान मर जाने से उक्त ठिकाने पर राज्य का अधिकार है।

मुरोली

मुरोली के स्वामी जयसलमेर से आये हुए भाटी अमरसिंह के वंशज हैं। अमरसिंह[1] का आठवां वंशधर मोहनसिंह ठिकाने का वर्तमान सरदार है।

दौलतगढ़

दौलतगढ़ के सरदार देवगढ़ के रावत गोकुलदास (प्रथम) के चौथे पुत्र दौलतसिंह[2] के वंशज हैं।

दौलतगढ़ की जागीर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में दौलतसिंह को दी गई। वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय रणबाज़खां के साथ की लड़ाई में बांदनवाड़े के पास बड़ी वीरता से लड़ता हुआ अपने पुत्र कल्याणसिंह सहित मारा गया। उस (दौलतसिंह) का दूसरा वंशधर ईशरदास माधवराव सिंधिया के उदयपुर के घेरे के समय जलबुर्ज के मोर्चे पर नियुक्त होकर लड़ा। उसने महापुरुषों के साथ की टोपलमगरी और गंगार की लड़ाइयों में भी बड़ी वीरता दिखलाई।

ईशरदास के पांचवें वंशधर मदनसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह दौलतगढ़ का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) अमरसिंह। (२) केसरीसिंह। (३) भारतसिंह। (४) किशनसिंह। (५) माधवसिंह। (६) शिवसिंह। (७) सुमेरसिंह। (८) शिवनाथसिंह। (९) मोहनसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) दौलतसिंह। (२) जगत्सिंह। (३) ईशरदास। (४) बिशनसिंह। (५) विजयसिंह। (६) रघुनाथसिंह। (७) नवलसिंह। (८) मदनसिंह। (९) उम्मेदसिंह।

साटोला

साटोले के सरदार सलूंबर के रावत केसरीसिंह के चौथे पुत्र रोड़सिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है। यह जागीर महाराणा जगत्‌सिंह (दूसरे) के समय रोड़सिंह को मिली, जिसका छठा वंशधर दलपतसिंह साटोले का वर्तमान स्वामी है।

बसी

बसी के स्वामी देवगढ़ के रावत गोकुलदास (प्रथम) के छोटे पुत्र सबलसिंह[2] के वंशज हैं।

सबलसिंह के ग्यारहवें वंशधर वैरीसाल का पौत्र दौलतसिंह बसी का वर्तमान स्वामी है।

जीलोला

इस ठिकाने के सरदार आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के छोटे पुत्र नाथसिंह के वंशज हैं। महाराणा राजसिंह (दूसरे) ने उसको जीलोले की जागीर दी।

गुड़लां

गुड़लां के सरदार कोठारिये के चौहानों के वंशज हैं और 'राव' उनकी उपाधि है। रत्नसिंह[3] के वंशधर पद्मसिंह का प्रपौत्र सोहनसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) रोड़सिंह। (२) उम्मेदसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) चमनसिंह। (५) चतरशाल। (६) तख़्तसिंह। (७) दलपतसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) सबलसिंह। (२) अचलदास। (३) अभयराम। (४) मोपसिंह। (५) पृथ्वीराज। (६) मेघराज। (७) भारतसिंह। (८) शिवसिंह। (९) डूंगरसिंह। (१०) रोड़सिंह। (११) अर्जुनसिंह। (१२) वैरीसाल। (१३) रतनसिंह। (१४) दौलतसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) रत्नसिंह। (२) उदयसिंह। (३) पद्मसिंह। (४) हम्मीरसिंह। (५) रत्नसिंह (दूसरा)। (६) सोहनसिंह।

ताल

ताल के सरदार आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के पुत्र मानसिंह के छोटे पुत्र रामसिंह[1] के वंशज हैं। रामसिंह का आठवां वंशधर मोहकमसिंह ताल का वर्तमान स्वामी है।

परसाद

परसाद के सरदार महाराणा प्रतापसिंह के वंशज हैं। यह ठिकाना महाराणा राजसिंह (द्वितीय) के समय चन्द्रसेन के पुत्र कल्याणसिंह[2] को दिया गया। कल्याणसिंह का सातवां वंशधर शिवसिंह परसाद का वर्तमान स्वामी है।

सिंगोली

सिंगोली के सरदार मंगरोप के स्वामी महेशदास के छोटे भाई मोहकमसिंह के वंशज (मोहकमसिंहोत पूरावत) हैं और उनका खिताब 'बाबा' है।

वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६९) में महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने नवलसिंह[3] को सिंगोली की जागीर दी। नवलसिंह के पुत्र जगत्सिंह का प्रपौत्र हरिसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

बांसड़ा

बांसड़े के सरदार कर्यावालों के वंशज हैं। यह जागीर उर्जनसिंह[4] को महाराणा भीमसिंह ने दी। उर्जनसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह का प्रपौत्र मोहबतसिंह बांसड़े का वर्तमान अधिकारी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) रामसिंह। (२) प्रतापसिंह। (३) ज़ोरावरसिंह। (४) जगसिंह। (५) नाहरसिंह। (६) उर्जनसिंह। (७) बख्तावरसिंह। (८) शिवदानसिंह। (९) मोहकमसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) कल्याणसिंह। (२) जसवंतसिंह। (३) मोहकमसिंह। (४) पृथ्वीसिंह। (५) नवलसिंह। (६) दीपसिंह। (७) रायसिंह। (८) शिवसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) नवलसिंह। (२) जगत्सिंह। (३) मानसिंह। (४) शिवदानसिंह। (५) हरिसिंह।

(४) वंशक्रम—(१) उर्जनसिंह। (२) लक्ष्मणसिंह। (३) रघुनाथसिंह। (४) हंमीरसिंह। (५) मोहबतसिंह।

कणतोड़ा

कणतोड़े के सरदार छप्पन्या (छप्पन प्रदेश) के राठोड़ हैं। छप्पन्या राठोड़ों की दो शाखाएं-कोलावत और जगावत—हैं। कणतोड़े के स्वामी कोलावत राठोड़ हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है। भूपालसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

मच्यॉखेड़ी

इस ठिकाने के सरदार भूपसिंह[1] सोलंकी के, जिसे महाराणा भीमसिंह के समय यह ठिकाना मिला, वंशज हैं और 'राव' उनका ख़िताब है। भूपसिंह का प्रपौत्र विजयसिंह मच्यॉखेड़ी का वर्तमान स्वामी है।

ग्यानगढ़

ग्यानगढ़ के सरदार देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह के दूसरे पुत्र गोपालदास (करेड़ावाले) के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में गोपालदास के दूसरे पुत्र ग्यानसिंह[2] को ग्यानगढ़ की जागीर दी गई। ग्यानसिंह के प्रपौत्र रणजीतसिंह का पुत्र शंभुसिंह ग्यानगढ़ का वर्तमान सरदार है।

नीमड़ी

नीमड़ी के सरदार मारवाड़ के राव सलखा के ज्येष्ठ पुत्र मल्लीनाथ (माला) के वंशज हैं और महेचे राठोड़ कहलाते हैं। मल्लीनाथ के वंश में मेघराज हुआ, जिसका पुत्र कल्ला[3] महाराणा उदयसिंह की सेवा में जा रहा,

---

(१) वंशक्रम—(१) भूपसिंह । (२) माधवसिंह । (३) बख़्तावरसिंह । (४) विजयसिंह ।

(२) वंशक्रम—(१) ग्यानसिंह । (२) रूपसिंह । (३) रघुनाथसिंह । (४) रणजीतसिंह । (५) शंभूसिंह ।

(३) वंशक्रम—(१) कल्ला । (२) बाघसिंह । (३) चन्दनसिंह । (४) मोहनदास । (५) अमरसिंह । (६) भीमसिंह । (७) मेघराज । (८) पृथ्वीराज ।

उसने उसको कोशीथल की जागीर दी। वह अकबर की चित्तोड़ की चढ़ाई के समय राठोड़ जयमल के साथ रहकर लड़ता हुआ मारा गया। कल्ला का पुत्र बाघसिंह हल्दीघाटी की लड़ाई में काम आया। उसके पुत्र चन्दनसिंह ने महाराणा अमरसिंह की सेवा में रहकर लड़ते हुए वीरगति पाई। उसका उत्तराधिकारी मोहनदास ऊंटाले की लड़ाई में खेत रहा। मोहनदास के पुत्र अमरसिंह को महाराणा अमरसिंह ने भैंसरोड़गढ़ में जागीर दी। अमरसिंह का क्रमानुयायी उसका पुत्र भीमसिंह हुआ। जब महाराणा राजसिंह ने मालपुरे को लूटा उस समय बहुतसा द्रव्य भीमसिंह के हाथ लगा। उसका उत्तराधिकारी मेघराज महाराणा राजसिंह की सेना में रहकर औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयों में लड़ा। महाराणा जयसिंह के वक्त में वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में नीमड़ी की तरफ़ के भीलों ने उपद्रव किया, जिसपर उक्त महाराणा ने उस (मेघराज) को सेना सहित उनपर भेजा। उसने बहुत से भीलों को मारकर उनका उपद्रव शान्त किया। जिससे महाराणा ने नीमड़ी की जागीर उसको दी।

मेघराज का उत्तराधिकारी पृथ्वीराज और उसका नाथसिंह हुआ। महाराणा अरिसिंह की माधवराव सिंधिया के साथ की उज्जैन की लड़ाई में नाथसिंह सख़्त घायल हुआ, जिसपर महाराणा ने खास रुक्का लिखकर उसकी सान्त्वना की। उसके पीछे उम्मेदसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जो महाराणा भीमसिंह के समय होल्कर की सेना के साथ की हड़क्याखाल की लड़ाई में लड़ा और घायल हुआ। उसके उत्तराधिकारी विजयसिंह के समय कुछ चन्द्रावतों ने कोटा के एक सेठ की अफ़ीम मार्ग में लूटली और वे उस (विजयसिंह) की शरण में चले गये। इसकी शिकायत होने पर महाराणा जवानसिंह ने उनको सौंप देने के लिए विजयसिंह से कहलाया, परन्तु उसके वैसा न करने पर महाराणा ने नीमड़ी पर सेना भेजी और लड़ाई हुई, जिसमें वह लड़ता हुआ मारा गया। फिर महाराणा ने उसके पुत्र लक्ष्मणसिंह को ठिकाना दे दिया। उसका प्रपौत्र धोकलसिंह नीमड़ी का वर्तमान स्वामी है।

(९) नाथसिंह। (१०) उम्मेदसिंह। (११) विजयसिंह। (१२) लक्ष्मणसिंह। (१३) हंमीरसिंह। (१४) तेजसिंह। (१५) धोकलसिंह।

हींता

हींता के सरदार महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्तिसिंह के चौथे पुत्र चतुर्भुज शक्तावत के वंशज हैं।

पहले पहल महाराणा जगत्सिंह के तीसरे पुत्र अरिसिंह को हींता जागीर में मिला था। उसके पीछे भगवत्सिंह, सूरतसिंह, सुन्दरसिंह और सामन्तसिंह हींता के स्वामी रहे। फिर महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय हींता राणावतों से खालसे कर लिया गया और वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में महाराणा भीमसिंह ने उपर्युक्त चतुर्भुज शक्तावत के आठवें वंशधर केसरीसिंह को प्रदान किया। केसरीसिंह[1] का पांचवां वंशधर अमरसिंह इस समय हींते का स्वामी है।

सेंमारी

सेंमारी के सरदार बानसी के रावत नरहरदास शक्तावत के वंशज हैं और उनका खिताब 'रावत' है। नरहरदास के वंशधर दुर्जनसिंह[2] को यह ठिकाना महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में मिला। दुर्जनसिंह का छठा वंशधर खुमाणसिंह सेंमारी का वर्तमान स्वामी है।

तलोली

तलोली के स्वामी देवगढ़वालों के कुटुम्बी सुलतानसिंह[3] चूंडावत के वंशज हैं। सुलतानसिंह को यह जागीर महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय मिली। सुलतानसिंह के वंशधर बुधसिंह का प्रपौत्र वैरीशाल इस जागीर का वर्तमान अधिकारी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) केसरीसिंह। (२) दीपसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) लालसिंह। (५) शिवनाथसिंह। (६) अमरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) दुर्जनसिंह। (२) सामन्तसिंह। (३) जसवंतसिंह। (४) ज़ालिमसिंह। (५) ज़ोरावरसिंह। (६) नाहरसिंह। (७) खुमाणसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) सुलतानसिंह। (२) खुमाणसिंह। (३) चतुर्भुज। (४) फ़तहसिंह। (५) बुधसिंह। (६) रघुनाथसिंह। (७) अर्जुनसिंह। (८) वैरीशाल।

रूद

यह ठिकाना शक्तावत देवीसिंह[1] को महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने प्रदान किया। देवीसिंह के पौत्र सुजानसिंह का प्रपौत्र इन्द्रसिंह रूद का वर्तमान स्वामी है।

सिआड़

यह ठिकाना सूरजमल[2] शक्तावत को, महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने प्रदान किया। सूरजमल के वंशधर दलपतिसिंह का प्रपौत्र भूपालसिंह सिआड़ का वर्तमान सरदार है।

पानसल

पानसल के सरदार महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्तिसिंह के बेटे भाण के कनिष्ठ पुत्र बैरीशाल के वंशज हैं। उसका सातवां वंशधर किशनसिंह[3] हुआ, जिसको यह ठिकाना मिला। किशनसिंह के रामसिंह, हंमीरसिंह तथा सोहनसिंह तीन पुत्र हुए, जिनमें से रामसिंह तो अपने पिता के पीछे उसकी जागीर का मालिक हुआ और द्वितीय पुत्र हंमीरसिंह महाराज मोहकमसिंह के ज्येष्ठ पुत्र ज़ोरावरसिंह के निःसंतान मर जाने पर भींडर गोद गया।

रामसिंह के पुत्र हरनाथसिंह के कोई संतति न थी, जिससे उस(हरनाथसिंह)का उत्तराधिकारी सोहनसिंह का पौत्र कल्याणसिंह हुआ। कल्याणसिंह ने भी कोई पुत्र न होने के कारण भींडर के महाराज केसरीसिंह के द्वितीय पुत्र तेजसिंह को गोद लिया, जो उस(कल्याणसिंह)के पीछे पानसल का स्वामी हुआ।

---

(१) वंशक्रम—(१) देवीसिंह। (२) जवानसिंह। (३) सुजानसिंह। (४) गोपालसिंह। (५) निर्भयसिंह। (६) इंद्रसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) सूरजमल। (२) हम्मीरसिंह। (३) बख़्तावरसिंह। (४) दलपतिसिंह। (५) शक्तिसिंह। (६) उदयसिंह। (७) भूपालसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) किशनसिंह। (२) रामसिंह। (३) हरनाथसिंह। (४) कल्याणसिंह। (५) तेजसिंह।

भादू

भादू के सरदार आमेट की छोटी शाखावाले भारतसिंह चूंडावत (जयसिंहोत) के, जिसे यह जागीर महाराणा राजसिंह ने प्रदान की, वंशज हैं। भारतसिंह का वंशधर फतहसिंह इस ठिकाने का वर्तमान सरदार है।

कूंथवास

इस ठिकाने के सरदार भींडर के महाराज पूरणमल शक्तावत के दूसरे पुत्र चतरसाल[1] के वंशज हैं। चतरसाल का दसवां वंशधर ओंकारसिंह कूंथवास का वर्तमान स्वामी है।

पीथावास

पीथावास के सरदार आमेट के रावत मानसिंह चूंडावत के कनिष्ठ पुत्र रत्नसिंह[2] के, जिसे महाराणा जयसिंह के समय यह ठिकाना मिला, वंशज हैं। रत्नसिंह के वंशधर जयसिंह का प्रपौत्र अमरसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

जगपुरा

जगपुरे के सरदार बदनोर के ठाकुर जयसिंह राठोड़ के छोटे पुत्र संग्रामसिंह के वंशज हैं। संग्रामसिंह का वंशधर गजसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) चतरसाल। (२) गोपीनाथ। (३) केसरीसिंह। (४) पृथ्वीराज। (५) सूरजमल। (६) बुधसिंह। (७) भगवन्तसिंह। (८) चतुरसिंह। (९) हम्मीरसिंह। (१०) महासिंह। (११) ओंकारसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) रत्नसिंह। (२) उदयभानु। (३) दुर्जनशाल। (४) रूपसिंह। (५) संग्रामसिंह। (६) भारतसिंह। (७) तख्तसिंह। (८) जयसिंह। (९) चतुरसिंह। (१०) ज़ालिमसिंह। (११) अमरसिंह।

आटूंण

आटूंण के सरदार मंगरोप के बाबा (महाराज) जसवंतसिंह पूरावत के कनिष्ठ पुत्र चतरसिंह[1] के वंशज हैं और उनकी उपाधि 'बाबा' है। चतरसिंह को यह ठिकाना वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) ने प्रदान किया था।

उसका उत्तराधिकारी गुमानसिंह हुआ। उसके साथ महाराणा अरिसिंह (द्वितीय) की गद्दीनशीनी के पहिले से ही शत्रुता थी, जिससे वि० सं० १८२९ (ई० स० १७७३) में महाराणा ने उसपर चढ़ाई कर उसका क़िला घेर लिया। महाराणा उसे गिरफ़्तार कर अपमानित करना चाहता है यह जानकर उस वीर ने तेल से तराबोर अंगरखा तथा पाजामा पहना और उनमें आग लगा दी। फिर वह हाथ में नंगी तलवार लेकर क़िले से बाहर निकला और महाराणा की सेना पर टूट पड़ा। जीवित दशा में उसके पकड़े जाने की संभावना न होने से महाराणा ने उसपर गोली चलाने की आज्ञा दी। अन्त में उसने बहुत से शत्रुओं का संहार कर वीरगति पाई। इसके उपरान्त माघ सुदि ६ (ता० १ फरवरी) को महाराणा ने उसका ठिकाना अमरचन्द्र बड़वा को दे दिया, परन्तु थोड़े ही समय पीछे यह ठिकाना पूरावतों को वापस मिल गया। गुमानसिंह के पुत्र दौलतसिंह का प्रपौत्र गुलाबसिंह आटूंण का वर्तमान स्वामी है।

आर्ज्या

आर्ज्या के सरदार महाराणा जवानसिंह के मामा बरसोड़े (महीकांठा, गुजरात) के स्वामी जगत्सिंह के वंशज हैं। जगत्सिंह के दो पुत्र कुबेरसिंह[2] और ज़ालिमसिंह उक्त महाराणा के समय उदयपुर चले गये, जिनको उसने आर्ज्या और कलड़वास की जागीर शामिल में दी।

---

(१) वंशक्रम—(१) चतरसिंह। (२) गुमानसिंह। (३) दौलतसिंह। (४) सुजानसिंह। (५) देवीसिंह। (६) गुलाबसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) कुबेरसिंह। (२) फ़तहसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) ज़ोरावरसिंह। (५) अमरसिंह। (६) नाहरसिंह।

आर्ज्या की जागीर पहले पहल महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) के छोटे पुत्र पूरणमल (पूरा) के पोते मोहकमसिंह को मिली थी। उसके प्रपौत्र (रण-सिंह के पुत्र) प्रतापसिंह को मारकर उसका छोटा भाई पद्मसिंह वहां का स्वामी बन गया, पर पानसल के शक्तावतों ने वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में बालेराव की सहायता से आर्ज्या का ठिकाना उससे छीन लिया। इसके अनन्तर आर्ज्या की भौम प्रतापसिंह के ज्येष्ठ पुत्र उम्मेदसिंह के वंशजों के अधिकार में रही। महाराणा भीमसिंह के राज्य-समय आर्ज्या की जागीर शक्तावतों से छीनकर उम्मेदसिंह के पुत्र खुंमाणसिंह को दी गई।

खुंमाणसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र चन्दनसिंह हुआ। महाराणा भीमसिंह का विवाह बरसोड़ा (गुजरात) के जगत्सिंह चावड़े की कन्या से हुआ था। इसलिये वि० सं० १८९१ (ई० स० १८३४) में महाराणा जवानसिंह ने चन्दनसिंह से आर्ज्ये का ठिकाना छीनकर अपने मामा कुबेरसिंह और ज़ालिमसिंह चावड़ा को दे दिया। इसपर चन्दनसिंह ने बागी होकर आर्ज्ये से चावड़ों को मार भगाया। तब महाराणा ने वि० सं० १९०९ कार्तिक बदि १४ (ई० स० १८५२ ता० १० नवम्बर) को आर्ज्ये पर सेना भेजी। लड़ाई होने पर चन्दनसिंह मारा गया और उसके साथी क़ैद कर लिये गये। इसके बाद आर्ज्या पर चावड़ों का फिर अधिकार करा दिया गया।

कुबेरसिंह के वंश में आर्ज्या और ज़ालिमसिंह के वंश में कलड़वास की जागीर है। कुबेरसिंह का पुत्र फ़तहसिंह और उसके तीन पुत्र प्रतापसिंह, नाथसिंह और बख़्तावरसिंह हुए। प्रतापसिंह के कोई पुत्र न था, इसलिये उसके छोटे भाई नाथसिंह का पुत्र ज़ोरावरसिंह उसका उत्तराधिकारी बनाया गया। ज़ोरावरसिंह के भी कोई पुत्र न होने के कारण प्रतापसिंह के तीसरे भाई बख़्तावरसिंह का पुत्र अमरसिंह गोद गया। वह भी निःसन्तान मर गया, जिससे उसका उत्तराधिकारी कलड़वास के लक्ष्मणसिंह का पुत्र नाहरसिंह हुआ।

कलड़वास

कलड़वासवाले आर्ज्यों के सरदार कुबेरसिंह के भाई ज़ालिमसिंह[1] के वंशज हैं। ज़ालिमसिंह का उत्तराधिकारी कोलसिंह हुआ, जिसकी पुत्री से महाराणा फ़तहसिंह का विवाह हुआ और उसी के गर्भ से वर्तमान महाराणा भूपालसिंहजी का जन्म हुआ। कोलसिंह का उतराधिकारी अभयसिंह हुआ। उसके दो पुत्र हिम्मतसिंह और लछमणसिंह हुए। हिम्मतसिंह का निःसन्तान देहान्त होने पर उसका भाई लछमणसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो इस समय विद्यमान है। वर्तमान महाराणा भूपालसिंहजी ने उसे कोदूकोटा नाम का गांव भी जागीर में दिया है।

---

(१) वंशक्रम—(१) ज़ालिमसिंह। (२) कोलसिंह। (३) अभयसिंह। (४) हिम्मतसिंह। (५) लछमणसिंह।

मेवाड़ के प्रसिद्ध घराने

भामाशाह का घराना

भामाशाह कावड़िया गोत्र के ओसवाल जाति के महाजन भारमल का बेटा था। महाराणा सांगा ने उस (भारमल) को रणथंभोर का क़िलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल (बूंदीवाला) वहां का क़िलेदार नियत हुआ उस समय भी रणथंभोर का बहुतसा काम उसी के सुपुर्द रहा। उसका बेटा भामाशाह वीर प्रकृति का पुरुष था और वह प्रसिद्ध हल्दीघाटी की लड़ाई में कुंवर मानसिंह की सेना से लड़ा था। पीछे से महाराणा प्रतापसिंह ने महासानी रामा के स्थान पर उसको अपना प्रधान मंत्री बनाया।

(भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द)

महाराणा ने चावंड में रहते समय भामाशाह को मालवे पर चढ़ाई करने के लिये भेजा, जहां से वह २५ लाख रुपये और २० हज़ार अशर्फ़ियां दण्ड में लेकर चूलिया गांव में महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ और वह सारी रक़म उसने महाराणा को भेंट की। फिर बादशाह अकबर ने मिर्ज़ाखां (खानखाना) को फौज देकर मालवे की ओर भेजा, जिससे भामाशाह जाकर मिला। मिर्ज़ाखां ने महाराणा को बादशाही सेवा में ले जाने का बहुत कुछ यत्न किया, परन्तु उस (भामाशाह) ने उसे स्वीकार न किया। जब दीवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया गया उस वक्त भामाशाह भी महाराणा के राजपूत सरदारों के साथ लड़ने को गया था।

महाराणा कुंभा और सांगा की संचित की हुई सारी सम्पत्ति बहादुरशाह की पहली चढ़ाई के पूर्व ही मुसलमानों के हाथ न लगे इस विचार से चित्तोड़ से हटाकर पहाड़ी प्रदेश में सुरक्षित की गई थी। इसी से बहादुरशाह और अकबर को चित्तोड़ विजय करने पर कुछ भी द्रव्य वहां से हाथ न लग सका। भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड़ राज्य का खज़ाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से

रखा जाता था, जिसका ब्यौरा वह (भामाशाह) एक बही में रखा करता था और आवश्यकता पड़ने पर उन स्थानों से द्रव्य निकालकर लड़ाई का खर्च चलाया करता था। वह महाराणा प्रतापसिंह के पीछे महाराणा अमरसिंह का प्रधान बना और महाराणा की सम्पत्ति की व्यवस्था भी पहले के अनुसार वही करता रहा। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों उसने उपर्युक्त बही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसमें राज्य के ख़ज़ाने का ब्यौरेवार विवरण है, इसलिये इसको महाराणा के पास पहुंचा देना। भामाशाह की मृत्यु वि० सं० १६५६ माघ सुदि ११ (ई० स० १६०० ता० १६ जनवरी) को हुई।

भामाशाह का नाम मेवाड़ में वैसा ही प्रसिद्ध है जैसा गुजरात में वस्तुपाल-तेजपाल का। वह वीर, राज्यप्रबन्धकुशल, सच्चा स्वामिभक्त और विश्वासपात्र सेवक था। महाराणा प्रतापसिंह और अमरसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसकी बहुत कुछ ख़ातिर की। उसकी हवेली चित्तोड़ में तोपखाने के मकान के सामनेवाले क़वायद के मैदान के पश्चिमी किनारे पर थी, जिसको महाराणा सज्जनसिंह ने क़वायद का मैदान तैयार कराते समय तुड़वा दिया।

भामाशाह का भाई ताराचन्द भी वीर प्रकृति का पुरुष था और हल्दीघाटी की लड़ाई में वह अपने भाई के साथ रहकर लड़ा था। महाराणा प्रतापसिंह की आज्ञा से ताराचन्द सेना लेकर मालवे में रामपुरे की ओर गया, जिसको लौटते समय शाहबाज़खां ने घेर लिया। वह (ताराचन्द) वहां से लड़ता हुआ बसी के समीप पहुंचा, जहां घायल होकर घोड़े से गिर गया, परन्तु बसी का स्वामी देवड़ा साईंदास उसको उठाकर अपने क़िले में ले गया और उसने उसका इलाज़ कराया।

ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम भी रहा था और उस समय सादड़ी में रहता था। उसने सादड़ी के बाहर एक बारादरी और बावड़ी बनवाई। उसके पास ही ताराचन्द, उसकी चार स्त्रियें, एक खवास, छः गायनियां, एक गवैया और उस(गवैये)की औरत की मूर्तियां पत्थरों पर खुदी हुई हैं।

महाराणा अमरसिंह ने भामाशाह के देहान्त होने पर उसके पुत्र जीवाशाह को अपना प्रधान बनाया, जो अपने पिता की लिखी हुई बही के अनुसार जगह जगह से ख़ज़ाना निकालकर लड़ाई का खर्च चलाता रहा। सुलह होने

पर कुंवर कर्णसिंह जब बादशाह जहांगीर के पास अजमेर गया उस समय यह राजभक्त प्रधान (जीवाशाह) भी उसके साथ था। उसका देहान्त हो जाने पर महाराणा कर्णसिंह ने उसके पुत्र अक्षयराज को प्रधान नियत किया। इस प्रकार तीन पुश्त तक स्वामिभक्त भामाशाह के घराने में प्रधान-पद रहा।

इस घराने के सभी पुरुष राज्य के शुभचिन्तक रहे। उसके वंश में इस समय कोई प्रसिद्ध पुरुष नहीं रहा, तो भी उसके मुख्य वंशधर की यह प्रतिष्ठा चली आती रही कि जब महाजनों में समस्त जाति-समुदाय का भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछे से महाजनों ने उसके वंशवालों के तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा सरूपसिंह ने उसके पूर्वजों की अच्छी सेवा का स्मरण कर इस विषय की जांच कराई और यह आज्ञा दी कि महाजनों की जाति में बावनी (सारी जाति का भोजन) तथा चौके का भोजन व सिंहपूजा में पहले के अनुसार तिलक भामाशाह के मुख्य वंशधर के ही किया जाय। इस विषय का एक परवाना उक्त महाराणा ने वि० सं० १९१२ (चैत्रादि १९१३) ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १८५६) को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावड़िया के नाम कर दिया। तब से भामाशाह के मुख्य वंशधर के पीछा तिलक होने लगा। फिर महाजनों ने महाराणा की उक्त आज्ञा का पालन न किया, जिससे महाराणा फ़तहसिंह के समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १८९५) को मुक़द्दमा फैसल होकर उसके तिलक किये जाने की फिर आज्ञा दी गई।

संघवी दयालदास का घराना

दयालदास संघवी (सरूपरया) गोत्र के ओसवाल महाजन तेजा का प्रपौत्र, गज्जू का पौत्र एवं राजू का चौथा पुत्र था। उसके पूर्व पुरुष सीसोदिये क्षत्रिय थे, परन्तु जब से उन्होंने जैनधर्म स्वीकार किया, तब से उनकी गणना ओसवालों में हुई। इसके अतिरिक्त उसके पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध में और कोई वृत्तान्त नहीं मिलता।

दयालदास पहिले उदयपुर के एक ब्राह्मण पुरोहित के यहां नौकर था, उसकी उन्नति के बारे में यह प्रसिद्धि है कि महाराणा राजसिंह की एक राणी ने

जिससे कुंवर सरदारसिंह का जन्म हुआ था, ज्येष्ठ कुंवर सुल्तानसिंह को मरवाने और अपने पुत्र को राज्य दिलाने का प्रपंच रचा। उसके शक दिलाने पर महाराणा ने कुंवर सुल्तानसिंह को मार डाला। फिर उस(राणी)ने महाराणा को विष दिलाने के लिए उसी पुरोहित को, जिसके यहां दयालदास नौकर था, पत्र लिखा, जो उसने अपने कटार के खीसे में रख लिया। संयोगवश एक दिन किसी त्यौहार के अवसर पर दयालदास ने अपने ससुराल देवाली नामक ग्राम में जाते समय रात्रि हो जाने से पुरोहित से अपनी रक्षा के लिए कोई शस्त्र मांगा। पुरोहित ने भूलकर वह कटार उसे दे दिया, जिसके खीसे में उपर्युक्त पत्र था। दयालदास कटार लेकर वहां से रवाना हुआ, घर जाने पर उस कटार के खीसे में कोई कागज़ होना दीख पड़ा और आश्चर्य के साथ वह उस कागज़ को निकालकर पढ़ने लगा। जब उसे उक्त पत्र से महाराणा की जान का भय दीख पड़ा तब उसने तत्काल महाराणा के पास पहुंचकर वह पत्र उसे बतलाया, इसपर उक्त महाराणा ने राणी और पुरोहित को मार डाला। जब इस घटना का हाल कुंवर सरदारसिंह ने सुना तब उसने भी विष खाकर आत्मघात कर लिया।

दयालदास की उक्त सेवा से प्रसन्न हो महाराणा ने उसे अपनी सेवा में रखा और बढ़ते बढ़ते वह उसका प्रधान (मन्त्री) हो गया। वह वीर प्रकृति का पुरुष होने के कारण, बादशाह औरंगज़ेब की मेवाड़ पर की चढ़ाई के समय शाही सेना-द्वारा कई मंदिर तोड़े गये, जिनका बदला लेने के लिए ससैन्य मालवे में भेजा गया। उस(दयालदास)ने वीरतापूर्वक उधर की शाही सेना से मुकाबला किया। उसने कई स्थानों से पेशकश लेकर वहां पर महाराणा के थाने नियत किये। कई मस्जिदें गिरवा दीं और मालवे की लूट से कई ऊंट सोने के भरे हुए लाकर महाराणा के नज़र किये।

उस(दयालदास)ने महाराणा जयसिंह के राजत्वकाल में चित्तोड़स्थित शाहज़ादे आज़म की सेना पर रात्रि को आक्रमण किया। शाहज़ादे के सेनापति दिलावरखां और उसके बीच युद्ध हुआ, जिसमें उसकी बड़ी हानि हुई। वह (दयालदास) अपनी स्त्री को मुसलमानों के हाथ में न पड़े इस विचार से मारकर लौट गया। उसने राजसमन्द की पाल के समीप पहाड़ी पर संगमर्मर

का आदिनाथ का एक विशाल चतुर्मुख जैन-मंदिर बड़ी लागत से बनवाया, जो उसकी कीर्ति का स्मारक है। उसका पुत्र सांवलदास हुआ, पीछे से इस वंश में कोई प्रसिद्ध पुरुष हुआ हो ऐसा पाया नहीं जाता।

पंचोली बिहारीदास का घराना

बिहारीदास भटनागर जाति का पंचोली (कायस्थ) था। उसके पूर्वज पहले जालोर (जोधपुर राज्य में) में रहते थे। जालोर का राज्य चौहानों से अलाउद्दीन ख़िलजी ने वि० सं० १३६६[1] (ई० स० १३१२) में छीन लिया, जिसके पीछे वे मेवाड़ में चले गये और महाराणाओं की सेवा में उनका प्रवेश हुआ। लाला कान्हा के तीन पुत्र–रूपा, बिहारीदास और देवीदास–हुए। बिहारीदास पढ़ा लिखा और बुद्धिमान होने के कारण महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का कृपापात्र बना। जब बादशाह औरंगज़ेब दक्षिण की लड़ाइयों में फंसा हुआ था उस समय ज़ुल्फ़िकारखां बख़्शी ने महाराणा की तरफ़ से पंचोली बिहारीदास और सलामतराय मुन्शी की मारफ़त दक्षिण में जमीयत भेजने को कहलाया, जिसपर महाराणा ने अपने काका कीर्तिसिंह को मय जमीयत के रवाना किया[2]। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह और जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह अपने अपने राज्य पीछे पाने की आशा से बादशाह बहादुरशाह के साथ, जो दक्षिण में जा रहा था, मंडलेश्वर तक रहे, परन्तु जब देखा कि राज्य मिलने की कोई आशा नहीं है और उनपर बादशाह की तरफ़ से निगरानी की जाती है तब उसे बिना सूचना दिये ही वे अपने डेरे-डंडे छोड़कर उदयपुर की ओर चले, और उन्होंने अपने आने की सूचना पंचोली बिहारीदास-द्वारा महाराणा को दी।

बादशाह फ़र्रुख़सियर गद्दी पर बैठा उस समय बिहारीदास ने मेवाड़ का वकील बनकर बादशाह के दरबार में अच्छी प्रतिष्ठा पाई।

---

(१) मुहणोत नैणसी के अनुसार यह घटना वि० सं० १३६१ और फ़िरिश्ता के अनुसार वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) में हुई।

(२) महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का बख़्शी ज़ुल्फ़िकारख़ां के नाम का वि० सं० १७५९ का पत्र। वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ ७४८।

जब अपने पिता गोपालसिंह (चन्द्रावत) से रामपुरा छीननेवाला रत्नसिंह (इस्लामखां) मालवे के सूबेदार अमानतखां के साथ की सारंगपुर के पास की लड़ाई में मारा गया तब महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने अपनी सेना भेजकर गोपालसिंह को पीछा रामपुरे पर बिठला दिया और उसे इलाक़े का कुछ हिस्सा देकर बाक़ी अपने राज्य में मिला लिया, जिसका फ़रमान बिहारीदास पंचोली ने बादशाह फ़र्रुख़सियर से प्राप्त किया। इससे उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और वह उदयपुर राज्य का प्रधान बनाया गया।

दिल्ली में त्रिपोलिया बनने के बाद और जगह त्रिपोलिया बनाने व अगड़ पर हाथी लड़ाने की अन्य राजाओं को मनाई थी[1]। वि० सं० १७७३ में बिहारीदास बादशाह फ़र्रुख़सियर से इन दोनों बातों की स्वीकृति ले आया।

जब महाराजा अजीतसिंह ने राठोड़ दुर्गादास का सारा उपकार भूलकर उसको मारवाड़ से निकाल दिया तब वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की सेवा में जा रहा। महाराणा ने उसे विजयपुर की जागीर और १५००० रु० मासिक वेतन देकर अपने पास बड़े सम्मान से रखा, फिर उसको रामपुरे का हाकिम नियुक्त किया। वहां से उसने अपने ठिकाने पर की छोटी छोटी लागतों को छुड़ाने की सिफ़ारिश का पत्र वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ६ को दीवान बिहारीदास के नाम लिखा था।

उक्त महाराणा के समय डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के स्वामी महाराणा की आज्ञा की अवहेलना करते थे, इसलिये महाराणा ने उस(बिहारीदास)को सेना सहित उनपर भेजा। वह अपनी बुद्धिमानी से उन तीनों राजाओं को समझाकर महाराणा की सेवा में ले आया।

जब महाराजा सवाई जयसिंह अपने दूसरे कुंवर माधोसिंह को महाराणा से रामपुरे का परगना दिलाने की इच्छा से उदयपुर गया और धायभाई नगराज की मारफ़त उसके लिये कोशिश की तब बिहारीदास ने उसका विरोध

(१) उदयपुर राज्य में त्रिपोलिया बनाने तथा अगड़ पर हाथी लड़ाने की रीति पहले से चली आती थी, क्योंकि चित्तोड़ और कुंभलगढ़ पर त्रिपोलिये, एवं जयसमुद्र तथा राजसमुद्र के महलों के नीचे पुराने अगड़ विद्यमान हैं। यह स्वीकृति केवल सरिश्ते के विचार से प्राप्त की हो, ऐसा पाया जाता है।

किया, जिसपर महाराजा ने उसके घर जाकर उसको समझाया कि हमारे घर का बखेड़ा मिटाना आपके हाथ में है, इसलिये इस काम में मेरी सहायता करें। इससे अनुमान हो सकता है कि उस समय बिहारीदास की प्रतिष्ठा कहां तक बढ़ी हुई थी। बिहारीदास की सलाह से ही वह परगना महाराणा ने अपने भानजे माधोसिंह को दे दिया।

वि० सं० १७९३ (ई० स० १७३६) में बिहारीदास का देहान्त होना बतलाते हैं। वह बड़ा बुद्धिमान्, स्वामि-भक्त और राजनीति में कुशल था। उदयपुर राज्य में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और जयपुर, जोधपुर आदि के महाराजा भी उसका बड़ा सम्मान करते थे। उसके पीछे उसके वंशजों में से कोई भी राज्य के उच्च पद पर नियत हुआ हो ऐसा पाया नहीं जाता। 'लखणा' नाम का एक कर मेवाड़ के गांवों पर लगाया गया है, जिसकी आमद का कुछ भाग अबतक उसके वंशजों को मिलता है।

बड़वा अमरचन्द का घराना

बड़वा अमरचन्द सनाढ्य ब्राह्मण था। उसके पूर्वज बाहर से मेवाड़ में आकर बसे थे। शंभुराम महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय महाराणा के 'रसोड़े' (पाकशाला) का अध्यक्ष था। उसका पुत्र अमरचन्द हुआ। जब उक्त महाराणा का कुंवर प्रतापसिंह करणविलास में नज़र कैद रक्खा गया उस समय उस(अमरचन्द)ने उसकी अच्छी सेवा की, इसलिये प्रतापसिंह ने गद्दी पर बैठते ही उस(अमरचन्द)की अच्छी सेवा के उपलक्ष्य में उसे 'ठाकुर' का ख़िताब और ताज़ीम देकर अपना मुसाहिब बनाया।

जब महाराणा अरिसिंह और सरदारों के बीच विरोध खड़ा हुआ और कितने एक सरदारों को महाराणा ने छल से मरवा डाला, उस समय मल्हारराव होल्कर मेवाड़ पर चढ़ाई कर ऊंटाले तक चला गया और ५१००००० रु० लेने के बाद लौटा, जिससे मेवाड़ की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। महाराणा ने अपने पक्ष के सरदारों की सेना की कमी देखकर गुजरात आदि से अरब और सिंधी सिपाहियों को अपनी सेना में भरती किया। विरोधी सरदारों ने

रत्नसिंह को गद्दी पर बिठाने के उद्योग में माधवराव सिंधिया को अपना मदद-गार बनाया और उज्जैन की लड़ाई में महाराणा के विरोधी सरदारों-द्वारा लाई हुई महापुरुषों (नागों) की बड़ी सेना की सहायता से मेवाड़ की सेना की हार हुई।

माधवराव के उदयपुर पर चढ़ आने का विचार सुनकर महाराणा और उसके पक्ष के सरदारों ने, उस समय की शोचनीय स्थिति को सम्भाल सके ऐसे किसी योग्य व्यक्ति को प्रधान बनाना आवश्यक समझा, अतः महाराणा ने अमरचन्द के घर जाकर पुनः प्रधान के पद को ग्रहण करने के लिए उससे आग्रह किया। इसपर अमरचन्द ने उत्तर दिया, "मैं स्पष्टवक्ता और मिज़ाज का तेज़ हूं। मैंने पहले भी जब काम किया तब पूरे अधिकार के साथ ही। आप किसी की सलाह मानते नहीं और अपनी इच्छा से सब कुछ करते हैं। इस समय की अवस्था बहुत विकट, वेतन न मिलने से सिपाही विद्रोही, खज़ाना खाली और प्रजा ग़रीब है अतएव यदि आप मुझे पूरे अधिकार दें तो कुछ उपाय किया जा सकता है"। महाराणा ने कहा "जो कुछ तुम कहोगे वही हम करेंगे"। इसपर उसने उस पद को स्वीकार कर लिया। उसने सोने चांदी के बर्तन मंगवाकर उनके कम क़ीमत के सिक्के बनवाये तथा रत्नों को गिरवे रखकर सेना का वेतन चुका दिया और माधवराव से लड़ने की सब प्रकार से तैयारी कर ली।

जब माधवराव की उदयपुर पर चढ़ाई हुई उस समय उसने गोला, बारूद, अन्न वग़ैरह सब सामान इकट्ठा कर अलग अलग मोर्चों पर सरदारों आदि को नियत किया और स्वयं कमल्यापोल (उदयपोल) पर ५०० अरब सिपाहियों सहित लड़ने को डटा रहा। छः महीने तक लड़ाई होती रही, परन्तु शहर उदयपुर पर माधवराव का अधिकार न हो सका। अन्त में सत्तर लाख रुपये लेकर माधवराव ने घेरा उठाकर लौट जाने की बात स्वीकार कर ली, परन्तु फिर उसने यह सोचकर कि शहर की लूट से हमें ज्यादा रुपये मिलेंगे उसने बीस लाख रुपये और लेना चाहा। इसपर क्रुद्ध होकर अमरचन्द ने, जो सन्धि-पत्र लिखा गया था, उसे फाड़ डाला और लड़ाई जारी रखी। कुछ दिनों बाद माधवराव ने अपनी तरफ़ से सुलह के लिए कहलाया तो अमरचन्द ने यही

उत्तर दिया कि अब तो हम सत्तर लाख रुपये नहीं देंगे। अन्त में साठ लाख रुपये लेकर सिंधिया को सुलह करनी पड़ी। फिर उसने साढ़े तीन लाख रुपये दफ़्तर ख़र्च अर्थात् अहलकारों की रिश्वत के मांगे, जो अमरचन्द ने स्वीकार किये। इस प्रकार अमरचन्द ने उदयपुर शहर की रक्षा कर ली।

सिंधिया के लौटने के बाद महाराणा के विरोधी सरदारों ने महापुरुषों के बड़े भारी सैन्य को एकत्र कर मेवाड़ पर चढ़ाई की और महाराणा के पक्ष के सरदारों को धमकियां देना व उनके गांवों को लूटना शुरू किया। यह ख़बर सुनते ही महाराणा अपने सरदारों तथा सैनिकों सहित उनसे लड़ने को चला तो अमरचन्द स्वयं भी लड़ने की इच्छा से महाराणा के साथ हो गया। टोपल-मगरी के पास दोनों सेनाओं का संघर्ष हुआ, जिसमें विद्रोही सेना भाग निकली।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय तो बड़वा अमरचन्द ने राज्य का काम अपनी इच्छानुसार कर राज्य की स्थिति संभाली, परन्तु अरिसिंह के पीछे उसका पुत्र हम्मीरसिंह बहुत छोटी अवस्था में मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ, जो देश की विकट स्थिति को संभालने में बिलकुल असमर्थ था। महाराणा के बालक होने के कारण राजमाता ने शासन प्रबन्ध अपनी इच्छानुसार कराना चाहा और उसके लिए उसने शक्तावत सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाना शुरू किया। शनैः शनैः उनकी सहायता से उसका प्रभाव इतना अधिक हो गया कि उसकी दासियों का भी हौसला बहुत बढ़ गया, जिससे वे किसी को कुछ नहीं समझती थीं।

अमरचन्द इसके विरुद्ध था। एक दिन उसकी कृपापात्री गूजर जाति की दासी रामप्यारी, जो बहुत वाचाल और घमंडिन थी, अमरचन्द से कुछ बुरी तरह पेश आई, जिसपर स्पष्टवक्ता अमरचन्द ने भी क्रोधावेश में उसे 'कहां की रांड' कह दिया। रामप्यारी ने इस बात को बढ़ाकर राजमाता से उसकी शिकायत की। वह इसपर बहुत क्रुद्ध हुई और अमरचन्द को दूर करने के लिए सलूंबर के रावत भीमसिंह से सहायता मांगी। अमरचन्द पहले से ही यह सोचकर अपने घर गया और अपना कुल ज़ेवर व असबाब छकड़ों में भरवाकर उसने ज़नानी ड्योढ़ी पर भिजवा दिया तथा वहां जाकर कहा 'मेरा कर्तव्य तो आप और आपके पुत्रों का हितचिन्तन करना है, उसमें चाहे

कितनी ही बाधाएं क्यों न उपस्थित हों। आपको तो यह चाहिये था कि मुझसे विरोध करने की अपेक्षा मेरी सहायता करतीं', परन्तु वह तो राज्याधिकार को अपने हाथ में रखना चाहती थी और अपनी दासियां आदि के हाथ का खिलौना बन जाने के कारण योग्यायोग्य का विचार न कर उसने अमरचन्द को विष दिलाने का प्रपंच रचा। उसी के परिणामस्वरूप कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हुई। उस समय उसके घर में से कफ़न के लिए पैसा भी न निकला, जिससे उसकी उत्तरक्रिया राज्य की तरफ़ से हुई। यह दुःखद घटना वि० सं० १८३१ के आस पास हुई।

अमरचन्द बुद्धिमान्, तेज़ मिज़ाज, स्पष्टवक्ता, वीर, अपनी बात पर दृढ़ रहनेवाला, निस्वार्थी और राज्य का सच्चा हितचिन्तक मन्त्री था और राज्य-हितचिन्तन में ही उसका प्राणान्त हुआ। उसने अपने समय में पीछोला तालाब के एक हिस्से को, जो अमरकुण्ड नाम से प्रसिद्ध है, जनता के आराम के लिए दोनों तरफ़ सुन्दर घाट सहित बनवाया, जो अब तक उसकी स्मृति को जीवित रखे हुए है।

उसके वंशज अद्यावधि महाराणा के 'रसोड़' (पाकशाला) पर नियत हैं।

मेहता अगरचन्द का घराना

अगरचन्द के पूर्वज चौहानों की देवड़ा शाखा के राजपूत थे। देवड़ा वंश में सागर नाम का पुरुष हुआ। उसका पुत्र बोहित्थ हुआ, जिससे उसके वंशज 'बोहिथरे' कहलाये। वह ११०० वीर पुरुषों को लेकर चित्तोड़ (चित्रकूट) के राजा राजसिंह (?) के पक्ष में लड़ता हुआ काम आया। बोहित्थ के पश्चात् उसका पुत्र श्रीकर्ण हुआ। उसने मत्स्येन्द्र दुर्ग को छीना और राणा की उपाधि धारण की। वह अपने ७०० राजपूतों के साथ किसी मुसलमान सुलतान के साथ की लड़ाई में काम आया। उसके समधर आदि चार पुत्र लड़ाई से पहिले ही अपनी माता के साथ अपने ननिहाल खेड़ी गांव में चले गये थे, जहां खरतर-गच्छ के जिनेश्वरसूरि (?) ने उनको जैन-धर्म की दीक्षा दी तब से वे जैन धर्मावलम्बी हुए और ओसवालों में उनकी गणना हुई।

समधर के पुत्र तेजपाल ने गुजरात के सुलतान को घोड़े आदि भेंट कर

उससे कुछ भूमि प्राप्त की और अणहिलपत्तन (पाटन) में रहने लगा। उस (तेजपाल) ने अनेक तीर्थों की यात्रा की। तेजपाल का पुत्र वील्हा मेवाड़ में गया और महाराणा से सम्मान प्राप्त कर चित्तोड़ में रहने लगा। राज्य से उसका सम्बन्ध क्रमशः बढ़ने लगा और महाराणा ने उसको अपना प्रधान बनाया। यहां से वह फिर पाटण में जा रहा और वहां उसने जैन प्रतिमा स्थापित कराई। वील्हा का सातवां वंशधर वत्सराज मारवाड़ के राव रणमल के पास जा रहा। रणमल के पीछे उसका पुत्र जोधा मारवाड़ का स्वामी हुआ। जोधा के ज्येष्ठ पुत्र विक्रम (बीका) के साथ वह जांगल देश को गया। बीका ने अपने बाहुबल से वहां नवीन राज्य स्थापित कर विक्रमपुर (बीकानेर) शहर बसाया और उसको अपनी राजधानी बनाया। वत्सराज उसका मंत्री रहा, जिसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। वत्सराज के वंशज बच्छावत मेहता कहलाये।

उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्मसिंह हुआ, जो बीका के पुत्र लूणकरण का मंत्री बना। उसने बीकानेर में नमीनाथ का मन्दिर बनवाया। कर्मसिंह का छोटा भाई वरसिंह राव लूणकरण के ज्येष्ठ पुत्र जैतसिंह का मंत्री बना। वरसिंह के पीछे उसका चौथा पुत्र नगराज भी राव जैतसिंह का मंत्री रहा। जोधपुर के राव मालदेव का बीकानेर पर चढ़ाई करने का विचार सुनकर जैतसिंह ने नगराज को शेरशाह की सहायता लेने के लिये दिल्ली भेजा, परन्तु उसके लौटने से पहिले ही मालदेव का आक्रमण हो गया और जैतसिंह मारा गया। पीछे से नगराज शेरशाह की सहायता लेकर आया। शेरशाह ने मालदेव से जांगल देश छुड़ाकर जैतसिंह के कुंवर कल्याणमल (कल्याणसिंह) को बीकानेर की गद्दी पर बिठाया। नगराज शेरशाह के साथ दिल्ली गया, जहां से लौटते समय अज-मेर में उसका देहान्त हुआ।

नगराज का सबसे छोटा पुत्र संग्राम शेरशाह के पास रहा, परन्तु कल्याणसिंह ने उसे बीकानेर बुला लिया। वह एक बार तीर्थ-यात्रा करता हुआ चित्तोड़ गया तो महाराणा उदयसिंह ने उसका सम्मान किया। संग्राम का पुत्र कर्मचन्द भी कल्याणसिंह का मंत्री हुआ। कल्याणसिंह के पीछे रायसिंह बीकानेर का स्वामी हुआ। उसका भी मंत्री कर्मचन्द ही रहा। उसके दो पुत्र सौभाग्यचन्द्र (सोभागचंद) और लक्ष्मीचन्द्र (लक्ष्मीचन्द) हुए। रायसिंह के

किसी कारण[1] उसपर अप्रसन्न हो जाने से वह सपरिवार बादशाह अकबर के पास दिल्ली चला गया और बादशाह ने उसे सम्मान के साथ अपने यहां रखा[2]। कर्मचन्द्र दिल्ली में रहते समय बादशाह से राजा रायसिंह की शिकायतें करने लगा, जिससे बादशाह उस(रायसिंह)से नाराज़ हो गया। रायसिंह दिल्ली गया उस समय कर्मचन्द्र बीमार था, इसलिये वह उसकी सान्त्वना करने के लिये उसके वहां गया और बहुत कुछ खेद प्रकट किया तथा आंखों में आंसू भर लाया। रायसिंह के चले जाने पर उसने अपने बेटों से कहा कि महाराजा के आंसू आने का कारण मेरी तकलीफ़ नहीं है, किन्तु वास्तविक कारण यह है कि वह मुझे सज़ा नहीं दे सका, इसलिये तुम उसके धोके में आकर बीकानेर मत जाना।

कर्मचन्द्र की मृत्यु के पीछे रायसिंह ने उसके पुत्रों की बहुत कुछ ख़ातिर की, परन्तु जब वह बुरहानपुर में बीमार हुआ उस समय उसने अपने छोटे बेटे सूरसिंह से कहा कि कर्मचन्द्र तो मर गया, परन्तु उसके बेटों को तुम मारना और मुझको मारने के लिये रचे हुए षड्यन्त्र में और जो जो लोग शरीक थे उनको भी दण्ड देना, क्योंकि वे दलपत को राज्य दिलाना चाहते थे। इसपर सूरसिंह ने अर्ज़ किया कि यदि मुझे राज्य मिला तो मैं आपकी आज्ञा के अनुसार उन लोगों को अवश्य दंड दूंगा। रायसिंह के पीछे बादशाह जहांगीर ने दलपत को बीकानेर का राज्य दिया, परन्तु जब वह उससे अप्रसन्न हो गया तो उसने उसको क़ैद कराकर सूरसिंह को वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में राजा बनाया। जब वह बादशाह से रुख़सत होकर बीकानेर जाने लगा तब उसने भागचन्द और लक्ष्मीचन्द को अपने पास बुलाकर पूरी तसल्ली दी। वे दोनों भी उसके दम में आ गये और सपरिवार बीकानेर चले गये। सूरसिंह

(१) जयसोम ने राजा रायसिंह के कर्मचन्द से अप्रसन्न होने का कारण नहीं बतलाया, परन्तु ऐसा माना जाता है कि रायसिंह को दगे से मारकर उसके पुत्र दलपत को गद्दी पर बिठाने का कितने एक लोगों ने षड्यन्त्र रचा, जिसमें उसका प्रधान कर्मचन्द भी शामिल था।

(२) यहांतक का वृत्तान्त 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकम्' नामक संस्कृत काव्य के आधार पर लिखा गया है। उसकी रचना माणिक्यमणि के शिष्य जयसोम ने वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) में लाहोर में की थी।

ने उन दोनों को मन्त्री-पद पर नियत किया और दो महीने तक ऐसी कृपा बतलाई कि वे पुरानी दुश्मनी को भूलकर बिलकुल ग़ाफ़िल हो गये। फिर एक दिन रात के वक्त सूरसिंह ने ४००० राजपूतों को उनको मारने के लिए भेजा तो वे भी अपने बालबच्चों और औरतों को मारकर अपने पास रहनेवाले ५०० राजपूतों सहित लड़कर काम आये। कर्मचन्द्र की एक स्त्री, जो भामाशाह की पुत्री थी, अपने पुत्र भाण सहित उदयपुर में थी जिससे उसका वही पुत्र बचने पाया[1]।

भाण का पुत्र जीवराज, उसका लालचन्द और उस(लालचन्द)का प्रपौत्र पृथ्वीराज हुआ। उसके दो पुत्र अगरचन्द और हंसराज हुए, जो राज्य के बड़े पदों पर रहे। महाराणा अरिसिंह ने अगरचन्द को मांडलगढ़ का क़िलेदार तथा उक्त ज़िले का हाकिम नियत किया। तब से मांडलगढ़ की क़िलेदारी उसके वंशजों में बराबर चली आ रही है। वह उक्त महाराणा का सलाहकार था और फिर मन्त्री बनाया गया। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की उज्जैन की माधवराव सिंधिया के साथ की लड़ाई में वह (अगरचन्द) लड़ा और घायल होने के बाद क़ैद हुआ, परन्तु रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह के भेजे हुए बावरी लोग उसको हिकमत से निकाल लाये। जब माधवराव सिंधिया ने उदयपुर पर घेरा डाला और लड़ाई शुरू हुई उस समय महाराणा ने उसको अपने साथ रक्खा। टोपलमगरी और गंगार के पास की महापुरुषों के साथ की लड़ाइयों में भी वह महाराणा की सेना के साथ रहकर लड़ा।

मेहता अगरचन्द

महाराणा हंमीरसिंह (दूसरे) के समय की मेवाड़ की विकट स्थिति सम्भालने में वह बड़वा अमरचन्द का सहायक रहा। जब शक्तावतों और चूंडावतों के झगड़ों के बाद आंबाजी इंगलिया की आज्ञानुसार उसके नायब गणेशपन्त ने शक्तावतों का पक्ष करना छोड़ दिया और प्रधान सतीदास तथा

(१) उदयपुर के मेहताओं की तवारीख़ में भाण को भोजराज का बेटा लिखा है। सम्भव है कि भोजराज या तो कर्मचन्द्र का तीसरा पुत्र हो या भागचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र में से किसी एक का पुत्र हो। यदि यह अनुमान ठीक हो तो भामाशाह की पुत्री का विवाह भागचन्द या लक्ष्मीचन्द में से किसी एक के साथ होना मानना पड़ेगा।

सोमचन्द गांधी का पुत्र जयचन्द क़ैद किये गये उस समय महाराणा भीमसिंह ने फिर अगरचन्द मेहता को अपना प्रधान बनाया। जब सिंधिया के सैनिक लकवा दादा और आंबाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपन्त के बीच मेवाड़ में लड़ाइयां हुई और उस(गणेशपन्त)ने भागकर हंमीरगढ़ में शरण ली तो लकवा उसका पीछा करता हुआ वहां भी जा पहुंचा। लकवा की सहायता के लिए महाराणा ने कई सरदारों को भेजा, जिनके साथ अगरचन्द भी था।

वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) के पौष महीने में मांडलगढ़ में अगरचन्द का देहान्त हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय से लगाकर महाराणा भीमसिंह तक उसने स्वामिभक्त रहकर उदयपुर राज्य की बहुत कुछ सेवा की और कई लड़ाइयों में वह लड़ा। उसने अपने अन्तिम समय अपने वंशजों के लिए राज्य की सेवा में रहते हुए किस प्रकार रहना, क्या करना और क्या न करना इत्यादि के सम्बन्ध में जो उपदेश लिखवाया है वह वास्तव में उसकी दूरदर्शिता, सच्ची स्वामिभक्ति और प्रकाण्ड अनुभव का सूचक है।

मेहता देवीचन्द

अगरचन्द के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द मन्त्री बना और जहाज़पुर का क़िला उसके अधिकार में रक्खा गया। थोड़े ही दिनों पीछे देवीचन्द के स्थान पर मौजीराम प्रधान बनाया गया और उसके पीछे सतीदास। उन दिनों आंबाजी इंगलिया का भाई बालेराव शक्तावतों तथा सतीदास प्रधान से मिल गया और उसने महाराणा के भूतपूर्व मन्त्री देवीचन्द को चूंडावतों का तरफ़दार समझकर क़ैद कर लिया, परन्तु थोड़े ही दिनों में महाराणा ने उसको छुड़ा दिया। झाला ज़ालिमसिंह ने बालेराव आदि को महाराणा की क़ैद से छुड़ाने के लिए मेवाड़ पर चढ़ाई की, जिसके खर्च में उसने जहाज़पुर का परगना अपने अधिकार में कर लिया और मांडलगढ़ का क़िला भी वह अपने हस्तगत करना चाहता था। महाराणा (भीमसिंह) ने उसके दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उसके नाम लिख तो दिया, परन्तु तुरन्त ही एक सवार को ढाल तलवार देकर मेहता देवीचन्द के पास मांडलगढ़ भेज दिया। देवीचन्द ने ढाल तलवार अपने पास भेजे जाने से अनुमान कर लिया कि महाराणा ने ज़ालिमसिंह के दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उस(ज़ालिमसिंह)को सौंपने की आज्ञा दी है, परन्तु ढाल और तलवार भेजकर मुझे लड़ाई

करने का आदेश दिया है। इसपर उसने क़िले की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया और वह लड़ने को सज्ज हो गया, जिससे ज़ालिमसिंह की अभिलाषा पूरी न हो सकी। कर्नल टॉड ने उदयपुर आकर राज्य-व्यवस्था ठीक की, उस समय देवीचन्द पुनः प्रधान बनाया गया, परंतु उसने शीघ्र ही इस्तीफ़ा दे दिया, क्योंकि उस दुहरी हुकूमत से प्रबन्ध में गड़बड़ी होती थी।

अगरचंद के तीसरे पुत्र सीताराम का बेटा शेरसिंह हुआ। महाराणा जवानसिंह के समय सरकार अंग्रेज़ी के ख़िराज़ के रु० ७००००० चढ़ गये, जिससे महाराणा ने मेहता रामसिंह के स्थान पर मेहता शेरसिंह को अपना प्रधान बनाया। शेरसिंह सच्चा और ईमानदार तो अवश्य बतलाया जाता था, परन्तु वैसा प्रबन्धकुशल नहीं था, जिससे थोड़े ही दिनों में राज्य पर कर्ज़ा पहले से अधिक हो गया, अतएव महाराणा ने एक ही वर्ष के बाद उसे अलग कर रामसिंह को पीछा प्रधान बनाया। वि० सं० १८८८ (ई० स० १८३१) में शेरसिंह को फिर दुबारा प्रधान बनाया। महाराणा सरदारसिंह ने गद्दी पर बैठते ही मेहता शेरसिंह को क़ैद कर मेहता रामसिंह को प्रधान बनाया। शेरसिंह पर यह दोषारोपण किया गया था कि महाराणा जवानसिंह के पीछे वह (शेरसिंह) महाराणा सरदारसिंह के छोटे भाई शेरसिंह के पुत्र शार्दूलसिंह को महाराणा बनाना चाहता था। क़ैद की हालत में उस (शेरसिंह) पर सख़्ती होने लगी तो पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराणा से उसकी सिफ़ारिश की, किन्तु उसके विरोधियों ने महाराणा को फिर बहकाया कि सरकार अंग्रेज़ी की हिमायत से वह आपको डराना चाहता है। अन्त में दस लाख रुपये देने का वादा कर वह (शेरसिंह) क़ैद से मुक्त हुआ, परन्तु उसके शत्रु उसको मरवा डालने के उद्योग में लगे, जिससे अपने प्राणों का भय जानकर वह मारवाड़ की ओर भाग गया।

मेहता शेरसिंह

जब महाराणा सरूपसिंह को राज्य की आमद खर्च का ठीक प्रबन्ध करने का विचार हुआ और अपने प्रीतिभाजन प्रधान रामसिंह पर अविश्वास हुआ तब उसने मेहता शेरसिंह को मारवाड़ से बुलाकर वि० सं० १९०१ (ई० स० १८४४) में उसको फिर अपना प्रधान बनाया। महाराणा अपने सरदारों की छटूंद चाकरी का मामला तै कराना चाहता था, इसलिये उसने मेवाड़ के

पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल रॉबिन्सन से संवत् १६०१ में एक नया क़ौलनामा तैयार कराया, जिसपर कई उमरावों ने दस्तख़त किये। महाराणा की आज्ञा से मेहता शेरसिंह ने भी उसपर हस्ताक्षर किये।

प्रधान का पद मिलते ही उसने महाराणा की इच्छानुसार राज्य-कार्य में सुव्यवस्था की और कर्ज़दारों के भी, महाराणा की मर्ज़ी के मुआफ़िक, फैसले कराने में उसने बड़ा प्रयत्न किया।

लावे (सरदारगढ़) के दुर्ग पर महाराणा भीमसिंह के समय से शक्तावतों ने डोडियों से क़िला छीनकर उसपर अपना अधिकार जमा लिया था। महाराणा सरूपसिंह के समय वहां के शक्तावत रावत चतरसिंह के काका सालिमसिंह ने राठोड़ मानसिंह को मार डाला तो उक्त महाराणा ने उसका कुंडई गांव ज़ब्त कर चतरसिंह को आज्ञा दी कि वह सालिमसिंह को गिरफ़्तार करे। चतरसिंह ने महाराणा के हुक्म की तामील न कर सालिमसिंह को पनाह दी, इसपर महाराणा ने वि० सं० १६०४ (ई० स० १८४७) में शेरसिंह के दूसरे पुत्र ज़ालिमसिंह[1] को ससैन्य लावे पर अधिकार करने को भेजा। उसने लावे के गढ़ पर हमला किया, किन्तु राज्य के ५०-६० सैनिक मारे जाने पर भी गढ़ की मज़बूती के कारण वह टूट नहीं सका। तब महाराणा ने प्रधान शेरसिंह को वहां पर भेजा। उसने लावे पर अधिकार कर लिया और चतरसिंह को लाकर महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत किया। महाराणा ने शेरसिंह की सेवा से प्रसन्न हो पुरस्कार में क़ीमती ख़िलअत, सीख के वक़्त बीड़ा देने और ताज़ीम की इज़्ज़त प्रदान करना चाहा, परन्तु उस (शेरसिंह) ने ख़िलअत और बीड़ा लेना तो स्वीकार किया और ताज़ीम के लिये इन्कार किया।

जब महाराणा सरूपसिंह ने सरूपसाही रुपया बनाने का विचार किया उस समय महाराणा की आज्ञानुसार उस (शेरसिंह) ने कर्नल रॉबिन्सन से

(१) ज़ालिमसिंह, मेहता अगरचन्द के दूसरे पुत्र उदयराम के गोद रहा, परन्तु उसके भी कोई पुत्र न था, इसलिये उसने मेहता पन्नालाल के तीसरे भाई तख़्तसिंह को गोद लिया। तख़्तसिंह गिर्वा व कपासन के प्रान्तों पर हाकिम रहा तथा महकमा देवस्थान का प्रबन्ध भी कई वर्षों तक उसके सुपुर्द रहा। महाराणा सज्जनसिंह ने उसे इजलास ख़ास और महद्राजसभा का सदस्य बनाया। वह सरल प्रकृति का कार्यकुशल व्यक्ति था।

लिखा पढ़ी कर गवर्नमेन्ट की स्वीकृति प्राप्त कर ली, जिससे सरूपसाही रुपया बनने लगा।

वि० सं० १९०७ (ई० स० १८५०) में बीलख आदि की पालों के भीलों और वि० सं० १९१२ (ई० स० १८५५) में पश्चिमी प्रांत के कालीवास आदि के भीलों को सज़ा देने के लिये शेरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सवाईसिंह भेजा गया, जिसने उनको सख़्त सज़ा देकर सीधा किया।

वि० सं० १९०८ में लुहारी के मीनों ने सरकारी डाक लूट ली, जिसकी गवर्नमेन्ट की तरफ़ से शिकायत होने पर महाराणा (सरूपसिंह) ने उनका दमन करने के लिये मेहता शेरसिंह के पौत्र (सवाईसिंह के पुत्र) अजीतसिंह को, जो उस समय जहाज़पुर का हाकिम था, भेजा और उसकी सहायता के लिये जालंधरी के सरदार अमरसिंह शक्तावत को भेजा। अजीतसिंह ने धावा कर छोटी और बड़ी लुहारी पर अधिकार कर लिया। मीने भागकर मनोहरगढ़ तथा देव का खेड़ा की पहाड़ी में जा छिपे, पर उनका पीछा करता हुआ वह भी वहां जा पहुंचा। मीनों की सहायता के लिये जयपुर, टोंक और बूंदी इलाक़ों के ४-५ हज़ार मीने भी आ पहुंचे। उनके साथ की लड़ाई में कुछ राजपूत मारे गये और कई घायल हुए, जिससे महाराणा ने अपने प्रधान शेरसिंह की अध्यक्षता में और सेना भेजी, जिसने मीनों का दमन किया। वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५६) में महाराणा ने मेहता शेरसिंह को अलग कर उसके स्थान में मेहता गोकुलचन्द को नियत किया, परन्तु सिपाही-विद्रोह के समय नीमच की सरकारी सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जला दी और ख़ज़ाना लूट लिया। डा० मरे आदि कई अंग्रेज़ वहां से भागकर मेवाड़ के केसुन्दा गांव में पहुंचे। वहां भी बाग़ियों ने उनका पीछा किया। कप्तान शावर्स ने यह ख़बर पाते ही महाराणा की सेना सहित नीमच की तरफ़ प्रस्थान किया। महाराणा ने अपने कई सरदारों को भी उक्त कप्तान के साथ कर दिया इतना ही नहीं, किन्तु ऐसे नाज़ुक समय में कार्यकुशल मंत्री का साथ रहना उचित समझकर महाराणा ने उस(शेरसिंह)को प्रधान की हैसियत से उक्त पोलिटिकल एजेन्ट के साथ कर दिया और जब तक विद्रोह शान्त न हुआ तब तक वह उसके साथ रहकर उसे सहायता देता रहा।

नींबाहेड़े के मुसलमान अफ़सर के बागियों से मिल जाने की ख़बर सुन-कर कप्तान शावर्स ने मेवाड़ी सेना के साथ वहां पर चढ़ाई की, जिसमें मेहता शेरसिंह अपने पुत्र सवाईसिंह सहित शामिल था। जब नींबाहेड़े पर कप्तान शावर्स ने अधिकार कर लिया, तब वह (शेरसिंह) सरदारों की जमीयत सहित वहां के प्रबन्ध के लिए नियत किया गया।

महाराणा ने शेरसिंह को पहले ही अलग तो कर दिया था, अब उससे भारी जुर्माना भी लेना चाहा। इसकी सूचना पाने पर राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल (जॉर्ज लॉरेन्स) वि० सं० १९१७ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १८६० ता० १ दिसम्बर) को उदयपुर पहुंचा और शेरसिंह के घर जाकर उसने उसको तसल्ली दी। जब महाराणा ने शेरसिंह के विषय में उस(लॉरेन्स) से चर्चा की तब उसने उस(महाराणा)की इच्छा के विरुद्ध उत्तर दिया। उसी तरह मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर ने भी शेरसिंह से जुर्माना लेने का विरोध किया। इससे महाराणा और पोलिटिकल अफ़सरों में मन-मुटाव हो गया, जो दिनों दिन बढ़ता ही गया। महाराणा ने शेरसिंह की जागीर भी ज़ब्त करली, परन्तु फिर पोलिटिकल अफ़सरों की सलाह के अनुसार वह महाराणा शंभुसिंह के समय उसे पीछी दे दी गई।

महाराणा सरूपसिंह के पीछे महाराणा शंभुसिंह के नाबालिग़ होने के कारण राज्य-प्रबन्ध के लिए मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर की अध्यक्षता में रीजेन्सी कौन्सिल स्थापित हुई, जिसका एक सदस्य शेरसिंह भी था। महाराणा सरूपसिंह के समय मेहता शेरसिंह से जो तीन लाख रुपये दण्ड के लिए गये थे वे इस कौन्सिल के समय उस(शेरसिंह)की इच्छा के विरुद्ध उसके पुत्र सवाईसिंह ने राज्य के ख़ज़ाने से पीछे ले लिए। इसके कुछ ही वर्ष बाद मेहता शेरसिंह के जिम्मे चित्तोड़ ज़िले की सरकारी रक़म बाक़ी होने की शिकायत हुई। वह सरकारी रक़म जमा नहीं करा सका और जब ज्यादा तक़ाज़ा हुआ, तब सलूंबर के रावत की हवेली में जा बैठा, जहां पर उसकी मृत्यु हुई। राज्य की बाक़ी रही हुई रक़म की वसूली के लिए उसकी जागीर राज्य के अधिकार में लेली गई। शेरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सवाईसिंह उसकी विद्यमानता ही में मर गया, तब अजीतसिंह उसके गोद

गया, पर वह भी निःसन्तान रहा, जिससे मांडलगढ़ से चतरसिंह उसके गोद गया, जो कई वर्षों तक मांडलगढ़, राशमी, कपासन और कुंभलगढ़ आदि ज़िलों का हाकिम रहा। उसका पुत्र संग्रामसिंह इस समय महद्राजसभा का असिस्टेन्ट सेक्रेटरी है।

मेहता गोकुलचन्द

महाराणा सरूपसिंह ने मेहता शेरसिंह की जगह मेहता गोकुलचन्द को, जो मेहता अगरचन्द के ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द का पौत्र और सरूपचन्द का पुत्र था, प्रधान बनाया। फिर वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) में महाराणा ने उसके स्थान पर कोठारी केसरीसिंह को प्रधान नियत किया। महाराणा शंभुसिंह के समय वि० सं० १९२० (ई० स० १८६३) में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट ने सरकारी आज्ञा के अनुसार रीजेन्सी कौन्सिल को तोड़कर उसके स्थान में 'अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़' नाम की कचहरी स्थापित की और उसमें मेहता गोकुलचन्द तथा पण्डित लछमणराव को नियत किया। वि० सं० १९२२ (ई० स० १८६५) में महाराणा शंभुसिंह को राज्य का पूरा अधिकार मिला। वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में अहलियान राज्य मेवाड़ की कचहरी टूट गई और उसके स्थान में 'खास कचहरी' कायम हुई। उस समय गोकुलचन्द मांडलगढ़ चला गया। वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में कोठारी केसरीसिंह ने प्रधान पद से इस्तीफ़ा दे दिया तो महाराणा ने वह काम मेहता गोकुलचन्द और पंडित लछमणराव को सौंपा। वहीं रूपाहेली और लांबावालों के बीच कुछ ज़मीन के बाबत झगड़ा होकर लड़ाई हुई, जिसमें लांबावालों के भाई आदि मारे गये। उसके बदले में रूपाहेली का तसवारिया गांव लांबावालों को दिलाना निश्चय हुआ, परन्तु रूपाहेलीवालों ने महाराणा शंभुसिंह की आज्ञा न मानी, जिसपर गोकुलचन्द की अध्यक्षता में तसवारिये पर सेना भेजी गई। वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में महाराणा शंभुसिंह ने मेहता पन्नालाल को क़ैद किया, तब उसके स्थान पर मेहता गोकुलचन्द और सहीवाला अर्जुनसिंह महकमा खास के कार्य पर नियत हुए। उसमें अर्जुनसिंह ने तो शीघ्र ही इस्तीफ़ा दे दिया और वह (गोकुलचन्द) कुछ समय तक इस कार्य को करता रहा, फिर वह मांडलगढ़ चला गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में महाराणा शंभुसिंह ने 'ख़ास कचहरी' के स्थान में 'महकमा ख़ास' कायम किया तो पण्डित लक्ष्मणराव ने अपने दामाद मार्तण्डराव को उसका सेक्रेटरी बनाने का उद्योग किया, परन्तु उससे काम न चलता देखकर महाराणा ने मेहता पन्नालाल[1] को, जो पहले खास कचहरी में असिस्टेन्ट (नायब) के पद पर नियत था, योग्य देखकर सेक्रेटरी बनाया। कुछ समय पश्चात् प्रधान का काम भी महकमा खास के सेक्रेटरी के सुपुर्द हो गया और प्रधान का पद उठ गया। जब महाराणा को कितने एक स्वार्थी लोगों ने यह सलाह दी कि बड़े बड़े अहलकारों से १०-१५ लाख रुपये इकट्ठे कर लेना चाहिये तब महाराणा ने उनके बहकाने में आकर कोठारी केसरीसिंह, छगनलाल तथा मेहता पन्नालाल आदि से रुपये लेना चाहा। पन्नालाल से १२०००० रु० का रुक्का लिखवा लिया, परन्तु श्यामलदास (कविराजा) तथा पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल निक्सन के कहने से उनके बहुतसे रुपये छोड़ दिये और पन्नालाल से सिर्फ़ ४०००० रु० वसूल किये। उस(पन्नालाल)ने अपनी प्रबन्धकुशलता, परिश्रम और योग्यता से राज्य-प्रबंध की नींव दृढ़ कर दी और खानगी में वह महाराणा को हरएक बात का हानि-लाभ बताया करता था, इसलिये बहुतसे रियासती लोग उसके शत्रु हो गये। उसे हानि पहुंचाने के लिये उन्होंने महाराणा से शिकायत की कि वह खूब रिश्वत लेता है और उसने आप पर जादू कराया है। महाराणा बीमार तो था ही, इतने में जादू कराने की शिकायत होने पर मेहता पन्नालाल वि० सं० १९३१ भाद्रपद वदि १४ (ई० स० १८७४ ता० ९ सितम्बर) को कर्णविलास में क़ैद किया गया, परन्तु तहक़ीक़ात होने पर दोनों बातों में वह निर्दोष सिद्ध हुआ, तो भी उसके इतने दुश्मन हो गये थे कि महाराणा की दाहक्रिया के समय

(१) मेहता पन्नालाल मेहता अगरचन्द के छोटे भाई हंसराज के ज्येष्ठ पुत्र दीपचंद के द्वितीय पुत्र प्रतापसिंह का पौत्र (मुरलीधर का बेटा) था। जब हड़क्याखाल की लड़ाई में होल्कर की राजमाता अहिल्याबाई के भेजे हुए तुलाजी सिंधिया और श्रीभाई के साथ की मरहटी सेना से मेवाड़ी सेना की हार हुई और मरहटों से छीने हुए सब स्थान छूट गये उस समय दीपचन्द ने जावद पर एक महीने तक उनका अधिकार न होने दिया। अन्त में तोप आदि लड़ाई के सारे सामान तथा अपने सैनिकों को साथ लेकर वह मरहटी सेना को चीरता हुआ मांडलगढ़ चला गया।

उसके प्राण लेने की कोशिश भी हुई। यह हालत देखकर मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट ने उसे कुछ दिन के लिये अजमेर जाकर रहने की सलाह दी, जिस पर वह वहां चला गया।

मेहता पन्नालाल के क़ैद होने पर महकमा खास का काम राय सोहनलाल कायस्थ के सुपुर्द हुआ, परन्तु उससे कार्य होता न देखकर वह काम मेहता गोकुलचन्द और सहीवाला अर्जुनसिंह को सौंपा गया।

पन्नालाल के अजमेर चले जाने के बाद महकमे खास का काम अच्छी तरह न चलता देखकर महाराणा सज्जनसिंह के समय पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल हर्बर्ट ने वि० सं० १९३२ भाद्रपद सुदि ४ (ई० स० १८७५ ता० ४ सितम्बर) को अजमेर से उसको पीछा बुलाकर महकमा-खास का काम उसके सुपुर्द किया।

महाराणी विक्टोरिया के कैसरे-हिन्द (Empress of India) की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने ई० स० १८७७ ता० १ जनवरी (वि० सं० १९३३ माघ वदि २) को दिल्ली में एक बड़ा दरबार किया उस प्रसंग में उस (पन्नालाल) को 'राय' का ख़िताब मिला। जब महाराणा ने वि० सं० १९३७ में 'महद्राजसभा' की स्थापना की उस समय उसको उसका सदस्य भी बनाया। महाराणा सज्जनसिंह के अन्त समय तक वह महकमा खास का सेक्रेटरी (मंत्री) बना रहा और उसकी योग्यता तथा कार्य-दक्षता से राज्य-कार्य बहुत अच्छी तरह चला। उसके विरोधी महाराणा से यह शिकायत करते रहे कि वह रिश्वत बहुत लेता है, परन्तु महाराणा ने उनके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया।

महाराणा सज्जनसिंह के पीछे महाराणा फ़तहसिंह को मेवाड़ का स्वामी बनाने में उसका पूरा हाथ था। उक्त महाराणा के समय ई० स० १८८७ की महाराणी विक्टोरिया की जुबिली के अवसर पर उसको सरकार ने सी० आई० ई० के ख़िताब से सम्मानित किया।

वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में उसने यात्रा जाने के लिये ६ मास की छुट्टी ली तब उसके स्थान पर कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह नियत हुए। यात्रा से लौटने पर उसने अपने पद का इस्तीफ़ा दे दिया तब वे दोनों स्थायी रूप से महकमा खास के मंत्री नियत हुए।

वि० सं० १९७५ के चैत्र कृष्णा ३० को पन्नालाल ने इस संसार से कूच किया। राजा, प्रजा और सरदारों के साथ उसका व्यवहार प्रशंसनीय रहा और वे सब उससे प्रसन्न रहे। पोलिटिकल अफ़सरों ने उसकी योग्यता, कार्य-कुशलता एवं सहनशीलता आदि की समय समय पर बहुत कुछ प्रशंसा की है। उसका पुत्र फ़तेलाल महाराणा फ़तेहसिंह के पिछले समय उसका विश्वास-पात्र रहा। उस(फ़तेलाल)का पुत्र देवीलाल उक्त महाराणा के समय महकमा देवस्थान का हाकिम भी रहा।

इस प्रकार मेहता अगरचन्द और उसके भाई हंसराज के घरानों में उपर्युक्त चार पुरुष प्रधान मंत्री रहे और उनके वंश के अन्य पुरुष भी मांडलगढ़ की क़िलेदारी के अतिरिक्त राज्य के अलग अलग पदों पर अबतक नियुक्त होते रहे हैं।

मेहता रामसिंह का घराना

इस खानदानवाले पहले राजपूत थे। फिर जैन मत के उत्कर्ष के समय उन्होंने उसे स्वीकार किया और उनकी गणना ओसवालों में हुई। जाल मेहता जालोर के राव मालदेव चौहान का विश्वासपात्र सेवक था। रावल रत्नसिंह के समय सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तोड़ पर चढ़ाई कर वह क़िला एवं मेवाड़ का कितना एक प्रदेश अपने अधीन कर लिया और अपने बड़े शाहज़ादे खिज़रखां को वहां का शासक बनाया। क़रीब १० वर्ष तक खिज़रखां वहां रहा। फिर सुलतान ने वह प्रदेश सोनगरे मालदेव को दे दिया। सीसोदे का राणा हंमीर अपना पैतृक राज्य हस्तगत करने का विचारकर मालदेव के अधीनस्थ मेवाड़ के इलाक़ों में लूटमार करता रहा। उसे शान्त करने के लिए मालदेव ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर उसे मेवाड़ का कुछ इलाक़ा भी दहेज़ में दिया और अपने विश्वासपात्र सेवक जाल मेहता को अपनी पुत्री का कामदार बनाकर सीसोदे भेज दिया। तब से मेवाड़ के वर्तमान राजवंश और इस मेहता खानदान के बीच स्वामी-सेवक का सम्बन्ध चला आता है।

महाराणा हंमीर ने मालदेव के मरने पर उसके पुत्र जेसा से चित्तोड़

का राज्य छीन लिया तभी से मेवाड़ पर गुहिलवंश की सीसोदिया शाखा का अधिकार चला आता है। चित्तोड़ का राज्य प्राप्त करने में हंमीर को जाल मेहता से बड़ी सहायता मिली, जिसके उपलक्ष्य में उसने उसे अच्छी जागीर दी और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

वि० सं० की १९ वीं शताब्दी के मध्य में इस वंश में मेहता ऋषभदास हुआ, जो धर्मशील और सहृदय था। उसका पुत्र मेहता रामसिंह हुआ। रामसिंह कार्यदक्ष, नीतिकुशल, बुद्धिमान् और स्वामिभक्त था। उसने मेवाड़ में अच्छी ख्याति प्राप्त की और उसके अच्छे गुणों पर रीझकर वि० सं० १८७५ श्रावणादि आषाढ़ सुदि ३ (ई० स० १८१८ ता० २५ जून) को महाराणा भीमसिंह ने उसे बदनोर इलाक़े का अरणा गांव दिया। उक्त महाराणा के राजत्वकाल में मेवाड़ का शासन-प्रबन्ध उसके और अंग्रेज़ी सरकार दोनों के हाथ में था। प्रत्येक ज़िले में महाराणा की ओर से तो कामदार और उक्त सरकार की तरफ़ से चपरासी नियुक्त रहते थे। दोनों मिलकर प्रजा से हांसिल उगाहते थे। इस द्वैध-शासन से तंग आकर मेवाड़ की प्रजा ने अंग्रेज़ी सरकार से शिकायत की तब वि० सं० १८८१ (ई० स० १८२४) में मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान कॉब ने शिवदयाल गलूंड्या को, जो उन दिनों मेवाड़ का प्रधान था, शासन की अव्यवस्था का मूल कारण ठहराकर अलग कर दिया और उसके स्थान पर रामसिंह को नियुक्त किया।

उक्त कप्तान तथा रामसिंह के सुप्रबन्ध से मेवाड़ राज्य की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा कुछ सुधर गई और अंग्रेज़ी सरकार के चढ़े हुए ख़िराज में से ४००००० रु० तथा अन्य छोटे बड़े कर्ज़ राज्य की आय से ही अदा कर दिये गये। रामसिंह की कारगुज़ारी से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे वि० सं० १८८३ कार्तिक सुदि ३ को ४ गांव जयनगर, ककरोल, दौलतपुरा और बलदरखा दिये। महाराणा जवानसिंह की गद्दीनशीनी के बाद फ़ुज़ूल ख़र्च करने तथा शराब पीने की लत पड़ गई। इससे थोड़े ही दिनों में राज्य की आय घट गई और अंग्रेज़ी सरकार के ख़िराज के ७००००० रु० चढ़ गये। ख़िराज़ चुका देने के लिए पोलिटिकल एजेन्ट के ताकीद करने पर राज्य-व्यवस्था की ओर महाराणा का ध्यान आकृष्ट हुआ और उसने उसे सुधारने का विचारकर

रामसिंह की सलाह के अनुसार महासानी बख्ता, कायस्थ विशननाथ और पुरोहित रामनाथ को रियासत का खर्च घटाने का काम सौंपा, परन्तु उन्होंने एक फ़र्ज़ी फ़र्द तैयार कर महाराणा के सामने पेश की, जिसमें राज्य की सालाना आमदनी १२००००० रु० और खर्च ११००००० रु० बतलाया गया। उसको देखकर उसे यह सन्देह हुआ कि रामसिंह प्रति वर्ष बचत के १००००० रु० हज़म कर जाता है। अन्त में महाराणा ने रामसिंह के स्थान पर मेहता शेरसिंह को नियुक्त किया, परन्तु शेरसिंह ने अल्पकाल में ही राज्य की सारी आय खर्च कर दी और उसके समय में रियासत पर ऋण का बोझ पहले से भी अधिक हो गया, जिससे महाराणा ने उसे अलग कर रामसिंह को फिर प्रधान बनाया।

उसने पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा अंग्रेज़ी सरकार से लिखा पढ़ी कर २००००० रु०, जो उक्त सरकार की ओर से मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों के प्रबन्ध के लिये महाराणा को मिले तथा एजेन्ट के निर्देश के अनुसार खर्च हुए थे, माफ़ करा दिये और चढ़ा हुआ ख़िराज भी चुका दिया, जिससे उसकी बड़ी नेकनामी हुई और महाराणा ने उसको सिरोपाव आदि देकर सम्मानित किया। उसकी मान-वृद्धि और उत्कर्ष को देखकर उसके शत्रुओं को बड़ी जलन हुई। वे महाराणा से उसकी शिकायत करने लगे, जिसका फल यह हुआ कि महाराणा का उसपर पहले का सा विश्वास न रहा, जिससे उस(महाराणा)ने उसे उसके पद से हटाना चाहा, परन्तु जबतक कप्तान कॉब, जो उसकी योग्यता को जानता था, मेवाड़ में रहा तबतक रामसिंह अपने स्थान पर बना ही रहा। वि० सं० १८८८ में उक्त कप्तान के उदयपुर से चले जाने पर रामसिंह का प्रभाव घट गया और उसे अपने काम से इस्तीफ़ा देना पड़ा। महाराणा ने उसके स्थान पर मेहता शेरसिंह को फिर नियुक्त किया। कप्तान कॉब रामसिंह की कार्यकुशलता से भलीभांति परिचित था, इसलिये उसने कलकत्ते से पत्र-द्वारा रामसिंह के अच्छे कामों की याद दिलाते हुए महाराणा से उसकी मान-मर्यादा की रक्षा करने की सिफ़ारिश की।

वि० सं० १८९५ (ई० स० १८३८) में महाराणा का देहान्त होने पर मेहता शेरसिंह ने कुछ सरदारों से मिलकर बागोर के महाराज शिवदानसिंह

के तृतीय पुत्र शेरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र शार्दूलसिंह को गद्दी दिलाने की कोशिश की, इसलिये उक्त महाराज के ज्येष्ठ पुत्र सरदारसिंह ने महाराणा होने के कुछ दिनों पीछे शेरसिंह को क़ैद कर लिया और रामसिंह को प्रधान बनाया। महाराणा सरदारसिंह रामसिंह का बड़ा मान करता था। उसके सिफ़ारिश करने पर महाराणा ने गोगून्दे के सरदार झाला लालसिंह का, जिसपर महाराणा पर जादू कराने का अपराध लगाया गया था और जिसको मारने की आज्ञा भी दे दी गई थी, अपराध क्षमा कर दिया। जब लालसिंह के पिता शत्रुशाल ने, जिससे लालसिंह ने गोगून्दे का ठिकाना छीन लिया था, उदयपुर जाकर महाराणा की सेवा में इस आशय की अर्ज़ी पेश की कि लालसिंह का हक़ ख़ारिज कर मेरा उत्तराधिकारी मेरा पोता मानसिंह माना जाय उस समय रामसिंह की सिफ़ारिश से ही महाराणा ने उक्त अर्ज़ी पर कुछ ध्यान न दिया।

महाराणा भीमसिंह के समय से ही महाराणाओं और सरदारों के बीच छटूंद एवं चाकरी के सम्बन्ध में झगड़ा चला आ रहा था। उसे मिटाने के लिये वि० सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में रामसिंह की सलाह से मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान कॉब ने महाराणा और मेवाड़ के सरदारों के बीच एक क़ौलनामा तैयार किया, परन्तु उसपर किसी पक्ष के हस्ताक्षर न हुए, इसलिये रामसिंह ने वि० सं० १८९६ (ई० स० १८४०) में मेजर रॉबिन्सन से, जो उन दिनों मेवाड़ का पोलिटिकल एजेन्ट था, कह सुनकर नया क़ौलनामा तैयार कराया। रामसिंह के उद्योग से ही वि० सं० १८९७ (ई० स० १८४१) में खेरवाड़े में भीलों की सेना संगठित किये जाने का काम शुरू हुआ। वि० सं० १८९७ में उसका ज्येष्ठ पुत्र बख़्तावरसिंह बीमार हुआ उस समय महाराणा सरदारसिंह बख़्तावरसिंह का हाल दर्याफ़्त करने के लिये उसकी हवेली पर गया।

महाराणा सरूपसिंह ने गद्दी पर बैठते ही भेद-नीति से काम लेना शुरू किया। उसने मेवाड़ के सब से अधिक शक्तिशाली सरदार आसींद के रावत दूलहसिंह तथा उसके सहायक मेहता रामसिंह का ज़ोर तोड़ने के लिए सलूंबर के कुंवर केसरीसिंह को अपना कृपापात्र बनाया। केसरीसिंह ने गोगूंदे के कुंवर लालसिंह को मिलाकर रामसिंह को अलग करने का उद्योग

किया, परन्तु वह सफल न हुआ। तदुपरान्त रामसिंह ने लालसिंह को अपनी ओर मिला लिया। फिर वे दोनों महाराणा से दूलहसिंह की शिकायत करने लगे और उसको दूलहसिंह के विरुद्ध इतना भड़काया कि उसने क्रुद्ध होकर महाराणा जवानसिंह के राजत्वकाल में उस(दूलहसिंह)को छोटे छोटे गांवों के बदले जो बड़े गांव मिले थे उन्हें ज़ब्त कर लिये और उनके बदले उसे उसके पुराने गांव वापस दिलाए जाने की आज्ञा दी तथा दरबार में उसका आना जाना बन्द कर दिया। इससे दूलहसिंह अपने ठिकाने को लौट गया। इस प्रकार उदयपुर से उसके चले जाने पर रामसिंह का प्रभाव दिन दिन बढ़ता ही गया।

वि० सं० १६०० चैत्र वदि २ (ई० स० १८४४ ता० ६ मार्च) को महाराणा ने उसकी हवेली पर मेहमान होकर उसकी मानवृद्धि की और उसे ताज़ीम तथा 'काकाजी' की उपाधि देकर सम्मानित किया। रामसिंह के इस सम्मान से प्रसन्न होकर कर्नल रॉबिन्सन ने महाराणा के पास एक पत्र भेजा, जिसमें उसने मुक्तकंठ से महाराणा की गुणग्राहकता की प्रशंसा की। इसी वर्ष राज्य की आर्थिक स्थिति की ओर, जो अच्छी न थी, महाराणा का ध्यान गया और उसने आमद खर्च के हिसाब की जांच कर उसे सुधारना चाहा तथा इस काम के लिए मेहता शेरसिंह को, जो महाराणा सरदारसिंह के समय मेवाड़ से भाग गया था, वापस बुलाकर उससे गुप्त रीति से राज्य के आय-व्यय का सारा हिसाब तैयार करा लिया। हिसाब की जांच-पड़ताल करने पर महाराणा को सन्देह हुआ कि रामसिंह रियासत के कई लाख रुपये ग़बन कर गया है, इसलिए उसने वि० सं० १६०१ (ई० स० १८४५) में शेरसिंह को प्रधान बनाया और मेवाड़ की प्राचीन प्रथा के अनुसार रामसिंह से १०००००० रु० का रुक्क़ा लिखा लिया।

वि० सं० १६०३ (ई० स० १८४६) में उदयपुर में यह अफ़वाह उड़ी कि बागोर के महाराज शेरसिंह का पुत्र शार्दूलसिंह महाराणा को ज़हर दिलाने की कोशिश कर रहा है, जिसमें कई व्यक्ति सम्मिलित हैं। जब यह बात महाराणा के कानों तक पहुंची तब उसने शार्दूलसिंह को पकड़वा मंगाया। जब उसको धमकाया गया तो उसने डर के मारे रामसिंह आदि कई व्यक्तियों के नाम लिखा दिये। रामसिंह यह खबर पाते ही मेवाड़ से भागकर नीमच, शाह-

पुरा आदि स्थानों में होता हुआ ब्यावर (ज़िला अजमेर) चला गया। उदयपुर से उसके चले जाने पर उसकी सारी जायदाद ज़ब्त करली गई और उसके बालबच्चे भी वहां से निकाल दिये गये। बीकानेर के तत्कालीन महाराजा सरदारसिंह ने, जो रामसिंह की कार्यदक्षता आदि गुणों से पूर्ण परिचित था, उससे बीकानेर चले आने का आग्रह किया, परन्तु उसने इस अनुग्रह के लिए महाराजा को धन्यवाद देते हुए लिखा "महाराणा साहब को मेरी सेवाओं का पूरा ध्यान है। वे मेरे शत्रुओं के झूठी ख़बर फैलाने से इस समय मुझसे अप्रसन्न हैं तो भी कभी न कभी उनकी अप्रसन्नता अवश्य दूर होगी। उस समय वे मुझे अपनी सेवा में अवश्य पीछा बुला लेंगे।" जब यह बात महाराणा सरूपसिंह को मालूम हुई तब उसने रामसिंह को फिर उदयपुर में बुलाना चाहा, परन्तु उसके पूर्व ही वह इस संसार से चल बसा था।

रामसिंह के ५ पुत्र बख़्तावरसिंह, गोविन्दसिंह, ज़ालिमसिंह, इन्द्रसिंह और फ़तहसिंह हुए। बख़्तावरसिंह अपने पिता की जीवित दशा में ही मर गया। गोविन्दसिंह के वंश में उसके द्वितीय पुत्र रत्नसिंह का पुत्र चिमनसिंह ब्यावर में विद्यमान है और कई वर्ष तक वहां का म्यूनीसिपल कमिश्नर रहा है। चौथे पुत्र इन्द्रसिंह को तो बीकानेर के महाराज ने अपने यहां और तृतीय पुत्र ज़ालिमसिंह को वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) में महाराणा शंभुसिंह ने अपने पास उदयपुर बुला लिया। ज़ालिमसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मेवाड़ के कई ज़िलों में हाकिम रहा और उसने राशमी प्रांत में 'माळ' की ज़मीन में काश्तकारी का सिलसिला जारी कर एक गांव बसाया, जो उसके नाम पर ज़ालिमपुरा कहलाता है।

वि० सं० १९२५ में वह छोटी सादड़ी का हाकिम हुआ और उस पद पर तीन साल तक रहा, पर तनख़्वाह कभी न ली। जब प्रधान कोठारी केसरीसिंह ने उक्त ज़िले के आय-व्यय के हिसाब की जांच की तब उसने उसकी कारगुज़ारी से प्रसन्न होकर उसके भोजन-ख़र्च के लिये प्रतिदिन ३ रु० दिये जाने की व्यवस्था करा दी और तीनों साल का वेतन भी दिला दिया। वि० सं० १९२८ में राज्य के महकमों का सुधार हुआ। उस समय ज़ालिमसिंह 'हिसाब दफ़्तर' का हाकिम बनाया गया। उसकी कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर

महाराणा ने उसके निर्वाह के लिये १००० रु० की आय का बरोड़ा गांव और रहने के लिये उसकी हवेली के पीछे का एक 'नौहरा' प्रदान किया। वि० सं० १६३१ में वह जहाज़पुर का हाकिम नियत हुआ, परन्तु वृद्धावस्था के कारण वह स्वयं वहां न जा सका और अपने ज्येष्ठ पुत्र अक्षयसिंह को भेज दिया।

वि० सं० १६३६ (ई० स० १८७६) में उसकी मृत्यु हुई। उसके तीन पुत्र अक्षयसिंह, केसरीसिंह और उग्रसिंह हुए।

कई बरसों तक मेवाड़ के कई ज़िलों में अपने पिता के साथ काम करने से अक्षयसिंह को राजकाज का अच्छा अनुभव हो गया था। नींबाहेड़े के सरहद्दी मामले का फ़ैसला होने के समय महाराणा शंभुसिंह ने उसे अपना मोतमिद बना कर वहां भेजा। जब वह जहाज़पुर का हाकिम हुआ उस समय उसने उस ज़िले की आय बढ़ाई और अपने तथा अपने भाई व पुत्र के नाम पर वहां तीन गांव अक्षयपुरा, केसरपुरा और जीवनपुरा बसाये। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा सज्जनसिंह ने उसे कुंभलगढ़ का हाकिम बनाया। साथ ही मगरे तथा छोटी सादड़ी का भी प्रबन्ध उसके ही सुपुर्द किया। ये दोनों ज़िले एक दूसरे से दूर होने के कारण अक्षयसिंह ने महाराणा से छोटी सादड़ी का ज़िला किसी अन्य व्यक्ति के सुपुर्द किये जाने की प्रार्थना की, जो स्वीकृत हुई और अक्षयसिंह के हाथ में सिर्फ़ मगरा ज़िले का इन्तिज़ाम रखा गया। उसने वहां की आबादी बढ़ाई और लुटेरे भीलों को खेती के काम में लगा कर राज्य की आय-वृद्धि की।

ई० स० १८८१ की मर्दुमशुमारी के समय खेरवाड़े की तरफ़ के मगरा ज़िले के जंगली भील अनेक प्रकार का सन्देह होने से उत्तेजित होकर बागी हो गये और उन्होंने कई थाने, चौकियां, दूकानें आदि जला दीं, कुछ अहल-कारों एवं सिपाहियों को मार डाला और पारसाद गांव में अक्षयसिंह को घेर लिया। अन्त में धूलेव के बनियों के समझाने बुझाने और कविराजा श्यामल-दास के आधा बराड़ माफ़ करा देने का वादा करने पर भील शान्त हो गये। अक्षयसिंह ने समय समय पर महाराणा की सेवा में मगरा ज़िले के प्रबन्ध के सम्बन्ध में तजवीज़ें पेश कीं, जिन्हें पसन्द कर महाराणा ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में अक्षयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र जीवनसिंह के विवाह के प्रसंग पर महाराणा ने उसकी हवेली पर मेहमान होकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

वि० सं० १९३७ (ई० स० १८८०) में अक्षयसिंह मांडलगढ़ का हाकिम हुआ। फिर वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में महाराणा फ़तहसिंह के राजत्वकाल में वह भीलवाड़े का हाकिम बनाया गया।

वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) के अकाल के समय उसने ग़रीबों की जान बचाने का बहुत कुछ उद्योग किया।

इसके पीछे वि० सं० १९६० (ई० स० १९०३) में वह भींडर का मुन्सरिम नियत हुआ। उसने उक्त ठिकाने का सुप्रबन्ध कर उसपर जो कर्ज़ था उसके चुकाये जाने की व्यवस्था की।

उसने समय समय पर ख़ज़ाने, 'निज सैन्य सभा' और माल, फ़ौज, हवबस्त आदि महकमों का कार्य किया। अपनी मिलनसारी के कारण वह सदा लोक-प्रिय रहा। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में उसका देहान्त हुआ। उसके दो पुत्र जीवनसिंह और जसवन्तसिंह हुए। जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह के साथ महाराणा (फ़तहसिंह) की राजकुमारी का विवाह होने पर जसवंतसिंह राजकुमारी का कामदार बनाकर जोधपुर भेजा गया। उक्त कुमारी की मृत्यु हो जाने पर महाराणा ने उसे पीछा बुलाकर सहाड़ां ज़िले का हाकिम किया और इन दिनों वह भीलवाड़े का हाकिम है।

जीवनसिंह समय समय पर कुंभलगढ़, सहाड़ां, कपासन, जहाज़पुर, चित्तोड़, आसींद, भीलवाड़ा, मगरा आदि मेवाड़ के अनेक प्रान्तों का हाकिम रहा और जहां वह रहा वहां की प्रजा उसके अच्छे बरताव से सदा प्रसन्न रही।

उसकी योग्यता एवं प्रबन्ध-कुशलता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे समय समय पर पुरस्कार आदि प्रदान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। लगातार ३५ साल तक हाकिम का काम करने से उसकी प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता प्रसिद्धि में आई, जिससे मेवाड़ के रेज़िडेन्टों तथा अन्य अंग्रेज़ अफ़सरों ने भी, जिनके साथ रहकर काम करने का उसे सुयोग प्राप्त हुआ है, उसकी योग्यता एवं अनुभव की सराहना की है। उसपर वर्तमान महाराणा सर भूपालसिंहजी

की भी पूर्ण कृपा है और हाल में उसको महद्राजसभा का मेम्बर नियुक्त किया है।

उसके तीन पुत्र तेजसिंह, मोहनसिंह और चन्द्रसिंह हैं। तेजसिंह ने, जो बी० ए०, एलएल० बी० है, कुछ समय तक सीतापुर में वकालत की। फिर महाराणा फ़तहसिंह ने वि० सं० १६७५ (ई० स० १६१८) में उसे कुंभलगढ़ तथा सायरा प्रान्त का हाकिम नियत किया। वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) में वह महाराजकुमार भूपालसिंहजी का प्राइवेट सेक्रेटरी नियत हुआ। वि० सं० १६८७ (ई० स० १६३०) में उनके महाराणा होने के समय से ही वही उनका प्राइवेट सेक्रेटरी है। उक्त महाराणा ने उसके काम से प्रसन्न होकर उसको सोने के लंगर प्रदान कर सम्मानित किया।

मोहनसिंह प्रयाग विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पासकर कुछ काल तक इलाहाबाद, आगरा व अजमेर में प्रोफ़ेसर रहा। फिर वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) में कुंभलगढ़ और सायरा का हाकिम हुआ। मेवाड़ में जब बन्दोबस्त का काम शुरू हुआ उस समय वह सेटलमेन्ट अफ़सर का मुख्य असिस्टेन्ट नियत हुआ। वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२५) में उसने इंगलैंड जाकर बैरिस्टरी की परीक्षा पास की और लंडन यूनिवर्सिटी से पी० एच० डी० की डिगरी प्राप्त की। राजपूताने में यह पहला व्यक्ति है, जिसने विद्वत्ता-सूचक ऐसी उच्च डिगरी प्राप्त की। मेवाड़ में स्काउट संस्था का जन्म उसी के सद्उद्योग का फल है। इस समय वह महकमा माल का हाकिम (Revenue Officer) है।

सेठ जोरावरमल बापना का घराना

जोरावरमल बापना (पटवा) गोत्र का ओसवाल महाजन था। उसके पूर्वजों का मूलनिवास-स्थान जैसलमेर था। उसके पूर्वज देवराज के गुमानचंद नाम का पुत्र हुआ। गुमानचंद के बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावरमल और प्रतापचंद नामक पांच पुत्र थे। चौथे पुत्र जोरावरमल ने व्यापार में अच्छी उन्नति कर कई बड़े बड़े शहरों में दूकानें क़ायम कीं और बड़ी सम्पत्ति प्राप्त की। इन्दौर राज्य के कई महत्त्वपूर्ण कार्यों में उसका हाथ रहा। उसी की

कोशिश से अंग्रेज़ी सरकार और होल्कर में अहदनामा हुआ। इस सेवा से प्रसन्न होकर अंग्रेज़ी सरकार तथा होल्कर ने उसे परवाने देकर सम्मानित किया।

ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में कर्नल टाड मेवाड़ का पोलिटिकल एजेन्ट होकर उदयपुर गया। उस समय मेवाड़ की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी, अतएव उक्त कर्नल की सलाह के अनुसार महाराणा भीमसिंह ने इन्दौर से सेठ जोरावरमल को उदयपुर बुलाया। उसके उदयपुर जाने पर महाराणा ने उसे वहां सम्मानपूर्वक रखकर उसकी दूकान क़ायम कराने के लिये उससे कहा "राज्य के कामों में जो रुपये खर्च हों, वे तुम्हारी दूकान से दिये जायें और राज्य की सारी आय तुम्हारे यहां जमा रहे"। महाराणा के कथनानुसार जोरावरमल ने उदयपुर में अपनी दूकान खोली, नये खेड़े बसाये, किसानों को सहायता दी और चोरों एवं लुटेरों को दंड दिलाकर राज्य में शान्ति स्थापित कराने में मदद दी। उसकी इन सेवाओं के उपलक्ष्य में वि० सं० १८८३ (चैत्रादि १८८४) ज्येष्ठ सुदि १ (ई० स० १८२७ ता० २६ मई) को महाराणा ने उसे पालकी तथा छड़ी के सम्मान के साथ वंशपरम्परा के लिये बदनोर परगने का पारसोली गांव और 'सेठ' की उपाधि दी। पोलिटिकल एजेन्ट ने भी उसे प्रबन्धकुशल देखकर अंग्रेज़ी खज़ाने का प्रबन्ध उसके सुपुर्द कर दिया। वि० सं० १८८६ मार्गशीर्ष सुदि १० रविवार (ई० स० १८३२ ता० २ दिसंबर) के दिन प्रसिद्ध केसरियानाथ के मन्दिर पर उसने ध्वजा-दंड चढ़ाया और दरवाज़े पर नक्कारखाना बनवाया।

वि० सं० १८६० में महाराणा जवानसिंह गया-यात्रा को गया उस समय जोरावरमल ने उस (महाराणा) की इच्छा के अनुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र सुल्तानमल को उसके साथ कर दिया, जिसके सुपुर्द यात्रा के खर्च का प्रबन्ध रहा। उस (जोरावरमल) ने तथा उसके भाइयों ने वि० सं० १८६१ में १३००००० रुपये व्यय कर आबू, तारंगा, गिरनार, शत्रुंजय आदि के लिये बड़ा संघ निकाला। उस (संघ) की रक्षा के लिये उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी, जैसलमेर, टोंक और इन्दौर राज्यों तथा अंग्रेज़ी सरकार ने सेनाएं भेजीं, जिनमें ४००० पैदल, १५० सवार और ४ तोपें थीं। इस संघ पर जैसलमेर के महारावल ने उसे 'संघवी सेठ' की उपाधि दी।

महाराणा सरूपसिंह के समय राज्य पर २०००००० से अधिक रुपयों का कर्ज़ था, जिसमें अधिकांश सेठ जोरावरमल बापना का ही था। महाराणा ने उसके कर्ज़े का निपटारा करना चाहा। उसकी यह इच्छा देख कर वि० सं० १९०३ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८४६ ता० २८ मार्च) को जोरावरमल ने उसे अपनी हवेली पर मेहमान किया और जिस प्रकार उसने चाहा वैसे ही उस (जोरावरमल)ने अपने कर्ज़ का फ़ैसला कर लिया। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको कुण्डाल गांव, उसके पुत्र चांदणमल को पालकी और पोतों (गंभीरमल और इन्द्रमल) को भूषण, सिरोपाव आदि दिये। दूसरे लेनदारों ने भी जोरावरमल का अनुकरण कर महाराणा की इच्छा के अनुसार अपने रुपयों का फ़ैसला कर दिया। इस प्रकार रियासत का भारी कर्ज़ सहज ही बेबाक हो गया और सेठ जोरावरमल की बड़ी नेकनामी हुई।

वि० सं० १९०९ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १८५३ ता० २६ फरवरी) को इन्दौर में उसका देहान्त होने पर वहां के महाराजा ने बड़े समारोह के साथ 'छत्री बाग़' में उसकी दाह-क्रिया कराई।

जोरावरमल बड़ा ही सम्पत्तिशाली होने के अतिरिक्त राजनीतिज्ञ भी था, जिससे उदयपुर राज्य में उसकी प्रधान से भी अधिक प्रतिष्ठा रही इतना ही नहीं किन्तु जोधपुर, कोटा, बूंदी, जैसलमेर, टोंक और इन्दौर आदि राज्यों में उसका बहुत कुछ सम्मान रहा। देशी राज्यों के अंग्रेज़ी राज्य के साथ के सम्बन्ध में, तथा देशी राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध में उसकी सलाह और मदद ली जाती थी।

जोरावरमल के दो पुत्र सुलतानमल और चांदणमल हुए। सिपाही-विद्रोह के समय चांदणमल ने जगह जगह अंग्रेज़ी सरकार के लिये खज़ाना पहुंचा कर उसकी अच्छी सेवा की, जिससे सरकार उससे बहुत प्रसन्न हुई।

चांदणमल के दो पुत्र जुहारमल और छोगमल हुए। महाराणा फ़तहसिंह के समय वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) तक उदयपुर और चित्तौड़ के बीच रेल न थी और चित्तोड़ का स्टेशन उदयपुर से ६९ मील दूर होने से मुसाफ़िरों को उक्त स्टेशन तक पहुंचने में बड़ी असुविधा एवं कठिनाई उठानी पड़ती थी, इसलिये उनके सुबीते के लिये महाराणा ने शहर उदयपुर तथा चित्तोड़गढ़

स्टेशन के बीच 'मेल कार्ट' चलाना स्थिर कर, इस काम को सेठ जुहारमल की निगरानी में रखा। कई बरसों तक मेल कार्ट चला, परन्तु उस काम में बड़ा नुक़सान रहा। इसपर महाराणा ने जुहारमल को हानि की पूर्ति करने तथा पहले का बक़ाया निकाला हुआ राज्य का ऋण चुका देने की आज्ञा दी। उस समय उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, जिससे वह महाराणा की आज्ञा का पालन न कर सका। इसपर महाराणा ने राज्य के रुपयों की वसूली तक के लिये उसका परासोली गांव अपने अधिकार में कर लिया। इस मामले में उसे बड़ी हानि पहुंची।

छोगमल का दूसरा पुत्र सिरेमल हुआ। उसने वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में बी० ए० और बी० एस० सी० की परीक्षाओं में एक साथ सफलता प्राप्त की और विज्ञान विषय में वह सर्वप्रथम रहा, जिसपर प्रयाग विश्वविद्यालय ने उसको 'इलियट छात्रवृत्ति' और 'जुबिली पदक' प्रदान किया। वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में प्रथम स्थान प्राप्त कर एलएल० बी० की परीक्षा में वह सफल हुआ। पहले उसने अजमेर में वकालत की और बाद में वह इन्दौर राज्य की सेवामें प्रविष्ट हुआ, जहां पहले महीदपुर का जज, फिर सेशन जज रहकर महाराजा तुकोजीराव (तृतीय) होल्कर का क़ानूनी शिक्षक नियत हुआ। वह उक्त महाराजा के साथ दो बार यूरोप भी गया। महाराजा को अधिकार मिलने पर वह उनका सेक्रेटरी और तत्पश्चात् होम सेक्रेटरी (गृहसचिव) बना। १९२१ ई० में जब उसने इन्दौर राज्य से त्यागपत्र दिया तो राज्य ने उसकी ख़ासतौर से पेन्शन कर दी। इसके बाद वह पटियाला राज्य में भिन्न भिन्न पदों पर रहा। जब पटियाला और नाभा के बीच के झगड़े की जांच अंग्रेज़ी सरकार ने की उस समय वह प्रारम्भ में पटियाले का मुख्य प्रतिनिधि रहा।

वि० सं० १९८० (ई० स० १९२३) में महाराजा होल्कर ने उसे फिर अपने यहां बुलाकर उपसचिव (Deputy Prime minister) बनाया। वर्तमान महाराजा यशवन्तराव (द्वितीय) के नाबालिग़ी के समय वह प्रधान मन्त्री और केबिनेट के प्रेसीडेन्ट के पद पर नियत हुआ। इस अरसे में उसने ऐसी योग्यता के साथ राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया कि राज्य की प्रजा और अंग्रेज़ी सरकार

दोनों उससे सन्तुष्ट रहे। वर्तमान नरेश के राज्याधिकार के दरबार में एजेन्ट गवर्नर जनरल सेन्ट्रल इंडिया और स्वयं महाराजा ने उसके कार्य की बहुत कुछ प्रशंसा की। इस समय भी वह प्रधान मन्त्री और केबिनेट का प्रेसीडेन्ट है।

उसकी योग्यता और सेवा से प्रसन्न होकर तुकोजीराव (तृतीय) ने उसे 'ऐतमादुद्दौला' का और सरकार अंग्रेज़ी ने वि० सं० १६७१ (ई० स० १९१४) में रायबहादुर का ख़िताब दिया। वर्तमान इन्दौर नरेश ने उसे 'वज़ीर उद्दौला' के और ता० १ जनवरी ई० स० १९३१ को सरकार अंग्रेज़ी ने सी० आई० ई० के ख़िताब से भूषित किया है। सन् १९३१ की दूसरी राउन्डटेबल कान्फ्रेन्स में इन्दौर महाराजा यशवन्तराव (द्वितीय) की नियुक्ति होने पर वह उनकी सहायतार्थ फिर इङ्गलैंड गया। उसके दो पुत्र कल्याणमल और प्रतापसिंह हैं, जो दोनों इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के बी० ए०, एलएल० बी० हैं।

पुरोहित राम का घराना

पुरोहित राम के पूर्वज अजमेर के सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के पुरोहित थे। वे पृथ्वीराज के मारे जाने और उसके साम्राज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने के पीछे उसके वंशज हम्मीर तक रणथंभोर के चौहानों के पुरोहित रहे। अलाउद्दीन ख़िलजी के हाथ में रणथंभोर का राज्य चले जाने पर वहां के चौहान जब इटावा, मैनपुरी, गुजरात आदि की तरफ़ चले गये उस समय उनके पुरोहित भी उनके साथ उधर गये। फिर वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में जब खानवे में बाबर के साथ महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) की लड़ाई हुई उस समय राजोर का स्वामी माणिकचन्द चौहान चार हज़ार सेना सहित महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसके साथ उसका पुरोहित वागीश्वर भी था। माणिकचन्द तथा वागीश्वर दोनों महाराणा की सेना में रहकर बाबर से लड़े और मारे गये। इस सेवा के उपलक्ष्य में माणिकचन्द के वंशजों को मेवाड़ राज्य की ओर से कोठारिये की जागीर मिली। वागीश्वर के वंशज कोठारिये के पुरोहित रहे।

वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के दासीपुत्र बणवीर ने महाराणा विक्रमादित्य को मार डाला और

उसके छोटे भाई उदयसिंह को भी बध करने के लिए उसकी धाय पन्ना के, जो खीची जाति की थी, पास गया, परन्तु उसको वणवीर की बुरी नियत की सूचना पहले ही मिल चुकी थी, इसलिये उदयसिंह को वहां से निकाल कर उसके बिस्तर पर अपने पुत्र को सुला दिया, जिसे उदयसिंह समझकर वणवीर ने मार डाला। फिर धाय पन्ना उदयसिंह को साथ लेकर कुंभलगढ़ चली गई। वि० सं० १५९४ (ई० स० १५३७) में वणवीर से अनबन हो जाने के कारण कोठारिये का रावत खान, जो उन दिनों चित्तोड़ में था, कुंभलगढ़ में उदयसिंह से जा मिला और उसने सलूंबर के रावत सांईदास, केलवे के सरदार जग्गा, बागोर के रावत सांगा आदि सरदारों को बुलाकर वहीं उसका राज्याभिषेक किया। रावत खान पर महाराणा का पूरा विश्वास था, इसलिए उससे ही उसने अपने भरोसे के सेवक लिए, जिनमें चार्गीश्वर के पौत्र नरू का द्वितीय पुत्र राम भी था। उसी समय से राम तथा उसके वंशज पुरोहिताई का पुश्तैनी पेशा छोड़कर चित्तोड़ एवं उदयपुर में महाराणाओं की सेवा में रहने लगे और पीछे से महाराणा के दरबार के प्रबन्धकर्त्ता (Master of Ceremony) रहे।

वि० सं० १६३४ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १५७७ ता० २९ अक्टोबर) के एक दान-पत्र से विदित है कि उक्त पुरोहित तथा उसके पुत्र भगवान तथा काशी को महाराणा प्रतापसिंह ने ओडा गांव दिया। यह गांव उन्हें महाराणा उदयसिंह ने दिया था, परन्तु गोगूंदे की लड़ाई के समय उसका ताम्रपत्र खो गया, जिससे महाराणा प्रतापसिंह ने उसका नया दानपत्र कर दिया।

भगवान का प्रपौत्र सुखदेव महाराजकुमार कर्णसिंह का कृपाभाजन रहा। वह उक्त महाराजकुमार के साथ दिल्ली तथा दक्षिण में रहा था। गद्दीनशीनी के बाद महाराणा कर्णसिंह ने उसे अरड़क्या गांव तथा कर्णपुर में भूमि दी।

सुखदेव के जगन्नाथ आदि पुत्रों ने महाराणा जयसिंह की अच्छी सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर उसने उन्हें अलग अलग गांव दिये। जब महाराणा तथा कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो गया और दोनों लड़ाई की तैयारी करने लगे उस समय पुरोहित जगन्नाथ ने पिता-पुत्र के बीच मेल कराने में राठोड़ गोपीनाथ एवं दुर्गादास का साथ दिया, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने

घाणेराव में रहते समय उसे वि० सं० १७४८ फाल्गुन वदि १२ (ई० स० १६६२ ता० ३ फरवरी) को निकोड़ और उदयपुर लौट आने के बाद वि० सं० १७५१ द्वितीय आषाढ़ वदि ३ (ई० स० १६६४ ता० ११ जून) को लालवास गांव दिया।

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय जगन्नाथ का पुत्र दीनानाथ जहाज़पुर का हाकिम हुआ। उसके सुप्रबन्ध से प्रसन्न होकर महाराणा अरिसिंह (द्वितीय) ने उसे वि० सं० १८२२ माघ वदि ७ (ई० स० १७६६ ता० ३ जनवरी) को दो गांव केसर तथा पदराड़ा दिये। महाराणा भीमसिंह के राजत्व-काल में मरहटों तथा पिंडारियों ने मेवाड़ में बड़ा उपद्रव मचाया तो उसने चित्तोड़ की रक्षा के लिये कुंवर अमरसिंह को भेजा और दीनानाथ के पौत्र रामनाथ को उसके साथ कर दिया।

डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह से महाराणा नाराज़ था। उसकी नाराज़गी दूर कराने के उपलक्ष्य में रावल ने वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में रामनाथ को बीजावास गांव दिया। कर्नल टॉड के समय उसकी अच्छी सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने निकोड़ गांव पर, जो उसके परदादा जगन्नाथ को मिला था और जो महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उसके हाथ से निकल गया था, फिर उसका दखल करा दिया और वि० सं० १८७८ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १८२२) को उसे हाथी, सोने के लंगर तथा उमंड गांव देना चाहा, परन्तु उसने हाथी लेने और पैर में सोना पहिनने से इन्कार कर उनके बदले सदाव्रत जारी किये जाने की महाराणा से प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर महाराणा ने उदयपुर में बड़ी पोल के बाहर लंगर का कोठार क़ायम कराकर सदाव्रत दिये जाने की व्यवस्था कर दी। महाराणा जवानसिंह की भी रामनाथ पर बड़ी कृपा थी। उस (महाराणा) के समय रियासत की आमद ख़र्च की जांच करने के लिये तीन पुरुष नियुक्त हुए, जिनमें रामनाथ भी था। रामनाथ के दो पुत्र श्यामनाथ और प्राणनाथ[1] हुए। रामनाथ का देहान्त हो जाने पर उसका काम उसके पुत्र श्यामनाथ को सौंपा गया, जिसे वि० सं०

(१) प्राणनाथ का पुत्र अक्षयनाथ हुआ, जिसके तीन पुत्र सुन्दरनाथ, सरूपनाथ और शोभानाथ इस समय विद्यमान हैं।

१८८८ वैशाख वदि ११ (ई० स० १८३२) को महाराणा ने ज़ालिमपुरा गांव दिया और वह महाराणा जवानसिंह तथा सरूपसिंह के समय मुसाहिबों में था।

वि० सं० १८८६ में महाराणा हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिङ्क से मुलाक़ात करने अजमेर गया, उस समय श्यामनाथ उसके साथ था। फिर वि० सं० १८६० (ई० स० १८३३) में गया जाते समय भी महाराणा श्यामनाथ को साथ ले गया।

वि० सं० १६०३ चैत्र सुदि ३ (ई० स० १८४७ ता० ६ एप्रिल) को महाराणा सरूपसिंह ने श्यामनाथ को उसके कामों से प्रसन्न होकर ओवरां गांव दिया। वि० सं० १६०७ (ई० स० १८५०) में महाराणा सरदारसिंह की राजकुमारियों के साथ कोटे के महाराव रामसिंह तथा रीवां के महाराजकुमार रघुराजसिंह का विवाह हुआ। उस समय विवाह सम्बन्धी सारी बातचीत मेहता शेरसिंह और श्यामनाथ के द्वारा ही स्थिर हुई। इसलिये दोनों नरेशों ने उन्हें पुरस्कार दिये। महाराणा और सरदारों के आपसी झगड़े मिटाने के लिये जब राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल सर हेनरी लारेन्स नीमच गया और सलूंबर का रावत केसरीसिंह आदि विरोधी सरदार एकत्र हुए उस समय वहां महाराणा की तरफ़ से बेदले का राव बख़्तसिंह, मेहता शेरसिंह प्रधान तथा श्यामनाथ भेजे गये।

महाराणा सरूपसिंह ने किसी न किसी बहाने प्रधान आदि जिन प्रतिष्ठित पुरुषों से रुपये वसूल किये उनमें श्यामनाथ भी था। उसके इस बर्ताव से नाराज़ होकर वह (श्यामनाथ) सिरोही, द्वारका, नड़ियाद आदि स्थानों में होता हुआ ईडर चला गया। वहां उक्त राज्य के तत्कालीन स्वामी ने उसे प्रतिष्ठापूर्वक रक्खा। अन्त में महाराणा का देहान्त हो जाने पर राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल जार्ज लारेन्स उसे अपने साथ उदयपुर वापस लाया।

महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी के समय वह रीजेन्सी कौन्सिल का सदस्य नियुक्त हुआ। राज्य के कुछ अहलकार कौन्सिल के सरदारों से मेलजोल बढ़ाकर अपना घर बनाने तथा सुन्दरनाथ पुरोहित आदि महाराणा के निजी सेवक मुसाहिब बनकर हुक्म चलाने लगे और बेमाली का रावत ज़ालिमसिंह आदि व्यक्ति अल्पवयस्क महाराणा को दुर्व्यसनों में फंसा कर स्वार्थसिद्धि में

लग गये। श्यामनाथ के स्पष्टवक्ता तथा सच्चा स्वामिभक्त होने के कारण वे उसके दुश्मन हो गये, जिससे उसे मेवाड़ से बाहर चला जाना पड़ा। अन्त में जब महाराणा को दुर्व्यसनों का कड़वा फल चखना पड़ा तब उसकी आंखें खुलीं। वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में उसने ज़ालिमसिंह को उदयपुर से निकाल दिया और श्यामनाथ को वापस बुला कर उससे कहा—"तुम्हारी नेक सलाह न मानने और स्वार्थी लोगों के जाल में फंस जाने से ही मेरी तन्दुरुस्ती बरबाद हुई। यदि तुम मेरे पास बने रहते तो कभी ऐसा न होता"।

श्यामनाथ योगाभ्यासी था। उसने अपने अन्तिम दिनों में संन्यास ग्रहण कर शरीर छोड़ा। श्यामनाथ का पुत्र पद्मनाथ महाराणा सज्जनसिंह के राजत्व-काल में पहले इजलास खास, फिर महद्राजसभा का मेम्बर रहा। वह देशहितकारिणी सभा का भी सदस्य था और भूतपूर्व महाराणा फ़तहसिंह के समय वॉल्टरकृत राजपूतहितकारिणी सभा का मेम्बर चुना गया। इस समय पद्मनाथ के तीन पुत्र–शंभुनाथ, मथुरानाथ और देवनाथ-विद्यमान हैं। शंभुनाथ पर भी महाराणा सज्जनसिंह तथा महाराणा फ़तहसिंह की कृपा रही। देवनाथ को मेवाड़ के इतिहास से विशेष अनुराग है।

कोठारी केसरीसिंह का घराना

कोठारी छगनलाल और केसरीसिंह के पूर्वज राजपूत थे, परन्तु पीछे से जैनधर्म ग्रहण करने से उनकी गणना ओसवालों में हुई।

वि० सं० १९०२ (ई० स० १८४५) में महाराणा सरूपसिंह के समय 'रावली दूकान' (State Bank) क़ायम हुई और कोठारी केसरीसिंह उसका हाकिम नियत हुआ। वि० सं० १९०८ (ई० स० १८५१) में वह महकमे 'दाण' (चुंगी) का हाकिम बनाया गया और महाराणा के इष्ट-देव एकलिङ्गजी के मन्दिर सम्बन्धी प्रबन्ध भी उसी के सुपुर्द हुआ[1]। वह महाराणा का खानगी सलाहकार भी रहा। उसके कामों से प्रसन्न होकर महाराणा ने वि० सं० १९१६

(१) जब से यह काम कोठारी केसरीसिंह के सुपुर्द हुआ तब से वह तथा उसके वंशज जैनधर्मावलम्बी होते हुए भी एकलिङ्गजी को अपना इष्ट-देवता मानते हैं।

में उसे नेतावला गांव जागीर में दिया और उसकी हवेली पर मेहमान हो कर उसका सम्मान बढ़ाया। फिर उसी साल मेहता गोकुलचंद के स्थान पर उसको प्रधान बनाया और बोराव गांव तथा पैरों में पहनने के सोने के तोड़े प्रदान किये। महाराणा शंभुसिंह की बाल्यावस्था के कारण राज्य-प्रबन्ध के लिये मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर की अध्यक्षता में रीजेन्सी कौन्सिल (पंचसरदारी) क़ायम हुई, जिसका एक सदस्य कोठारी केसरीसिंह भी था और माल (Revenue) के काम का निरीक्षण भी उसी के अधीन रहा।

उस समय कौन्सिल के सरदारों से मेलजोल बढ़ाकर कुछ अहलकार अपनी स्वार्थसिद्धि में लगे हुए थे, परन्तु कोठारी केसरीसिंह के स्पष्टवक्ता और राज्य का सच्चा हितैषी होने के कारण उसके आगे उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता था, जिससे बहुतसे लोग उसके दुश्मन होकर उसको हानि पहुंचाने का उद्योग करने लगे। कौंसिल के सरदार जब किसी को जागीर दिलाना चाहते तो वह यह कहकर उन्हें इस काम से रोकने की चेष्टा करता कि जागीर देने का अधिकार कौंसिल को नहीं, किन्तु महाराणा को है। इसके सिवा वह पोलिटिकल एजेन्ट को सरदारों की अनुचित कार्यवाइयों से भी परिचित कर देता और उचित सलाह देकर शासन-सुधार में भी उसकी सहायता करता था। उसकी इन बातों से अप्रसन्न होकर सरदार उसके विरुद्ध पोलिटिकल एजेन्ट को भड़काने लगे। उन्होंने उससे कहा "केसरीसिंह की ही सलाह पर महाराणा चलते हैं और उस(केसरीसिंह)ने राज्य के २००००० रु० ग़बन कर लिये हैं"। पोलिटिकल एजेन्ट ने विना जांच किये ही सरदारों के इस कथन पर विश्वास कर लिया और उसको पदच्युत कर उदयपुर से निकाल दिया, जिससे वह एकलिंगजी चला गया। महाराणा को केसरीसिंह पर पूर्ण विश्वास था इसलिये उसने उसपर लगाये हुए ग़बन की जांच कराई, जिसमें निर्दोष सिद्ध होने पर उसने उसको पुनः प्रधान बनाया।

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) के भयंकर अकाल के समय महाराणा की आज्ञा से उसने सब व्यापारियों से कहा कि बाहर से अन्न मंगाओ इसमें राज्य आपको रुपयों की सहायता देगा। इसपर व्यापारियों ने पर्याप्त मात्रा में बाहर से अन्न मंगवाया, जिससे लोगों को अन्न सस्ता मिलने लगा। वि० सं०

१९२६ (ई० स० १८६९) में बागोर के महाराज समर्थसिंह का देहान्त हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण कई लोगों ने महाराज शेरसिंह के कनिष्ठ पुत्र सोहनसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाने की कोशिश की, इसपर बेदले के राव बख्तसिंह और कोठारी केसरीसिंह ने महाराणा से निवेदन किया कि जब समर्थसिंह का छोटा भाई शक्तिसिंह विद्यमान है तो सबसे छोटे भाई सोहनसिंह को बागोर की जागीर न मिलना चाहिये। यदि आपकी उसपर अधिक कृपा हो और उसे कुछ देना ही है तो जैसे उसे पहले जागीर दी थी वैसे ही उसे और दे दी जाय। पोलिटिकल एजेन्ट ने भी सोहनसिंह का विरोध किया तो भी महाराणा ने उसी को बागोर का स्वामी बना दिया।

वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में उस(केसरीसिंह)ने प्रधान के पद से इस्तीफ़ा दे दिया तब महाराणा (शंभुसिंह) ने उसका काम मेहता गोकुलचन्द और पंडित लक्ष्मणराव को सौंपा। कोठारी केसरीसिंह पर महाराणा विशेष कृपा रखता था, जिससे कुछ पुरुषों ने द्वेष के कारण महाराणा को यह सलाह दी कि किसी तरह बड़े बड़े राज्य कर्मचारियों से १०-१५ लाख रुपये एकत्र कर लेने चाहिये। उन लोगों की बहकावट में आकर महाराणा ने अन्य कर्मचारियों के साथ साथ कोठारी केसरीसिंह और उसके बड़े भाई छगनलाल से ३०००० रुपयों का रुक्का लिखवा लिया, परन्तु श्यामलदास (कविराजा) और पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल निक्सन के कहने से उस(महाराणा)ने उनसे १०००० रु० छोड़ दिये। अपने पासवालों की बहकावट में आकर राजा लोग अपने विश्वासपात्रों के साथ भी कैसा व्यवहार कर बैठते हैं इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।

महाराणा ने उसके निरीक्षण में अलग अलग कारखानों (विभागों) की सुव्यवस्था की और किसानों से अन्न का हिस्सा (लाटा या कूंता) लेना बन्द कर ठेके के तौर पर नक़द रुपये लेना चाहा। सब रियासती अहलकार इसके विरुद्ध थे, क्योंकि इससे उनकी स्वार्थसिद्धि में बाधा पड़ती थी, इसलिए इस नई प्रथा का चलना कठिन था। इसी से महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह को, जो योग्य और अनुभवी था, यह काम सौंपा। इस कार्य में अनेक बाधाएं उपस्थित हुईं, परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता और कुशलता से वे दूर हो गई और

उसकी मृत्यु के बाद भी चार साल तक वही प्रबन्ध सुचारुरूप से चलता रहा।

उसकी अन्तिम बीमारी के दिनों महाराणा शंभुसिंह उसकी अच्छी सेवाओं का स्मरण कर उसके वहां गया और उसको तथा उसके कुटुम्ब को तसल्ली दी। उसका देहान्त वि० सं० १९२८ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १८७२ ता० २७ फरवरी) को हुआ।

केसरीसिंह स्पष्टवक्ता, निर्भीक, ईमानदार, योग्य, अनुभवी, प्रबन्धकुशल और स्वामिभक्त था। उसको अपने मालिक का नुकसान कभी सहन नहीं होता था। इन्हीं उत्तम गुणों के कारण अनेक शत्रु होते हुए भी वह राजा और प्रजा का प्रीतिपात्र हुआ।

उसके पुत्र न होने से उसने बलवन्तसिंह को गोद लिया। महाराणा सज्जनसिंह ने वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में इस (बलवन्तसिंह) को महकमा देवस्थान का हाकिम किया और महाराणा फ़तहसिंह ने वि० सं० १९४५ में इसे महद्राजसभा का सदस्य बनाया तथा सोने के लंगर प्रदान कर इसे सम्मानित किया। फिर 'रावली दुकान' (State Bank) का काम भी इसी के सुपुर्द हुआ। राय मेहता पन्नालाल के महकमे ख़ास के पद से इस्तीफ़ा देने पर वह काम इसके और सहीवाले अर्जुनसिंह के सुपुर्द किया गया। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में इन दोनों का इस्तीफ़ा पेश होने पर महकमा ख़ास का काम मेहता भोपालसिंह तथा महासानी हीरालाल पंचोली को सौंपा गया, परन्तु कुछ वर्षों पीछे उन दोनों की मृत्यु होने पर वि० सं० १९६९ (ई० स० १९१२) में पुनः इस (बलवन्तसिंह) को उनके स्थान पर नियुक्त किया, जो करीब तीन वर्ष तक उस महकमे का कार्य करता रहा। महकमे देवस्थान के अतिरिक्त टकसाल का काम भी कई वर्षों तक इसके सुपुर्द रहा। कई वर्षों तक इतनी बड़ी सेवा करते हुए भी इसने राज्य से कभी तनख़्वाह नहीं ली। इसका पुत्र गिरधारीसिंह सहाड़ा, भीलवाड़ा तथा चित्तोड़ व गिर्वा का हाकिम रहा और इस समय महकमा देवस्थान का हाकिम है।

कोठारी केसरीसिंह के बड़े भाई छगनलाल को महाराणा सरूपसिंह ने संवत् १९०० (ई० स० १८४३) में ख़ज़ाने का काम सौंपा और बाद में कोठार और फ़ौज का काम भी उसी के सुपुर्द हुआ। उसके काम से प्रसन्न होकर

महाराणा ने संवत् १६०५ में उसको मुरजाई[1] गांव बख्शा। उसके अधीन समय समय पर अलग अलग कई परगनों तथा एकलिंगजी के भंडार का काम भी रहा। केसरीसिंह की मृत्यु के बाद महकमे माल (Revenue) का काम भी उसके सुपुर्द हुआ। महाराणा शंभुसिंह ने संवत् १६३० में उसको पैरों में पहनने के सोने के तोड़े प्रदान किये। वि० सं० १६३३ (ई० स० १८७७) में महाराणी विक्टोरिया के क़ैसरे-हिन्द की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली दरबार के अवसर पर सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से उसको 'राय' की उपाधि मिली। वि० सं० १६३८ (ई० स० १८८१) में उसका देहान्त हुआ।

छगनलाल का दत्तक पुत्र मोतीसिंह इस समय विद्यमान है, जो कई वर्षों तक खज़ाने का हाकिम रहा और उसका दत्तक पुत्र दलपतसिंह सिरोही राज्य का नायब दीवान भी रहा है।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास का घराना

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास दधवाड़िया गोत्र का चारण था। उसके पूर्वज रूण के सांखले राजाओं के 'पोलपात' थे। उनको दधिवाड़ा गांव शासन (उदक) में मिला, जिससे वे दधवाड़िये कहलाये। जब सांखलों का राज्य जाता रहा तब वे मेवाड़ के महाराणा की सेवा में आ रहे। उनके साथ उनका पोलपात चारण जैतसिंह भी मेवाड़ में चला गया, जिसको महाराणा ने नाहरमगरे के पास धारता और गोठिपा गांव दिये। जैतसिंह के चार पुत्र महपा, मांडन, देवा और बरसिंह हुए। महाराणा संग्रामसिंह प्रथम ने महपा को ढोकलिया और मांडन को शावर गांव दिया, जिससे धारता देवा के और गोठिपा बरसिंह के रहा। देवा के वंशज धारता और खेमपुर में हैं और बरसिंह के गोठिपे में। महपा का पुत्र आसकरण और उसका चत्रा हुआ। बादशाह अकबर ने मांडलगढ़ का क़िला लेकर चित्तोड़ पर हमला किया उस समय ढोकलिया गांव भी शाही खालसे में चला गया, परन्तु कई वर्षों बाद चत्रा

---

(१) वि० सं० १६३५ (ई० स० १८७८) में इस गांव के बदले में उसको सेतूरिया गांव दिया गया।

दिल्ली गया और जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह के द्वारा अर्ज़ करवा कर उसने अपना गांव फिर बहाल करा लिया।

चत्रा का चावंडदास और उसका हरिदास हुआ। महाराणा राजसिंह (प्रथम) ने उससे नाराज़ होकर उसका गांव ढोकलिया खालसे कर लिया, परंतु हरिदास के पुत्र अर्जुन को महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने उसका वह गांव पीछा प्रदान किया। अर्जुन का पुत्र केसरीसिंह और उसका मयाराम हुआ। मयाराम के पुत्र कनीराम को महाराणा भीमसिंह ने जैसिंहपुरा और झालरा गांव प्रदान किये। कनीराम के पौत्र (रामदान के पुत्र) कायमसिंह के चार पुत्र ओनाड़सिंह, श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपालसिंह हुए। ओनाड़सिंह खेमपुर गोद गया और श्यामलदास अपने पिता का क्रमानुयायी हुआ। वह (श्यामलदास) अपने पिता के साथ महाराणा सरूपसिंह की सेवा में रहता था।

वि० सं० १६२८ (ई० स० १८७१) में महाराणा शंभुसिंह ने श्यामलदास और पुरोहित पद्मनाथ को उदयपुर राज्य का इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इन दोनों ने उक्त इतिहास का लिखना शुरू किया, परन्तु उक्त महाराणा का देहान्त हो जाने से उसका लिखा जाना रुक गया। महाराणा सज्जनसिंह के समय वह (श्यामलदास) उसका प्रीति-पात्र और मुख्य सलाहकार हुआ। उक्त महाराणा ने प्रसन्न होकर उसको कविराजा की उपाधि, ताज़ीम आदि प्रदान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और पैरों में सोने के आभूषण पहनने का सम्मान प्रदान किया। महाराणा ने उसको महद्राजसभा का सदस्य भी नियत किया। जब मगरा ज़िले में भीलों का उपद्रव हुआ उस समय उस(महाराणा)ने अपने मामा महाराज अमानसिंह कोससैन्य उनपर भेजा और उस(श्यामलदास) को भी उसके साथ कर दिया। लड़ाई होने के बाद भील कविराजा श्यामलदास के समझाने और उनका आधा बराड़ (ज़मीन का महसूल) माफ़ होने की शर्त पर शांत हो गये।

मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल इम्पी ने मेवाड़ का इतिहास बनाने के लिये महाराणा से आग्रह किया तो महाराणा ने उस(श्यामलदास)को वीर-विनोद नामक एक बड़ा इतिहास लिखने की आज्ञा दी। और उस(इतिहास)के लिये १००००० रु० स्वीकृत किये। उसने अपने अधीन इतिहास-कार्यालय

स्थापित कर अपनी सहायता के लिये संस्कृत, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं के विद्वानों को उक्त कार्यालय में नियत किया। फिर शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के, संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रन्थों, भाषा के काव्यों तथा ख्यातों, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि भाषा के ऐतिहासिक ग्रन्थों, पुराने पट्टे, परवाने, फ़रमान, निशान तथा पत्रव्यवहार आदि का बड़ा संग्रह किया और वीरविनोद नाम का बृहद् इतिहास लिखकर छपवाना आरम्भ किया, जिसकी समाप्ति महाराणा फ़तहसिंह के समय हुई। अंग्रेज़ी सरकार ने भी उसकी योग्यता की क़दर कर उसको महामहोपाध्याय का ख़िताब दिया।

महाराणा सज्जनसिंह ने विद्या की उन्नति, राज्य का सुधार, सेटलमेन्ट (बन्दोबस्त), जमाबन्दी का प्रबन्ध, महद्राजसभा आदि न्यायालयों की स्थापना, नई नई इमारतें बनाकर शहर की शोभा बढ़ाने और प्रजा को लाभ पहुंचाने आदि अनेक अच्छे काम किये, जिनमें उसका मुख्य सलाहकार वही (श्यामलदास) था। वह विद्यानुरागी, गुणग्राहक, स्पष्टवक्ता, भाषा का कवि, इतिहास का प्रेमी, अपने स्वामी का हितैषी और नेक सलाह देनेवाला था। उसकी स्मरणशक्ति इतनी तेज़ थी कि किसी भी ग्रन्थ से एक बार पढ़ी हुई बात उसको सदा स्मरण रहती थी। महाराणा सज्जनसिंह के समय अनेक विद्वानों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों का बहुत कुछ सम्मान होता रहा, जिसमें उसका हाथ मुख्य था। महाराणा फ़तहसिंह के समय भी उसकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् ही बनी रही। उसके पीछे उसके पुत्र जसकरण को महाराणा फ़तहसिंह ने कविराजा की पदवी दी।

सहीवाले अर्जुनसिंह का घराना

सहीवाला अर्जुनसिंह जाति का कायस्थ था। उसके पूर्वज भटनेर में (बीकानेर राज्य में) रहने से भटनागर कायस्थ कहलाये। दिल्ली के निकट डासन्या गांव से उसके पूर्वज मेवाड़ के खेराड़ ज़िले में और वहां से चित्तोड़ गये। फिर किसी समय उनको महाराणा की तरफ़ से पट्टे, परवाने आदि लिखने और उनपर 'सही' कराने का काम सुपुर्द हुआ, इसलिये उनका ख़ानदान

सहीवाला कहलाया। उस वंश के नाथा के पुत्र शिवसिंह के अर्जुनसिंह और वख़्तावरसिंह दो पुत्र हुए। अर्जुनसिंह ने बाल्यावस्था में पहले हिन्दी पढ़ी, फिर फ़ारसी पढ़ना शुरू किया।

महाराणा स्वरूपसिंह के समय वह उसकी सेवा में रहने लगा और धीरे धीरे उसकी उन्नति होती गई। वि० सं० १६१२ (ई० स० १८५५) में महाराणा ने उसको मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट के पास अपना वकील नियत किया। सिपाही-विद्रोह के समय वि० सं० १६१४ (ई० स० १८५७) में नीमच के सरकारी सिपाहियों ने बाग़ी होकर वहां की छावनी जला दी और ख़ज़ाना लूट लिया, जिसपर वहां के अंग्रेज़ों ने नीमच के क़िले में आश्रय लिया। बाग़ियों ने वहां से भी उन्हें भगा दिया, तब वे वहां से मेवाड़ के केसुन्दा गांव में पहुंचे। नीमच के ग़दर की ख़बर मिलते ही मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शावर्स ने नीमच जाने का निश्चय किया और महाराणा से बातचीत की। मेवाड़ के पास होने के कारण नीमच की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझकर महाराणा ने अपने विश्वस्त सरदार बेदले के राव बख़्तसिंह की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना कप्तान शावर्स के साथ भेज दी और सहीवाला अर्जुनसिंह वकील होने से उसके साथ गया। नीमच से बाग़ियों के भाग जाने पर वहां की रक्षा का भार उस (कप्तान शावर्स) ने कप्तान लॉयड तथा मेवाड़ के वकील सहीवाले अर्जुनसिंह पर छोड़ा और मेहता शेरसिंह आदि सहित वह (शावर्स) बाग़ियों का पीछा करता हुआ चित्तोड़ वग़ैरह की तरफ़ होकर १५–२० दिन में नीमच लौट गया। इस अरसे में मेवाड़ की सेना में, जिसपर अंग्रेज़ों को पूरा भरोसा था, शत्रुओं ने यह अफ़वाह फैलाई कि हिंदुओं का धर्म-भ्रष्ट करने के लिए अंग्रेज़ों ने आटे में मनुष्यों की हड्डियां पिसवाकर मिला दी हैं। इस बात की सूचना मिलते ही अर्जुनसिंह ने नीमच के बाज़ार में जाकर बनियों से आटा मंगवाया और उक्त सैनिकों के सामने उसकी रोटी बनवाकर खाई, जिससे सिपाहियों का सन्देह दूर हो गया। अर्जुनसिंह की इस कार्यतत्परता से नीमच का सुपरिन्टेन्डेन्ट कप्तान लॉइड बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महाराणा के पास एक ख़रीता भेजकर उसकी सिफ़ारिश की। उस समय उसके काम की बहुत कुछ प्रशंसा हुई।

महाराणा शंभुसिंह के समय मेहता पन्नालाल के क़ैद होने पर महकमा ख़ास का काम राय सोहनलाल के सुपुर्द हुआ, परन्तु उससे कार्य न होता देखकर वह काम वि० सं० १९३१ में मेहता गोकुलचन्द और सहीवाले अर्जुनसिंह के सुपुर्द हुआ। महाराणा सज्जनसिंह की बाल्यावस्था के कारण राज्य-कार्य के लिये रीजेन्सी कौंसिल स्थापित हुई तो मेहता गोकुलचन्द के साथ अर्जुनसिंह भी उसका कार्यकर्त्ता नियत हुआ। इन दोनों के अधीन साधारण दैनिककार्य रहा, परन्तु महत्त्व के विषय और सरदारों के मामले कौंसिल के अधीन रहे। महाराणा सज्जनसिंह के समय जब इजलास ख़ास और महद्राजसभा की स्थापना हुई तो वह (अर्जुनसिंह) उन दोनों का सदस्य रहा। महाराणा फ़तहसिंह के समय वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में जब राय मेहता पन्नालाल ने महकमा ख़ास से इस्तीफ़ा दे दिया तब कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह दोनों महकमा ख़ास के सेक्रेटरी नियत हुए। उस समय महाराणा ने उस(अर्जुनसिंह)को सोने के लंगर प्रदान किये। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में कोठारी बलवन्तसिंह और अर्जुनसिंह ने इस्तीफ़ा दे दिया और ता० २५ अप्रेल सन् १९०६ ई० (वैशाख शुक्ला २ वि० सं० १९६३) को उस(अर्जुनसिंह)का देहान्त हो गया।

अर्जुनसिंह मिलनसार, समझदार, अनुभवी, सरलप्रकृति का पुराने ढंग का पुरुष था। उसके दो पुत्र गुमानसिंह और भीमसिंह हुए। भीमसिंह राजनगर, कुंभलगढ़ और मांडलगढ़ के ज़िलों का हाकिम रहा।

अर्जुनसिंह का भाई बख़्तावरसिंह एजेन्ट गवर्नर जनरल राजपूताना के यहां वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में उदयपुर राज्य की ओर से वकील नियत हुआ। वि० सं० १९४९ (ई० स० १८९२) में उसको सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से रायबहादुर का ख़िताब मिला। उसका पुत्र हंमीरसिंह, जो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट था, कई वर्षों तक महाराणा फ़तहसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी रहा। उस(हंमीरसिंह)का देहान्त युवावस्था में ही हो गया।

मेहता भोपालसिंह का घराना

इस घराने के लोग ओसवाल महाजन हैं। मेहता शेरसिंह और उसका भाई सवाईराम महाराणा भीमसिंह के समय राज्य की सेवा में थे। शेरसिंह महाराजकुमार जवानसिंह का खानगी कामदार हुआ। उसके पीछे वह काम उसके भाई सवाईराम को मिला। सवाईराम के पुत्र का बाल्यावस्था में देहान्त हो जाने से उसने अपने भाई के पुत्र गणेशदास के तीसरे बेटे गोपालदास को गोद लिया। मेहता सवाईराम की एक दासी की पुत्री पेजांबाई महाराणा सरूपसिंह की प्रीति-पात्री उपपत्नी (पासवान) हुई। महाराणा ने उस (गोपालदास) को पोटलां व रेलमगरा का हाकिम बनाया और उसे सोने के लंगर प्रदान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

सरकार अंग्रेज़ी ने सती की प्रथा बन्द कर दी, तदनुसार महाराणा सरूपसिंह ने अपने राज्य में भी वैसी आज्ञा प्रचलित की, परन्तु पेजांबाई महाराणा के साथ सती हो गई, जिससे पोलिटिकल एजेन्ट मेवाड़ ने गोपालदास को, यद्यपि उस काम में उसका कोई हाथ नहीं था, तो भी उसके लिये दोषी ठहराया, जिससे उसने भागकर कोठारिये[1] में शरण ली।

महाराणा सज्जनसिंह ने मेहता लक्ष्मीलाल की अध्यक्षता में बोहेड़े पर सेना भेजी उस समय गोपालदास उस (लक्ष्मीलाल) के साथ था। इस सेवा के उपलक्ष्य में उक्त महाराणा ने उसे कंठी, सिरोपाव आदि प्रदान कर सम्मानित किया। उसका पुत्र भोपालसिंह पहले राशमी और मांडलगढ़ आदि ज़िलों का हाकिम रहा। फिर वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में महाराणा फ़तहसिंह ने उसे महद्राजसभा का मेम्बर और वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में उसको तथा महासानी हीरालाल को महकमा खास का सेक्रेटरी बनाया। वि० सं० १९६३ (ई० स० १९०६) में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की इच्छा से महाराणा

(१) मेवाड़ में यदि कोई अपराधी सलूंबर या कोठारियावालों के यहां शरण लेता तो वह राज्य की तरफ़ से पकड़ा नहीं जाता था। यह प्रथा बहुत पहिले से चली आती थी। अन्त में वहां के सरदार मध्यस्थ बनकर उसका फैसला करा देते। इसमें यद्यपि उनको बड़ी हानि उठानी पड़ती थी तो भी वे इसमें अपने ठिकाने का गौरव समझते थे।

ने उसे सोने के लंगर प्रदान किये। वि० सं० १९६९ (ई० स० १९१२) के वैशाख में उसका देहान्त हुआ।

उसके पुत्र जगन्नाथसिंह को महाराणा ने वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में रावबहादुर पंडित सुखदेवप्रसाद के साथ महकमा ख़ास का सेक्रेटरी बनाया और सोने के लंगर दिये। फिर पंडित सुखदेवप्रसाद के स्थान पर दीवान-बहादुर मुन्शी दामोदरलाल नियुक्त हुआ, जिसके साथ भी यह (जगन्नाथसिंह) महकमा ख़ास का कार्यकर्ता रहा। इस समय यह शिशुहितकारिणी सभा (Court of wards) के दो अधिकारियों में से एक है।

दसवां अध्याय

राजपूताने से बाहर के गुहिल (सीसोदिया) वंश के राज्य

मेवाड़ के गुहिलवंशियों का राज्य लगभग १४०० वर्ष से एक ही प्रदेश पर चला आ रहा है। इतने दीर्घकाल तक एक ही भूमि पर एक ही वंश का राज्य चला आता हो ऐसा दूसरा उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही मिले। इस बड़े प्राचीन राज्य के राजवंशियों ने समय समय पर राजपूताने से बाहर भारतवर्ष के अलग अलग विभागों में जाकर अपने राज्य स्थापित किये, जिनका बहुत ही संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता है।

काठियावाड़ आदि के गोहिल

मेवाड़ के राजवंश का संस्थापक गुहिल (गुहदत्त) हुआ, जिसके वंशजों को संस्कृत लेखों में गुहिल, गुहिलपुत्र, गोभिलपुत्र, गुहिलोत और गौहिल्य लिखा है तथा भाषा में उन्हें गुहिल, गोहिल, गहलोत और गेहलोत कहते हैं। संस्कृत के गोभिल[1] और गौहिल्य[2] शब्दों का भाषा में 'गोहिल' रूप बना है।

काठियावाड़ के गोहिलों के दो प्राचीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक मांगरोल (काठियावाड़ में) की सोढली वाव (वापी, बावली) में लगा हुआ वि० सं० १२०२ (वर्तमान) और सिंह संवत् ३२ आश्विन वदि १३ सोमवार (ई० स० ११४४ ता० २८ अगस्त) का है[3] और दूसरा मांगरोल के पास के

---

(१) *अस्ति प्रसिद्धमिह गोभिलपुत्रगोत्रन्तत्राजनिष्ट नृपतिः किल हंसपालः ॥*

भेराघाट का शिलालेख (ए० इं०; जि० २, पृ० ११)

(२) *यस्माद्भवो गुहिलवर्णनया प्रसिद्धां गौहिल्यवंशभवराजगणोऽत्र जातिम् ।*

रावल समरसिंह की वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) की चितोड़ की प्रशस्ति (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ७४)

(३) भावनगर प्राचीन शोधसंग्रह; भाग १, पृ० ४-७।

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १५८-६१।

घेलाणा गांव के कामनाथ के मंदिर का वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७= ई० स० १२३०) का[1] है।

पहले लेख का आशय यह है कि (सोलंकी राजा) सिद्धराज (जयसिंह) अपनी उत्तम कीर्ति से पृथ्वी को अलंकृत कर स्वर्ग को गया तो उसके राज्य-सिंहासन पर कुमारपाल बैठा। गुहिल के वंश में बड़ी कीर्तिवाला साहार हुआ। उसका पुत्र सहजिग (सेजक) चौलुक्य राजा का अंगरक्षक हुआ। उसके बलवान् पुत्र सौराष्ट्र (सोरठ) की रक्षा करने में समर्थ हुए। उनमें से वीर सोमराज ने अपने पिता के नाम पर सहजिगेश्वर नामक शिवालय बनाया, जिसकी पूजा के लिए उसके ज्येष्ठ भाई मूलुक (मूलु) ने, जो सौराष्ट्र का शासक (हाकिम) था, शासन दिया अर्थात् राज्य के मांगरोल, चोरवाड़, वलेज, लाठोदरा, वंथली, जूनग्रा, तलारा (तलोदरा) आदि स्थानों में उस मंदिर के लिए अलग अलग कर लगाये (जिनका विस्तृत वर्णन उस लेख में है)। उक्त लेख में सहजिग और मूलुक के पूर्व 'ठ०' लिखा है, जो 'ठक्कुर' (ठाकुर) पदवी का सूचक है।

दूसरे शिलालेख से, जो वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) का है, पाया जाता है कि ठ० मूलु के पुत्र राणक (राण) के राज्य समय वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) में भृगुमठ में देवपूजा के लिए आसनपट्ट दिया गया।

इन दोनों लेखों से निश्चित है कि गुहिलवंशी (गोहिल) सेजक सोलंकी राजा का अंगरक्षक हुआ। उसके कई पुत्र हुए, जिनमें से दो के नाम मूलुक (मूलु) और सोमराज-उक्त लेख में दिये हैं। मूलुक वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) में सौराष्ट्र का शासक था। मूलुक का पुत्र राणक (राण) हुआ, जो वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) तक जीवित था। उसके वंश में भावनगर के राजा हैं।

इन पुराने लेखों से यह स्पष्ट होता है कि काठियावाड़ के गोहिल गुहिल-वंशी हैं और वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के आसपास सोलंकी राजा सिद्ध-राज (जयसिंह) और कुमारपाल की सेवा में रहकर सौराष्ट्र (सोरठ, दक्षिणी

(१) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १६१ ।

काठियावाड़) पर शासन करते थे । उनके वंशज गोहिलों के राज्य अब भी काठियावाड़ में हैं और उनके अधीन का काठियावाड़ का दक्षिण-पूर्वी हिस्सा अबतक गोहिलवाड़ नाम से प्रसिद्ध है ।

वि० सं० १६०० के पीछे भाटों ने अपनी पुस्तकें बनाना शुरू किया और उन्होंने अनिश्चित जनश्रुति के आधार पर प्राचीन इतिहास लिखा, जिसमें उन्होंने कई राजवंशों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रसिद्ध राजा से मिलाने का उद्योग किया, कई नाम कल्पित धर दिये और उनके मनमाने संवत् लिख डाले, जिनके निराधार होने के कई प्रमाण मिलते हैं। ऐसे राजवंशों में काठियावाड़ के गोहिल भी हैं । भाटों की पुस्तकों के आधार पर लिखी हुई अंग्रेज़ी, गुजराती आदि भाषाओं की पुस्तकों में लिखा मिलता है "विक्रमादित्य को जीतनेवाले पैठण (प्रतिष्ठान) नगर (दक्षिण) में के चन्द्रवंशी शालिवाहन के वंशज गोहिल हैं। उनका प्रथम निवासस्थान मारवाड़ में लूनी नदी के किनारे जूना खेरगढ़ (खेड़) था । उन्होंने वह प्रदेश खेरवा नाम के भील को मारकर लिया और २० पुश्त तक वहां राज्य किया । फिर राठोड़ों ने उनको वहां से निकाल दिया[1]" ।

उन्होंने यह भी लिखा है, "राठोड़ सीहा ने गोहिल मोहदास को मारा, जिससे उसके बेटे झांझर के पुत्र सेजक (सहजिग) की अध्यक्षता में वे ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७) के आस पास सोराष्ट्र (सोरठ, दक्षिणी काठियावाड़) में आये । उस समय राव महिपाल वहां राज्य करता था और उसकी राजधानी जूनागढ़ थी । उसने तथा उसके कुंवर खेंगार ने सेजक को आश्रय दिया और अपनी सेवा में रखकर शाहपुर के आसपास के १२ गांव उसे जागीर में दिये । फिर सेजक ने अपनी कुंवरी वालमबा का विवाह खेंगार के साथ किया और महिपाल की आज्ञा से अपने नाम से सेजकपुर गांव बसाकर आसपास के कितने एक गांव जीत लिये । सेजक की मृत्यु ई० स० १२९० (वि० सं० १३४७) में हुई । उसके राणा, साहो और सारंग नाम के तीन पुत्र हुए । राणा के वंश में भावनगर के, साहा के वंश में पालीताणा के और सारंग के वंश में लाठी के राजा हैं[2]" ।

---

(१) फ़ॉर्ब्स, रासमाला; जिल्द १, पृ० २६५ (ऑक्सफर्ड संस्करण, ई० स० १९२४)।

(२) अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द-

भाटों की पुस्तकों के आधार पर लिखा हुआ उपर्युक्त कथन अधिकांश में कल्पित ही है। विक्रम को जीतनेवाला एवं शक संवत् का प्रवर्त्तक जो शालिवाहन माना जाता है उसका राज्य कभी मारवाड़ में हुआ ही नहीं। वह तो दक्षिण के प्रसिद्ध पैठण नगर का राजा था। वह न तो चन्द्रवंशी और न सूर्यवंशी, किन्तु आन्ध्र (सातवाहन) वंशी था। जैन-लेखक उसका जन्म एक कुम्हार (कुम्भकार) के घर में होना और पीछे से प्रतापी होना बतलाते हैं[1]। पुराणों में सूर्य और चन्द्रवंशों के अन्तर्गत उस वंश का समावेश नहीं है। भाटों को इतना तो मालूम था कि काठियावाड़ के गोहिल शालिवाहन नामक किसी राजा के वंशधर हैं, परन्तु किस शालिवाहन के, यह ज्ञात न होने से उन्होंने दक्षिण के प्रसिद्ध शालिवाहन को उनका पूर्वपुरुष मान लिया। वास्तव में जिस शालिवाहन को भाट लोग गोहिलों का पूर्वज बतलाते हैं वह दक्षिण का आन्ध्रवंशी नहीं, किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी नरवाहन का पुत्र शालिवाहन था। राजपीपला के गोहिलों के भाट की पुस्तक में शालिवाहन के पुत्र का नाम नरवाहन लिखा है[2], परन्तु ये दोनों नाम उलट पुलट हैं। खेड़ इलाके पर मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं का अधिकार था, न कि आन्ध्रवंशियों का। भाटों की ख्यातों में "गोहिल" नाम की उत्पत्ति के विषय में कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु मांगरोल के उपर्युक्त शिलालेख में साहार और सहजिग का गुहिलवंशी[3] होना स्पष्ट लिखा है और ये ही गुहिलवंशी गोहिल नाम से प्रसिद्ध हुए।

राजस्थान (गुजराती); पृ० ११३-१४। मार्कंड नंदशंकर मेहता और मनु नंदशंकर मेहता; हिन्दराजस्थान (अंग्रेज़ी); पृष्ठ ४८७-८८। वॉट्सन्; बॉम्बे गेज़ेटियर; जिल्द ८, काठियावाड़; पृ० ३८७-८८ (ई० स० १८८४ का संस्करण)। नर्मदाशंकर लालशंकर; काठियावाड़ सर्वसंग्रह (गुजराती); पृ० ४१२-१३। कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० ३४६-४७।

(१) मेरुतुङ्ग; प्रबन्धचिन्तामणि; पृ० २४—३० (टिप्पण)।

(२) बॉम्बे गेज़ेटियर; जिल्द ६, पृ० १०६, टिप्पण १। (ई० स० १८८० का संस्करण)

(३) *राज्येऽमुष्य महीभुजो भवदिह श्रीगुहिलाख्यान्वये।*
श्रीसाहार इति प्रभूतगरिमाधारो धरामंडनम् ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १५८।

राठोड़ सीहा-द्वारा खेड़ के गोहिल मोहदास के मारे जाने की कथा एवं उसके पौत्र (झांझर के पुत्र) सेजक का ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७) के आसपास सौराष्ट्र (सोरठ) में जाना और वि० सं० १३४७ (ई० स० १२९०) में उसकी मृत्यु होना भी कल्पित ही है, क्योंकि सेजक (सहजिग) भाटों के कथनानुसार झांझर का पुत्र नहीं, किन्तु साहो (साहार) का पुत्र था और वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) के पूर्व ही उसका देहान्त हो चुका था। उक्त संवत् में तो उसका पुत्र मूलुक (मूलु) सौराष्ट्र में शासन कर रहा था। राठोड़ सीहा की मृत्यु वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में हुई ऐसा उसके मृत्यु-स्मारक-शिलालेख से निश्चित है[1]। सीहा की मृत्यु से लगभग १२५ वर्ष पूर्व ही सेजक की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसी दशा में सेजक के दादा का राठोड़ सीहा के हाथ से मारा जाना कैसे सम्भव हो सकता है।

सोरठ में जाने पर जूनागढ़ के राजा महिपाल और उसके पुत्र खेंगार का सेजक को अपनी सेवा में रखना और १२ गांव जागीर में देना भी सर्वथा निराधार कल्पना है, क्योंकि गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने वि० सं० ११७२ (ई० स० १११५) के आसपास सोरठ पर चढ़ाई कर जूनागढ़ के राजा खेंगार को मारा और वहां पर अपनी तरफ़ का शासक नियत किया था, जो संभवतः सेजक ही होना चाहिये। उसके पीछे उसका पुत्र मूलु वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) में सौराष्ट्र (सोरठ) का शासक था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। ऐसी स्थिति में सेजक का महिपाल और खेंगार की सेवा में रहना और उनसे जागीर पाने की बात भी कल्पित ही है।

भाटों का सेजक के तीन पुत्र—राणो, साहो और सारंग—बतलाना भी गढ़न्त ही है, क्योंकि साहो (साहार) तो सेजक का पिता था और राणो (राणक) उसके पुत्र मूलुक (मूलु) का पुत्र था और वलभी सं० ९११ (वि०सं० १२८७) में राज्य कर रहा था, जैसा कि उसके घेलाणा के शिलालेख से निश्चित है। सेजक के कई पुत्र थे क्योंकि मांगरोल के लेख में 'पुत्र' शब्द बहुवचन में रखा है, किन्तु नाम दो-मूलुक और सोमराज-के ही दिये हैं। ऐसी दशा में सारंग के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

(१) इंडियन एन्टिकेरी; जिल्द ४०; पृ० ३०१।

खेड़ के गोहिलों का राज्य राठोड़ सीहा ने नहीं, किन्तु उसके पुत्र आस्थान ने गोहिलों के मंत्री डाभी राजपूतों के विश्वासघात करने पर वि० सं० १३४० (ई० स० १२८३) के आसपास लिया था। उससे लगभग १५० वर्ष पूर्व ही सेजक के पूर्वज (गोहिल) मारवाड़ छोड़कर गुजरात में चले गये थे और जो गोहिल वहां (खेड में) रहे उनका राज्य आस्थान ने लिया था[१]। अब भी जोधपुर राज्य में 'गोहिलों की ढाणी' नाम का एक छोटासा ठिकाना है, जहां के गोहिल मेवाड़ के राजाओं के वंशज माने जाते हैं[२]। अतएव काठियावाड़ आदि के गोहिलों का मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं के वंशज और सूर्यवंशी होना सिद्ध है, जैसा कि काठियावाड़ में पहले माना जाता था।

वि० सं० की १५ वीं शताब्दी के बने हुए 'मंडलीककाव्य' में, जिसमें जूनागढ़ (गिरनार) के राजाओं का इतिहास है, काठियावाड़ के गोहिलों का सूर्यवंशी और झालों का चंद्रवंशी होना लिखा है[३]। कर्नल टॉड[४], कर्नल वॉट्सन[५], दीवानबहादुर रणछोड़भाई उदयाराम[६] आदि विद्वानों ने भी उनको सूर्यवंशी ही माना है।

ऊपर उद्धृत किये हुए प्रमाणों से स्पष्ट है कि काठियावाड़ आदि के गोहिल शक संवत् के प्रवर्तक आन्ध्र (सातवाहन) वंशी शालिवाहन के वंशज नहीं, किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी शालिवाहन के वंशज हैं और सूर्यवंशी हैं। भाटों ने अपने ऐतिहासिक अज्ञान के कारण उनको चन्द्रवंशी बना दिया है।

---

(१) एपिग्राफ़िआ इण्डिका; जि० २० के परिशिष्ट में प्रकाशित इन्स्क्रिपशन्स ऑफ़ नॉर्दर्न इण्डिआ; पृ० १३२; लेखसंख्या ६८२।

(२) तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़; पृ० २५८।

(३) *रविविभूद्भवगोहिलभल्लकैर्य्यजनवानरभाजनधारव ।*
विविधवर्तनसंचितकारणैः ससमदैः सगदैः समसेव्यत ॥
गंगाधर कविरचित 'मंडलीककाव्य' (मंडलीकचरित); ६। २३।

(४) टॉड राजस्थान; जिल्द १, पृ० १२३; कलकत्ता संस्करण।

(५) वॉट्सन; बाम्बे गेज़ेटियर; जि० ८; काठियावाड़; पृ० २८२।

(६) रासमाला (गुजराती अनुवाद); दूसरा संस्करण, पृ० ७१०, टिप्पण १।

काठियावाड़ में गुहिलवंशियों के राज्य

भावनगर

काठियावाड़ के प्रथम श्रेणी के राज्यों में एक भावनगर भी है। वहां के महाराजा मेवाड़ के सूर्यवंशी शालिवाहन के वंशज हैं। उनका मूल निवास मारवाड़ के खेड़ ज़िले में था। वहां के साहार नामक सामंत का पुत्र सहजिग (सेजक) अणहिलवाड़े के सोलंकी राजाओं के यहां जा रहा और संभवतः सिद्धराज (जयसिंह) का अंगरक्षक[1] हुआ। जब सिद्धराज ने गिरनार के यादव राजा खेंगार को मारा और सोरठ को अपने अधीन किया उस समय सेजक को सौराष्ट्र का शासक (हाकिम) नियत किया हो। उसने अपने नाम से सेजकपुरा बसाया। उसके कई पुत्र हुए, जिनमें से दो के नाम मुलुक (मूलु) और सोमराज मांगरोल के शिलालेख में मिलते हैं। वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) के पूर्व सेजक का देहान्त हो चुका था और उक्त संवत् में उसका पुत्र मूलुक (मूलु) वहां का शासक था। मूलु का पुत्र राणक (राणु) हुआ, जो वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७=ई० स० १२३०) तक तो जीवित था ऐसा उसके समय के शिलालेख से पाया जाता है। भावनगर के राजा उसी राणक (राणु) के वंशज हैं।

राणु का पुत्र मोखड़ा हुआ उसने अपना राज्य बढ़ाया और पीरम में रहा। उसके दो पुत्र डूंगरसिंह और समरसिंह हुए। डूंगरसिंह ने घोघा में अपना राज्य स्थापित किया और समरसिंह राजपीपले (रेव कांठे में) का स्वामी हुआ। डूंगरसिंह के पीछे वीजा, काना और सारंग हुए। काना के

(१) मांगरोल के सोढली 'वाव' के लेख में केवल इतना ही लिखा है कि सहजिग (सेजक) चौलुक्य राजा का अंगरक्षक हुआ, परन्तु किस का यह स्पष्ट नहीं है। सोढली वाव का लेख वि० सं० १२०२ का है। उस समय सहजिग का पुत्र मूलु काठियावाड़ का शासक था। वि० सं० ११९९ में सिद्धराज जयसिंह का देहान्त हुआ और कुमारपाल राजा हुआ। सिद्धराज ने सौराष्ट्र (सोरठ) देशको विजय कर वहां अपना शासक नियत किया था। ऐसी स्थिति में यही अनुमान होता है कि वह (सहजिग) सिद्धराज का अंगरक्षक रहा हो। मूल लेख में यह विषय बहुत संक्षेप से लिखा है।

समय अहमदाबाद के सुलतान की फ़ौज खिराज लेने गई। उसको पूरे रुपये न देने पर वह सारंग को अपने साथ ले गई तो उसका काका राम राज्य को दबा बैठा। सारंग अहमदाबाद से भागकर चांपानेर के रावल की सहायता लेकर उमराले जा पहुंचा और फिर लाठी आदि के अपने रिश्तेदारों की सहायता से उसने अपना राज्य पीछा ले लिया तथा रावल की उपाधि धारण की। सारंग के पीछे शिवदास, जेठा और रामदास गद्दी पर बैठे। रामदास ने ई० स० १५०० (वि० सं० १५५७) में राज्य पाया और ई० स० १५३५ (वि० सं० १५९२) तक शासन किया[1]।

---

(१) मोखड़ा से रामदास तक के राजाओं का समय और वृत्तान्त, जो भावनगर के इतिहास की अंग्रेज़ी, गुजराती आदि पुस्तकों में मिलता है, बहुधा विश्वास के योग्य नहीं है। रामदास के विषय में लिखा है "उसने ई० स० १५०० (वि० सं० १५५७) में राज्य पाया, उसका विवाह चित्तोड़ के राणा सांगा की कुंअरी से हुआ था और जब मालवा के बादशाह (सुलतान) महमूदशाह खिलजी ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय वह राणा की मदद के लिये चित्तोड़ गया और ई० स० १५३५ (वि० सं० १५९२) में वहीं मारा गया"। ये सब कथन सर्वथा कल्पित हैं। सेजक की मृत्यु वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) के पूर्व ही हो चुकी थी। उसके पीछे रामदास तक ९ राजाओं के लिये लगभग ४०० वर्ष होते हैं, जिससे प्रत्येक राजा का राजत्वकाल ४५ वर्ष के क़रीब होता है, जो मानने योग्य नहीं है।

राणा सांगा की पुत्री से रामदास का विवाह होना भाटों की गढ़ंतमात्र ही है। मालवा के सुलतान महमूदशाह खिलजी (दूसरे) ने कभी चित्तोड़ पर चढ़ाई नहीं की। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२८) में महाराणा सांगा तो मर चुका था। गुजरात के बहादुरशाह ने ई० स० १५३१ (वि० सं० १५८८) में महमूदशाह खिलजी (दूसरे) को क़ैद कर मालवा गुजरात के राज्य में मिला लिया था और वह (महमूद खिलजी) क़ैद में ही मारा गया। ऐसी अवस्था में ई० स० १५३५ (वि० सं० १५९२) में मालवा के महमूदशाह की महाराणा सांगा के साथ चित्तोड़ में लड़ाई होना और रामदास का मारा जाना भाटों की कपोल कल्पना के सिवाय क्या हो सकता है?

ऐसे ही रामदास के पूर्वज सारंग का ई० स० १४२० (वि० सं० १४७७) में गद्दी पर बैठना लिखा है वह भी विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि भावनगर राज्य के तलाजा नामक स्थान से 'विष्णु-भक्तिचन्द्रोदय' नामक हस्तलिखित पुस्तक मिली है, जो वि० सं० १४६९ की लिखी हुई है। उसमें लिखा है कि उक्त संवत् में घोघा बंदर पर मलिक श्रीउस्मान और रावल सारंगदेव का अधिकार था (संवत् १४६९ वर्षे फाल्गुनशुदि १२ रवावद्येह घोघावेलाकुले महामलिकश्रीउस्मानतथाराउलश्रीसारंगदेवपंचकुलप्रतिपत्तौ)।

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स पृ० १६१।

रामदास के पीछे सरतान (सुरताण) और वीसा ने क्रमशः राज्य पाया। वीसा ने सीहोर पर अधिकार कर उसको अपनी राजधानी स्थिर किया। वीसा के पीछे धूणा, रतन और हरभम क्रमशः राज्य के स्वामी हुए। हरभम की मृत्यु ई० स० १६२२ (वि० सं० १६७६) में हुई और उसका बालक पुत्र अखेराज उसका उत्तराधिकारी हुआ। हरभम का भाई गोविन्द उस(अखेराज)का राज्य दबा बैठा, परन्तु अखेराज ने गोविन्द के मरने पर उसके पुत्र सत्रशाल से अपना राज्य पीछा ले लिया। ई० स० १६६० (वि० सं० १७१७) में अखेराज की मृत्यु हुई। उसके पीछे रतन (दूसरा) और उसके पीछे भावसिंह राज्य का स्वामी हुआ।

भावसिंह ने ई० स० १७२३ (वि० सं० १७८०) में भावनगर बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया और घोघे की तरफ़ की भूमि दबाकर अपना राज्य बढ़ाया। भावसिंह ने अपने राज्य में व्यापार की वृद्धि की और अपने पास के समुद्र के लुटेरों का दमन किया, जिससे भावनगर राज्य और बम्बई की गवर्नमेन्ट में घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। रावल भावसिंह ने खंभात के नवाब से रक्षा करने के निमित्त सूरत के सीदी को भावनगर के बन्दरगाह की चुंगी में से चौथाई देना स्वीकार किया, जो ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१६) से अंग्रेज़ी सरकार को दी जाने लगी।

भावसिंह के पांच पुत्रों में से ज्येष्ठ अखेराज उसका उत्तराधिकारी हुआ और वीसा वळा का स्वामी हुआ। रावल अखेराज ने लुटेरे कोलियों से तलाजा और महुवा छुड़ाने में बम्बई सरकार की सहायता की, जिससे उन ज़िलों पर सरकार का अधिकार हो जाने पर उसने तलाजे का क़िला अखेराज को देना चाहा, परन्तु उसके अस्वीकार करने पर वह खंभात के नवाब को दिया गया। अखेराज का ई० स० १७७२ (वि० सं० १८२६) में देहान्त हो जाने पर वख़्तसिंह उसका क्रमानुयायी हुआ। उसने तलाजे का क़िला छीन लिया, परन्तु अन्त में उसके लिये ७५,००० रु० उसके लिये देने पड़े।

मरहटों के उत्कर्ष के समय गुजरात और काठियावाड़ पेशवा और गायकवाड़ के बीच बँट गये, तब भावनगर राज्य का पश्चिमी अर्थात् बड़ा विभाग गायकवाड़ के और पूर्वी अर्थात् छोटा विभाग, जिसमें भावनगर था, पेशवा के

अधिकार में माना गया। ई० स० १८०२ (वि० सं० १८५६) में बसीन की सन्धि के अनुसार धुंधुका और घोघा के परगने सरकार अंग्रेज़ी के अधीन हुए। तब से इस राज्य का सम्बन्ध सरकार अंग्रेज़ी तथा गायकवाड़ के साथ रहा।

अंग्रेज़ों को ११६५० रु० और गायकवाड़ को ७४५०० रु० सालाना देना पड़ता था। ई० स० १८०७ (वि० सं० १८६४) में गायकवाड़ ने फ़ौज ख़र्च के लिये भावनगरवाली रक़म सरकार अंग्रेज़ी को सौंप दी। ई० स० १८१२ (वि० सं० १८६६) में वख़्तसिंह ने वृद्धावस्था के कारण राज्याधिकार अपने पुत्र विजयसिंह को दे दिये।

विजयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र भावसिंह का देहान्त अपने पिता की विद्यमानता ही में हो जाने के कारण उसका पुत्र अखेराज (तीसरा) ई० स० १८५२ (वि० सं० १६०६) में अपने दादा का उत्तराधिकारी हुआ। उसके पीछे उसका भाई जसवन्तसिंह ई० स० १८५४ (वि० सं० १६११) में उसका क्रमानुयायी हुआ।

ई० स० १८६७ (वि० सं० १६२४) में उसे के० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला और ई० स० १८७० (वि० सं० १६२७) में उसका देहान्त हुआ। उसके बाद उसका बालक पुत्र तख़्तसिंह राज्य का स्वामी हुआ। वह पढ़ने के लिये राजकुमार कॉलेज (राजकोट) में भेजा गया और राज्य का काम एक अंग्रेज़ अफ़सर और दीवान गौरीशंकर उदयशंकर ओझा सी० आई० ई० चलाते रहे। ई० स० १८७८ (वि० सं० १६३५) में उसको राज्याधिकार और ई० स० १८८१ (वि० सं० १६३८) में जी० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला। उसने इंगलैंड की सैर की और केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से एलएल० डी० की डिग्री (Honorary) प्राप्त की। ई० स० १८६६ (वि० सं० १६५३) में उसका देहान्त हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र भावसिंह (दूसरा) गद्दी पर बैठा। उसका प्रथम दीवान विट्ठलदास श्यामलदास हुआ और उसके इस्तीफ़ा देने पर विजयशंकर गौरीशंकर ओझा और उसके बाद (सर) प्रभाशंकर दलपतराम पट्टनी सी० आई० ई० प्रधान हुआ। उसके समय राज्य की बहुत कुछ उन्नति हुई। उसको 'महाराजा' एवं 'के० सी० एस० आई०' का ख़िताब मिला। उसका देहान्त होने पर उसके पुत्र कृष्णकुमारसिंहजी ई० स० १६१६ (वि० सं० १६७६) में सात वर्ष की आयु में भावनगर राज्य के स्वामी हुए।

इस राज्य में २८६० वर्गमील भूमि, ४२६४०४ मनुष्यों की आबादी (ई० स० १६२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और ११०८५००० रु० की आमद है। सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से यहां के राजा को १३ तोपों की सलामी है।

पालिताणा

पालिताणा काठियावाड़ में दूसरे दर्जे का राज्य है। पालिताणा नगर के पास ही शत्रुंजय (शत्रुंजा) पर्वत जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है।

भाटों की ख्यातों के अनुसार गोहिल सेजक के पुत्र साहा (साहो) को मांडवी की जागीर मिली, पीछे उसने गारियाधर बसाया और वहीं रहने लगा। हम ऊपर गोहिलों के हाल में बतला चुके हैं कि साहा (साहार) सेजक का पुत्र नहीं किन्तु पिता था। मांडवी की जागीर पानेवाला सेजक का कोई दूसरा ही पुत्र हो। उसके पीछे सरजण, अरजण और नौघण हुए।

जब भावनगरवालों के पूर्वज सारंग को अहमदाबाद के सुलतान की फ़ौज अपने साथ ले गई उस वक्त उसका काका राम उसका राज्य दबा बैठा। फिर वह (सारंग) वहां से भागा और चांपानेर के रावल से सहायता लेकर उमराले पर चढ़ा उस समय नौघण ने उसकी सहायता की जिसके उपलक्ष्य में उसने उसको १२ गांव दिये, जिससे गारियाधर के राज्य का विस्तार बढ़ा। नौघण के पीछे भारा, बन्ना, शिवा, हद्दा, खांधा और नौघण (दूसरा) क्रमशः गारियाधर के स्वामी हुए। नौघण (दूसरे) के समय केरड़ी के काठी सरदार लोमा(खुंमाण)ने गारियाधर छीन लिया, परन्तु सिहोर के स्वामी की मदद से उसने अपनी राजधानी वापस ले ली। उसके पीछे अर्जुन (दूसरा), खांधा (दूसरा) और शिवा (दूसरा) क्रमशः राज्य के मालिक हुए। शिवा (दूसरा) काठी कुमा (खुंमाण) के साथ की लड़ाई में खारा गांव के पास मारा गया।

शाहजहां बादशाह के समय यह इलाक़ा मुग़ल राज्य के अन्तर्गत रहा, जिसको मुरादबख़्श ने शान्तिदास नाम के एक जैन जौहरी को दे दिया। शान्तिदास के कोठीवालों ने दारा और औरंगज़ेब के बीच की लड़ाइयों में दारा की रुपयों से सहायता की। औरंगज़ेब के मरने के पीछे मुग़ल राज्य की अवनति

के समय यह इलाक़ा गारियाधर के गोहिलों के हाथ में गया और पालीताणा उनकी राजधानी हुई।

शिवा (दूसरा) के बाद सुरताण, खांधा (तीसरा), पृथ्वीराज, नौघण (तीसरा) और सुरताण (दूसरे) ने क्रमशः राज्य पाया। सुरताण को उसके कुटुम्बी अल्लू भाई ने ई० स० १७६६ (वि० सं० १८२३) में पालीताणा के पास छल से मारकर उसका राज्य दबा लिया। इसपर उस(सुरताण)के भाई उनड़ ने उस(अल्लू)को मारकर राज्य पीछा अपने अधीन कर लिया। उसके समय भावनगर और पालीताणा के बीच लड़ाई हुई, जिसमें पालीताणा-वालों की हार हुई, परन्तु अन्त में सुलह हो गई।

इन लड़ाइयों में पालीताणा राज्य को अहमदाबाद के सेठ वख़तचन्द खुशालचन्द से, जो शान्तिदास जौहरी का वंशधर था, बहुत कर्ज़ लेना पड़ा और उसके एवज़ में राज्य का अधिकांश उसके यहां गिरवी रखना पड़ा। ई० स० १८२० (वि० सं० १८७७) में उनड़ का देहान्त हुआ। मरहटों के उत्कर्ष के समय यह इलाक़ा गायकवाड़ के अधीन हुआ। उनड़ के पीछे उसका पुत्र खांधा (चौथा) इस राज्य का स्वामी हुआ। ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) से ई० स० १८३१ (वि० सं० १८८८) तक कर्ज़दारी के कारण इस राज्य की आमद सेठ वख़तचन्द खुशालचन्द के ठेके में रही। अंग्रेज़ों के समय यह ठेका ई० स० १८४३ (वि० सं० १९००) तक वख़तचन्द के पुत्र हेमचन्द के हाथ में रहा। ई० स० १८४० (वि० सं० १८९७) में खांधा का देहान्त होने पर उसका पुत्र नौघण (चौथा) उसका क्रमानुयायी हुआ। वह भी अपने पिता के समान निर्बल था, जिससे राज्य कर्ज़ में डूबा हुआ जैन सेठ के हाथ में रहा। उसके समय कुंवर प्रतापसिंह राज्य का काम संभालने लगा। उसने देखा कि जब तक कर्ज़ चुकाकर जैन सेठ के हाथ से राज्य छुड़ाया न जायेगा तब तक उसके राज्य का उद्धार न होगा। ई० स० १८४४ (वि० सं० १९०१) में उसने अधिकांश कर्ज़ चुकाकर राज्य की आय सेठ के हाथ से अपने हाथ में ले ली। ई० स० १८६० (वि० सं० १९१७) में उसके पिता के देहान्त होने पर वह राज्य का स्वामी हुआ, परन्तु उसी साल उसकी मृत्यु हो गई, जिससे उसका पुत्र सूरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी बुद्धिमानी और योग्यता से अपने राज्य को सम्पन्न बनाया।

उसको घोड़ों का बड़ा शौक़ था, जिससे वह अपने यहां अच्छे अच्छे घोड़े रखता था। ई० स० १८८५ (वि० सं० १९४२) में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र मानसिंह पालीताणा का स्वामी हुआ। वह विद्वान् और मिलनसार था। ई० स० १९०५ (वि० सं० १९६२) में उसका देहान्त होने पर उसके पुत्र बहादुरसिंहजी राज्य के स्वामी हुए, जो इस समय वहां के ठाकुर हैं।

इस राज्य का क्षेत्रफल २८९ वर्गमील के क़रीब, आबादी ५७९२९ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय १०५३००० है। यहां के राजाओं की सलामी ९ तोपों की और 'ठाकुर' उनका ख़िताब है।

लाठी

काठियावाड़ के राज्यों में लाठी चौथे दर्जे के राज्यों में से एक है। गोहिल सेजक के पुत्र सारंग के वंश में लाठीवाले माने जाते हैं।

भाटों के कथनानुसार सारंग को आर्थिला का परगना जागीर में मिला था। उसका पुत्र जस्सा हुआ। उस (जस्सा) के पुत्र नौघण ने लाठी को विजय किया। नौघण के पीछे उसका भाई भीम गद्दी पर बैठा। भीम के अर्जुन और दूदा नाम के दो पुत्र हुए[1]। मंडलीक महाकाव्य में लिखा है—"अर्जुन ने मुसलमानों के बहुतसे सैन्य को मारा और अन्त में लड़कर मारा गया।

(१) गुजरात राजस्थान में लिखा है कि भीम के दो पुत्र - बड़ा दूदा और छोटा अर्जुन - हुए, परन्तु मंडलीक महाकाव्य से पाया जाता है कि भीम के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र अर्जुन उसका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु उसके वीरता-पूर्वक मुसलमानों से लड़कर मारे जाने के पश्चात् उसका छोटा भाई दूदा राज्य का स्वामी हुआ।

कुलेन किंचित्सदृशो हि राजन् गोहिल्लभीमर्क्षितिपालपुत्रः ।
राजार्जुनो योऽर्जुनतुल्यतेजा(स्)तुरुष्कधानुष्कबलान्यघातीत् ॥ ५१ ॥
स चार्जुनक्षोणिपतिस्तुरुष्कनाथस्य सैन्यानि बहूनि हत्वा ।
स्नात्वारिनिस्त्रिंशजलेन देवो दिव्याङ्गनालिङ्गनलालसोऽभूत ॥ ५२ ॥
तस्यानुजः शास्ति तदीयराज्यं तेनैव पुत्रत्वपदेऽभिषिक्तः ।
....................दूदावनीशः सदुदारचित्तः ॥ ५४ ॥

मंडलीक काव्य; सर्ग ३ (नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ३, पृ० ३१८)।

उसके पीछे उसका भाई दूदा उसके राज्य का स्वामी हुआ। अर्जुन के कुन्ता नाम की पुत्री थी, जिसका पालन दूदा अपनी पुत्री के समान करता था। उसका विवाह गिरनार के राजा महिपाल के पुत्र मंडलीक के साथ हुआ। दूदा मुसलमान सुलतान की भूमि को अपने अधीन करता जाता था। सुलतान से महिपाल की मैत्री थी, इसलिये उसने महिपाल से कहलाया कि तुम्हारा रिश्तेदार मेरी भूमि छीनता जाता है, इसलिये उसे रोकना चाहिये। महिपाल ने सुलतान की सहायता करना निश्चय किया। इसपर उसके कुंवर मंडलीक ने दूदा के राज्य पर चढ़ाई कर उसके गांव जलाना शुरू कर दिया। दूदा भी उसके सामने आ खड़ा हुआ और दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। दूदा ने मंडलीक से कहा कि मेरी (मेरे भाई की कन्या) भतीजी तुमको व्याही है, इसलिये मैं तुमसे युद्ध न करूंगा, परन्तु मंडलीक ने इसे स्वीकार नहीं किया। अन्त में लड़ाई हुई और दूदा मारा गया।" इस लड़ाई से आर्थिले का नाश हुआ, जिससे दूदा के पुत्र लूणशाह (जीजीबावा) ने लाठी को अपनी राजधानी बनाया।

भावनगरवालों के पूर्वज सारंग को उसका गया हुआ राज्य पीछा प्राप्त कराने में लूणशाह ने सहायता दी, जिसके बदले में उस (सारंग) ने उसको १२ गांव दिये। लाठी के स्वामी बड़े बहादुर थे और उन्होंने आसपास के गांव जीतकर अपना राज्य बढ़ाया, परन्तु पिछले समय में भावनगर, पालिताणा और काठियों के बड़े आक्रमणों से राज्य का अधिकांश हिस्सा उनके हाथ से निकल गया और बाकी का ऊजड़ हो गया, जिससे लाखा गायकवाड़ को खिराज न दे सका। ऐसी स्थिति में उसने अपनी पुत्री का विवाह दामाजी गायकवाड़ के साथ कर दिया। इस सम्बन्ध से लाठी के राज्य का अन्त होता बच गया। गायकवाड़ ने उसका तमाम खिराज छोड़ दिया और सालाना केवल एक घोड़ा लेना स्वीकार किया।

लाखा के पीछे सूरसिंह हुआ। फिर उसका वंशज तख्तसिंह लाठी का स्वामी हुआ। उसके बाद सूरसिंह (दूसरा, बापूभा) उसका उत्तराधिकारी हुआ। प्रतापसिंह का पुत्र प्रह्लादसिंह लाठी का वर्तमान ठाकुर है।

इस राज्य का क्षेत्रफल क़रीब ४२ वर्गमील, आबादी ८३३५ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय २१२००० रु० है।

वळा

काठियावाड़ के तीसरे दर्जे के राज्यों में से एक वळा है। सुप्रसिद्ध प्राचीन नगर वलभीपुर के स्थान पर इस समय वळा नगर है। वह नगर (वलभीपुर) जैन और बौद्ध आचार्यों का निवासस्थान था। वहां अनेक बौद्ध-मठ थे, जिनमें कई भिक्षुक और भिक्षुणियां रहती थीं। ऐसी प्रसिद्धि है कि ई० स० की पांचवीं शताब्दी के मध्य में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने वलभी में धर्म-परिषद् स्थापित की थी और जैनों के सूत्र-ग्रन्थों को लिपिबद्ध कराया था। भट्टिकाव्य भी इसी नगर में रचा गया था। भावनगर के राजाओं के पूर्वज भावसिंह के, जिसने भावनगर बसाया था, पांच पुत्रों में से अखेराज तो उसका उत्तराधिकारी हुआ और वीसा को वळा की जागीर मिली। उसने अपनी वीरता से बहुतसे और गांव जीतकर एक अलहदा राज्य स्थापित किया। ई० स० १७७४ (वि० सं० १८३१) में उसकी मृत्यु होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नथुभाई वळा का स्वामी हुआ। नथुभाई के पीछे उसका पुत्र मघाभाई उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपना राज्य और भी बढ़ाया। ई० स० १८१४ (वि० सं० १८७१) में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र हरभम राज्य का मालिक हुआ।

हरभम का ज्येष्ठ पुत्र कल्याणसिंह अपने पिता की विद्यमानता में ही मर गया, जिससे ई० स० १८३८ (वि० सं० १८९५) में हरभम की मृत्यु हो जाने पर उसका दूसरा पुत्र दौलतसिंह वळा की गद्दी पर बैठा।

दौलतसिंह भी दो वर्ष राज्य करके छोटी उम्र में ही गुज़र गया तो हरभम का भाई पथाभाई उसका उत्तराधिकारी हुआ। राज्य-कार्य की ओर उसका लक्ष्य न होने से उसका कुंवर पृथ्वीराज राज्य का काम चलाता था। पृथ्वीराज ई० स० १८५३ (वि० सं० १९१०) में अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और उसके देहान्त के समय उसके कुंवर मेघराज के बालक होने के कारण राज्य का प्रबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट के नियत किये हुए अधिकारी करते रहे। उसको अधिकार मिलने पर उसने बहुतसा कर्ज़ कर लिया, जिससे राज्य का प्रबन्ध एक एडमिनिस्ट्रेटर के द्वारा होने लगा। मेघराज का देहान्त होने पर ११ वर्ष की उम्र का उसका कुंवर वखतसिंह राज्य का स्वामी हुआ। उसने राजकोट के राजकुमार कॉलेज में शिक्षा पाई है।

वळा का क्षेत्रफल ११० वर्गमील भूमि, आबादी ११३८६ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय ३४२००० है।

उपर्युक्त राज्यों के अतिरिक्त काठियावाड़ के गोहिलवाड़ प्रदेश में नीचे लिखे बहुतसे छोटे बड़े ठिकाने भी गोहिलों के हैं—आलमपुर, भोजावदर, चमारड़ी, चित्रावाव, धोला, गढाली, मठूला, गन्धोल, काटोडिया, खिजड़िया दोसाजी, लीमड़ा, पच्छेगांव, रामणका, रतनपुर धामणका, समढीयाला, सोहनगढ़, टोडाटोडी, बड़ोद, वांगधा, वावड़ी धरवाला और वावड़ी वछाणी। इन सब ठिकानों का सम्बन्ध सरकार अंग्रेज़ी से है।

गुजरात में गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

राजपीपला

गुजरात के रेवाकांठा इलाक़े में राजपीपला नामक गोहिलों का राज्य है जो भावनगर के राजवंश से निकला हुआ है। उनके भाटों के कथन के आधार पर लिखी हुई अंग्रेज़ी और गुजराती भाषा की पुस्तकों में उनको दक्षिण के सूर्यवंशी[1] शालिवाहन के वंशज लिखे हैं। भावनगरवालों का पूर्वज मोखड़ा पीरम में रहता था। उसका ज्येष्ठ पुत्र डूंगरसिंह घोघा में रहा और दूसरा समरसिंह राजपीपले का स्वामी हुआ। समरसिंह, जो अपने ननिहाल में रहता था, परमार जाति के अपने नाना की मृत्यु के पीछे राजपीपला राज्य का मालिक हुआ और उसने अपना नाम अर्जुनसिंह रखा।

उसके पीछे भाणसिंह और गेमलसिंह हुए। गेमलसिंह के समय गुजरात के सुलतान ने राजपीपला छीन लिया, परन्तु उसके पुत्र विजयपाल ने राज्य पीछा अपने अधीन कर लिया। विजयपाल के पीछे उसका पुत्र रामशाह (हरिसिंह) राजा हुआ। हरिसिंह के समय सुलतान अहमदशाह ने उसका

(१) मार्कण्ड नन्दशंकर मेहता और मनु नन्दशंकर मेहता; हिन्दराजस्थान (अंग्रेज़ी); पृ० ७३३। कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० १५६।

राज्य छीन लिया जो १२ वर्ष के बाद पीछा मिला। उसके पीछे पृथ्वीराज, दीपा, करण, अभयराज, सुजानसिंह और भैरवसिंह[1] क्रमशः राजा हुए। भैरवसिंह की मृत्यु के पीछे पृथ्वीराज (दूसरा) गद्दी पर बैठा।

बादशाह अकबर ने गुजरात को अपने अधीन कर राजपीपले के राजा को दबाने के लिए नांदोद में थाना रखा। अन्त में राज्य ने ३५५५६ रु० सालाना ख़िराज के देना स्वीकार किया। पृथ्वीराज के पीछे दिलीपसिंह, दुर्गशाह, मोहराज, रायसाल, चन्द्रसेन, गंभीरसिंह, सुभेराज, जयसिंह, मूलराज, सुरमाल, उदयकरण, चन्द्र, छत्रसाल और वैरीसाल क्रमशः राजपीपले के राजा हुए। वैरीसाल के समय वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०५) में मरहटों ने गुजरात के दक्षिण भाग पर चढ़ाई कर देश को उजाड़ना शुरू किया, इसपर बादशाह औरंगज़ेब ने अपने दो अफ़सरों को ससैन्य मरहटों पर भेजा।

वि० सं० १७७२ (ई० स० १७१५) में वैरीसाल की मृत्यु होने पर उसके ज्येष्ठ पुत्र जीतसिंह ने राज्य पाया। उसने मुग़लों की अवनति और मरहटों का उदय देख नांदोद का परगना अपने राज्य में मिला लिया और वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में नांदोद नगर को अपनी राजधानी बनाया। वि० सं० १८११ (ई० स० १७५४) में जीतसिंह की मृत्यु हुई और उसका पुत्र प्रतापसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके समय दामाजी गायकवाड़ ने पेशवा की आज्ञा लेकर राजपीपला राज्य के चार परगनों–नांदोद, भालोद, वरीटी और गोवाली–की आय का आधा हिस्सा लेना स्थिर किया। प्रतापसिंह का उत्तराधिकारी रायसिंह हुआ। उसकी भतीजी से दामाजी गायकवाड़ ने शादी की, जिससे उसने उन परगनों की आय के बदले सालाना केवल ४०००० रु० लेना स्वीकार किया, परन्तु फ़तहसिंह राव गायकवाड़ ने नांदोद

(१) राजपीपला के इतिहास में लिखा है कि जब बादशाह अकबर ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय महाराणा उदयसिंह राजपीपला राज्य में आया और कुछ काल तक भैरवसिंह के आश्रय में रहा (गुजरात राजस्थान १५८); परन्तु यह कथन कल्पित है। महाराणा उदयसिंह राजपीपले के राजा के यहां नहीं, किन्तु उदयपुर राज्य में ही भोमट के पहाड़ों में रहा था। बड़ोदे से भी दक्षिण के दूरस्थित राजपीपला तक जाने की उसे आवश्यकता ही नहीं थी।

पर आक्रमण कर ४६००० रु० छुट्टंद के ठहराये। ई० स० १७८६ (वि० सं० १८४३) में रायसिंह से उसके भाई अजबसिंह ने राज्य छीन लिया। उसके समय राज्य की बहुत बरबादी हुई और गायकवाड़ ने अपना ख़िराज बढ़ाकर ७८००० रु० कर लिया। अजबसिंह के चार कुंवरों में से ज्येष्ठ तो उसकी विद्यमानता ही में मर गया। उसका दूसरा पुत्र रामसिंह राज्य का हक़दार था, परन्तु उसका छोटा भाई नाहरसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु गायकवाड़ की सेना ने उसको निकालकर रामसिंह को ही राजा बनाया। उसको ऐय्याश और शराबी देखकर गायकवाड़ ने वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में राज्य पर सेना भेजकर ख़िराज बढ़ा दिया, एवं वि० सं० १८६७ (ई० स० १८१०) में उसको पदच्युत कर उसके पुत्र प्रतापसिंह को राज्य का स्वामी बनाया। उसके समय उसके चाचा नाहरसिंह ने राज्य के लिये दावा किया और यह ज़ाहिर किया कि प्रतापसिंह मेरे भाई की राणी से उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु एक राजपूत का लड़का है। इस दावे की तहक़ीक़ात में गायकवाड़ ने कई वर्ष लगा दिये और राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। अन्त में गायकवाड़ के असिस्टेन्ट रेज़िडेन्ट ने प्रतापसिंह को झूठा दावादार बताकर नाहरसिंह का हक़ स्वीकार किया, परन्तु उसके अन्धा होने के कारण उसका पुत्र वेरीसाल वि० सं० १८७७ (ई० स० १८२१) में नांदोद का राजा बनाया गया।

गायकवाड़ को महिकांठा और काठियावाड़ के समान यह राज्य भी सरकार अंग्रेज़ी को सौंपना पड़ा और वि० सं० १८८० (ई० स० १८२३) में यह निश्चय हुआ कि राजपीपला का राजा सरकार अंग्रेज़ी की मारफ़त ६५००१ रु० गायकवाड़ को दे। उस समय राज्य कर्ज़ में डूबा हुआ था और कमज़ोर हो रहा था, इसलिये राज्यप्रबन्ध सरकार अंग्रेज़ी की निगरानी में रहा, जिससे उसकी हालत सुधरती गई। वि० सं० १८९४ (ई० स० १८३७) में वैरीसाल को राज्य का अधिकार सौंप दिया गया। उसने वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में सरकार अंग्रेज़ी की स्वीकृति से अपने पुत्र गंभीरसिंह को गद्दी पर बिठाया, किन्तु राज्य का काम अपने हाथ में रखा। थोड़े दिनों पीछे पिता-पुत्र में अनबन हुई और अन्त में सरकार ने बीच में पड़कर गंभीरसिंह को ही राजा माना।

गंभीरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र छत्रसिंह हुआ। उसके पुत्र विजयसिंहजी राजपीपला के वर्तमान महाराणा हैं। इनको के० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला है और सेना में कप्तान का पद है।

इस राज्य में क़रीब १५१८ वर्गमील भूमि, १६८४५४ मनुष्यों की आबादी (ई० स० १६२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय २४३२००० रु० की है। यहां के राजाओं का ख़िताब महाराणा है और उनको १३ तोपों की सलामी है।

धरमपुर

गुजरात के सूरत ज़िले में गुहिलवंशियों का धरमपुर राज्य है। चित्तोड़ के स्वामी रणसिंह (कर्णसिंह) का उत्तराधिकारी क्षेमसिंह हुआ। उसके दो भाई माहप और राहप थे। माहप को सीसोद की जागीर मिली। उसके पीछे उसकी जागीर का स्वामी उसका छोटा भाई राहप हुआ। सीसोद में रहने के कारण ये लोग सीसोदिये और चित्तोड़ की छोटी शाखा में होने के कारण राणा कहलाये।

राहप के वंश में से रामशाह[1] (रामराजा) नाम का एक पुरुष गुजरात में गया, जिसके वंश में धरमपुर के स्वामी हैं। ई० स० १२६२ (वि० सं०

---

(१) अंग्रेज़ी और गुजराती इतिहास की पुस्तकों में लिखा है कि रामशाह (रामराजा) चित्तोड़ से गुजरात में आया उस समय उसके साथ उसका एक भाई भी था, जो अलीराजपुर (मध्य-भारत में) के राजाओं का मूल पुरुष हुआ; हिन्द-राजस्थान (गुजराती); पृ० १०४। गुजरात राजस्थान पृ० २३६। हिन्द राजस्थान (अंग्रेज़ी) पृ० ८४४। इससे पाया जाता है कि अलीराजपुर के राजा भी सीसोदिये थे। इस बात की और भी पुष्टि होती है, क्योंकि गुमानदेव और अभयदेव अलीराजपुर से ही धरमपुर गोद गये थे, जहां उनके नाम क्रमशः नारायणदेव और सोमदेव रक्खे गये थे। कप्तान लुअर्डकृत अलीराजपुर के गेज़ेटियर में भी उनका धरमपुर के राज्य का स्वामी होना लिखा है। सेन्ट्रल इंडिया गेज़ेटियर, जिल्द ५, भाग १, पृ० ५६७ के पास का अलीराजपुर के राजाओं का वंश-वृक्ष।

यदि वे सीसोदिये न होते तो धरमपुर गोद न जाते। संभव है कि इतिहास के अन्धकार में वहां के सीसोदिये राजाओं ने अपने को पीछे से राठोड़ मान लिया हो। इम्पीरियल गेज़ेटियर में लिखा है "उदयदेव (आनन्ददेव) ने इस राज्य की स्थापना की। उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह उसी वंश का राठोड़ था जिस वंश में जोधपुर के राजा हैं, परन्तु इस सम्बन्ध को राजपूताने के बड़े राजवंशी स्वीकार नहीं करते। इम्पीरियल गेज़ेटियर ऑफ़ इंडिया जिल्द ५, पृ० २२३।

१३१६) में उसने[1] वहां के भील राजा को मारकर उसका राज्य छीन लिया और उसका नाम रामनगर रक्खा। उसके पीछे सोमशाह, पुरंदरशाह, धर्मशाह, भोपशाह, जगत्शाह, नारायणशाह, धर्मशाह (दूसरा) और जगत्शाह (दूसरा, जयदेव) क्रमशः वहां के स्वामी हुए। जगत्शाह (जयदेव) का देहान्त वि० सं० १६२३ (ई० स० १५६६) में हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र लक्ष्मणदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके समय बादशाह अकबर ने गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह से गुजरात छीन लिया तब से यह राज्य अकबर के साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया और राज्य ने उसको सालाना ख़िराज देना स्वीकार किया। लक्ष्मणदेव के पीछे उसके पुत्र सोमदेव ने राज्य पाया। उसके उत्तराधिकारी रामदेव ने छत्रपति शिवाजी को सूरत की चढ़ाई में अच्छी सहायता दी। रामदेव के पीछे सहदेव और उसके पीछे रामदेव (दूसरा) राजा हुआ। रामदेव के समय मरहटों का आक्रमण हुआ और उन्होंने राज्य पर चौथ (ख़िराज) लगाई तथा ७२ गांव छीन लिये, जो पेशवा ने पोर्चुगीज़ों के जहाज़ लूटे तब उनके हर्जाने में उनको दिये। अब तक उनमें से बहुतसे गांव पोर्चुगीज़ों के अधीन के दमन परगने में हैं।

रामदेव का देहान्त वि० सं० १८२१ (ई० स० १७६४) में हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र धर्मदेव हुआ। उसने अपने नाम से धर्मपुर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। वि० सं० १८३१ (ई० स० १७७४) में धर्मदेव का निस्सन्तान देहान्त होने पर आलीराजपुर से गुमानदेव गोद लिया जाकर

(१) गुजराती और अंग्रेज़ी की पुस्तकों में धरमपुर के राजा रामशाह (रामराजा) से रामदेव (दूसरे) तक १४ राजाओं में से प्रत्येक का राजत्वकाल भाटों के अनुसार दिया है, जो सर्वथा कल्पित है, क्योंकि रामराजा के राज्य का प्रारम्भ ई० स० १२६२ में और रामदेव (दूसरे) के राज्य की समाप्ति ई० स० १७६४ में होना लिखा है, जिससे इन १४ राजाओं का राजत्वकाल ५०२ वर्ष अर्थात् प्रत्येक राजा का राजत्वकाल क़रीब ३६ वर्ष आता है, जो अधिक है। इसीसे हमने उन राजाओं के संवत् छोड़ दिये हैं। वास्तव में रामदेव (दूसरे) के पीछे के राजाओं के ही संवत् विश्वास के योग्य हैं, क्योंकि धरमदेव के राज्य का प्रारम्भ ई० स० १७६४ (वि० सं० १८२१) और मोहनदेव का देहान्त ई० स० १६२१ (वि० सं० १६७८) में हुआ। इन आठ राजाओं का राजत्वकाल १५७ वर्ष आता है, जिससे प्रत्येक राजा का राज्य-समय क़रीब १६ वर्ष होता है।

उसका नाम नारायणदेव रखा गया। तीन वर्ष बाद उसकी भी मृत्यु हो गई। उसके भी कोई पुत्र न था, इसलिये उसका भाई अभयदेव अलीराजपुर से गोद गया और उसका नाम सोमदेव रखा गया। वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में उसका देहान्त होने पर उसका पुत्र रूपदेव उसका क्रमानुयायी हुआ।

वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२) में पेशवा और अंग्रेज़ी सरकार के बीच बसीन की सन्धि हुई, तब से इस राज्य का सम्बन्ध पेशवाओं से छूटकर अंग्रेज़ों से हुआ। वि० सं० १८६४ (ई० स० १८०७) में विजयदेव रूपसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, जिसके उदार प्रकृति का होने के कारण राज्य पर कर्ज़ा हो गया, तो बम्बई के गवर्नर ने मध्यस्थ होकर उसके गांवों आदि की आय में से कर्ज़ का अधिकांश बेबाक करा दिया। वि० सं० १८७७ (ई० स० १८२०) में बम्बई के गवर्नर माउन्ट एल्फ़िन्स्टन ने उसको ख़िलअत आदि देकर सम्मानित किया। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में विजयदेव का देहान्त होने पर उसका पुत्र रामदेव (तीसरा) राज्य का स्वामी हुआ, परन्तु तीन वर्ष बाद उसका भी देहान्त हो गया, जिससे उसका पुत्र नारायणदेव (दूसरा) ता० २६ जनवरी १८६० में धरमपुर का राज्याधिकारी हुआ। उसने अपनी योग्यता से राज्य को उन्नत बनाया और पहले का कर्ज़ चुकाया। विद्यानुरागी होने से वह विद्वानों का भी सम्मान करता था। उसके ज्येष्ठ पुत्र धर्मदेव का देहान्त उसकी जीवित दशा में ही हो गया, जिससे उसका दूसरा पुत्र मोहनदेव राज्य का स्वामी हुआ। उसके पुत्र विजयदेवजी इस समय धरमपुर के वर्तमान महाराणा हैं।

इस राज्य का क्षेत्रफल ७०४ वर्गमील, जनसंख्या ६५१७१ (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और १२४८००० रु० सालाना आय है। यहां के राजाओं को ९ तोपों की सलामी है और महाराणा उनका ख़िताब है। वर्तमान महाराणा की ज़ाती सलामी ११ तोपों की है।

मध्यभारत में गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

बड़वानी

बड़वानी के राजाओं का प्राचीन इतिहास अंधकार में है। राणा भीमजी से उनका इतिहास शृंखलाबद्ध मिलता है। धनुक (धुंधुक) का २६ वां वंशधर मालसिंह हुआ। उसके तीन पुत्र वीरमसिंह, भीमसिंह और अर्जुन हुए। वीरमसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उसके पुत्र कनकसिंह ने अलीराजपुर राज्य और रतनमाल की बहुतसी भूमि दबाकर अपना राज्य बढ़ाया। उसने आवासगढ़ का राज्य अपने चाचा भीमसिंह को दे दिया और वह रतनमाल में रहने लगा, जो अबतक उसके वंशधरों के अधिकार में है।

भीमसिंह के पीछे अर्जुनसिंह, बाघसिंह और प्रसन्नसिंह क्रमशः उसके राज्य के स्वामी हुए। प्रसन्नसिंह ने अपनी जीवित अवस्था में ही अपना राज्य अपने पुत्र भीमसिंह (दूसरे) को सौंप दिया। भीमसिंह के पीछे बछराजसिंह, प्रसन्नसिंह (दूसरा) और लीमजी क्रमशः राज्याधिकारी हुए। राणा लीमजी बड़ा विद्यानुरागी था। उसके समय में गोविन्द पंडित ने आवासगढ़ के राजाओं का इतिहास 'कल्पग्रन्थ' नाम से लिखा। लीमजी के पांच पुत्र—चन्द्रसिंह, लक्ष्मणसिंह, हम्मीरसिंह, भावसिंह और मदनसिंह-हुए। उसका देहान्त वि० सं० १६८७ (ई० स० १६३०) में हुआ, जिससे चन्द्रसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। चन्द्रसिंह के पीछे उसके पुत्र सूरसिंह ने राज्य पाया। उसका क्रमानुयायी उसका भाई जोधसिंह हुआ और उसके पीछे उस(जोधसिंह)का पुत्र परवतसिंह राज्य का स्वामी हुआ। वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में उसके चाचा मोहनसिंह ने उससे राज्य छीन लिया। मोहनसिंह के समय होल्कर ने उसके कई परगने दबा लिये।

मोहनसिंह के तीन पुत्र-माधवसिंह, अनूपसिंह और पहाड़सिंह-हुए। उस(मोहनसिंह)ने अपने दूसरे पुत्र अनूपसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया और अपने जीतेजी ही उसको राज्य सौंप दिया। माधवसिंह ने, जो वास्तविक हक़दार था, अपने पिता को ज़हर दिलाने का उद्योग किया और

अपने भाई अनूपसिंह को क़ैद किया, लेकिन उसके भाई पहाड़सिंह ने उसको क़ैद से छुड़ाकर उसको पीछा राजा बना दिया। अनूपसिंह के मरने पर गद्दी के लिये फिर झगड़ा खड़ा हुआ, जो पेशवा ने बीच में पड़कर निपटा दिया और अनूपसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह राज्य का स्वामी रहा। उम्मेदसिंह के मरने पर फिर राज्य की गद्दी के लिये झगड़ा हुआ तो प्रसिद्ध अहल्याबाई होल्कर ने वहां के प्रबन्ध के लिये अपनी तरफ़ से अधिकारी भेजे। अन्त में उस (उम्मेदसिंह) का पुत्र मोहनसिंह (दूसरा) वहां का स्वामी हुआ। वि० सं० १८९६ (ई० स० १८३९) में उसका देहान्त होने पर उसका पुत्र जसवन्तसिंह और उसके पीछे उसका भाई इन्द्रजीतसिंह बड़वानी का स्वामी हुआ।

वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में इन्द्रजीतसिंह का देहान्त होने पर उसका बालक पुत्र रणजीतसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने डेली कॉलेज (इन्दोर) और मेयो कॉलेज (अजमेर) में शिक्षा प्राप्त की। उसको के० सी० आई० ई० का ख़िताब मिला और सेना में कप्तान का पद था। उसका देहान्त ता० ३ मई ई० स० १९३० को होने पर उसका बालक पुत्र देवीसिंह राज्य का स्वामी हुआ।

इस राज्य का क्षेत्रफल ११७८ वर्गमील भूमि, १२०१५० मनुष्यों की आबादी (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और १०८९००० रु० की वार्षिक आय है। यहां के राजाओं को ११ तोपों की सलामी है और राणा उनका ख़िताब है।

रामपुरा के चन्द्रावत

सीसोदे के राणा वंश में भीमसिंह हुआ, जिसके एक पुत्र चन्द्रसिंह (चन्द्रा) के वंशज चन्द्रावत कहलाये। चन्द्रा को आंतरी परगने में जागीर मिली थी। उसके पीछे सज्जनसिंह, झांझणसिंह और भाखरसिंह हुए। भाखरसिंह की उसके काका छाजूसिंह से तकरार हुई, जिससे वह (छाजूसिंह) आंतरी छोड़कर मिलसिया खेड़ी के पास जा रहा। उसका बेटा शिवसिंह बड़ा वीर और हट्टाकट्टा जवान था। मांडू के सुलतान हुशंग गोरी ने दिल्ली की एक शाहज़ादी के साथ विवाह किया था। हुशंग के आदमी उस बेगम को लेकर मांडू जा रहे थे ऐसे में आन्तरी के पास नदी पार करते हुए बेगम की नाव

टूट गई उस समय शिवा ने, जो वहां शिकार खेल रहा था, अपनी जान झोंक-कर उसका प्राण बचाया। इसके उपलक्ष्य में बेगम ने हांशंग से शिवा को 'राव' का खिताब और १४०० गांव सहित आमद का परगना जागीर में दिलाया। उसके पीछे रायमल वहां का स्वामी हुआ। चित्तोड़ के महाराणा कुंभा ने उसको अपने अधीन किया।

उसका पुत्र अचलदास हुआ और उसका उत्तराधिकारी उसका पौत्र (प्रतापसिंह का पुत्र) दुर्गभाण हुआ। उसने रामपुरा शहर बसाया और उसको सम्पन्न बनाया। बादशाह अकबर ने चित्तोड़ को घेरा उस समय बादशाह की यह इच्छा रही कि राणा का बल तोड़ने के लिये उसके अधीन के बड़े बड़े सरदारों को अपने अधिकार में कर लेना चाहिये। इसी उद्देश्य से उसने आसफ़खां को फ़ौज देकर रामपुरे पर भेजा। उसने उस शहर को बरबाद किया, जिसपर दुर्गभाण को मेवाड़ की सेवा छोड़कर बादशाही सेवा स्वीकार करनी पड़ी। बादशाह ने उसे ख़ास अमीरों में रखा। वि० सं० १६३८ (ई० स० १५८१) में मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम पर चढ़ाई हुई उस समय वह शाहज़ादे मुराद के साथ भेजा गया। दो वर्ष बाद मिर्ज़ाखान के साथ गुजरात के बागियों को दबाने के लिये वह गुजरात गया और दक्षिण की लड़ाइयों में भी शामिल रहा।

वि० सं० १६४८ (ई० स० १५९१) में जब मालवे का सूबा शाहज़ादे मुराद के सुपुर्द हुआ उस समय वह उसके साथ रहा। वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में शेख़ अबुल्फ़ज़ल के साथ वह नासिक में नियत हुआ, जहां से छुट्टी लेकर वह रामपुरे गया। दूसरे वर्ष वह अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ और फिर दक्षिण में भेजा गया। ४० से अधिक वर्ष तक बादशाही सेवा कर ८२ वर्ष की आयु में बादशाह जहांगीर के समय वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में उसका देहान्त हुआ। उसकी वीरता के कारण उसका मन्सब चार हज़ारी तक पहुंच गया था।

राव दुर्गभाण (दुर्गा) का बेटा चांदा (चन्द्रसिंह दूसरा) उसका उत्त-राधिकारी हुआ। उसको प्रारम्भ में ७०० का मन्सब मिला, जो बाद में बढ़ता गया एवं उसे 'राव' का खिताब भी दिया गया। बादशाह जहांगीर की उसने बहुत कुछ सेवा की। उसके तीन पुत्र—दूदा, हरिसिंह और रणछोड़दास (रूप-

मुकुन्द)-हुए। उसका ज्येष्ठ पुत्र दूदा उसका क्रमानुयायी हुआ। वह शाहजहां बादशाह के समय आज़मखां के साथ खानेजहां लोदी पर भेजा गया और उसका मन्सब बढ़कर २००० ज़ात और १५०० सवार का हुआ। उसके बाद वह यमीनुद्दौला आसिफ़ख़ां के साथ आदिलख़ां पर भेजा गया। वि० सं० १६६० (ई० स० १६३३) में दौलताबाद के क़िले पर लड़ाई हुई उस समय दूदा ने जिसके कई कुटुम्बी उस लड़ाई में मारे गये थे उनकी लाशों को उठाने की इजाज़त सेनापति से मांगी। उसकी आज्ञा न होने पर भी वह (दूदा) उनकी लाशें उठाने लगा, इतने में शत्रुओं ने उसको घेर लिया तो उसी वक्त वह अपने साथियों सहित घोड़े से उतर गया और तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ा तथा वीरता से लड़ता हुआ मारा गया। उसकी इस वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहां ने उसके बेटे हठीसिंह को खिलअत, १५०० ज़ात और १००० सवार का मन्सब एवं 'राव' का ख़िताब प्रदान किया। फिर वह खानेजहां के साथ दक्षिण की चढ़ाई में शरीक हुआ, पर कुछ दिनों बाद मर गया।

हठीसिंह के निस्सन्तान होने के कारण राव चन्द्रभाण (चांदा) के पुत्र रूपमुकुन्द (रणछोड़दास) का बेटा रूपसिंह उसका क्रमानुयायी हुआ। ज्येष्ठ वदि १ वि० सं० १७०१ (ई० स० १६४४ ता० १९ मई) को वह बादशाही सेवा में उपस्थित हुआ तब बादशाह ने उसको 'राव' का ख़िताब और ६०० ज़ात तथा ६०० सवार का मन्सब दिया। तत्पश्चात् वह शाहज़ादे मुराद के साथ बलख की चढ़ाई में शामिल होकर फ़ौज की हरावल में रहा, जिससे उसका मन्सब १५०० ज़ात और १००० सवार का हो गया। उसने औरंगज़ेब के साथ रहकर उज़बकों की लड़ाई में बड़ी वीरता बतलाई। वह औरंगज़ेब के साथ कंदहार भी भेजा गया, जहां क़ज़लबाशों के साथ की लड़ाई में वह हरावल में रहा और उसने बड़ी वीरता बतलाई, जिससे उसका मन्सब २००० ज़ात और १२०० सवार का हो गया। वि० सं० १७०७ (ई० स० १६५०) में उसका देहान्त हुआ। उसके सन्तान न होने के कारण राव चांदा के बेटे हरिसिंह का पुत्र अमरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसको बादशाह शाहजहां ने १००० ज़ात और ६०० सवार का मन्सब, 'राव' का ख़िताब तथा चांदी के सामान समेत एक घोड़ा दिया। वह पहले शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ और

बाद में दाराशिकोह के साथ कंदहार की चढ़ाई में रहा, जहां वीरता बतलाने के कारण उसका मन्सब बढ़कर १५०० ज़ात और १००० सवार का हो गया। वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) में वह महाराजा जसवन्तसिंह के साथ शाहज़ादे औरंगज़ेब और मुराद से लड़ने के लिये मालवे की तरफ़ भेजा गया और लड़ाई के समय वह महाराजा की सेना की हरावल में रहा, परन्तु महाराजा के हारने पर वह रामपुरे चला गया। जब औरंगज़ेब बादशाह हुआ तब वह उसके पास हाज़िर हो गया। फिर वह मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत हुआ, जहां वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) में सालहेर के क़िले के नीचे लड़ता हुआ मारा गया और उसका बेटा मोहकमसिंह, जो उसके साथ था, उसी लड़ाई में क़ैद हुआ। कुछ दिनों बाद क़ैद से छूटकर वह बहादुरखां कोका (नाज़िम दक्षिण) के पास पहुंचा और बादशाह से मन्सब व 'राव' का ख़िताब पाया तथा उम्र भर बादशाही सेवा में बना रहा। वह राजपूताने में बड़ा प्रसिद्ध और उदार राजा गिना गया।

उसके पीछे उसका पुत्र गोपालसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। वि० सं० १७४६ (ई० स० १६८९) में वह बादशाह औरंगज़ेब की सेवा में उपस्थित हुआ। उसका बेटा रत्नसिंह, जो रामपुरे में था, अपने बाप से विरुद्ध होकर रामपुरे का स्वामी बन बैठा और वहां की आमदनी को अपने बाप के पास भेजना बन्द कर दिया। इसपर राव गोपालसिंह ने बादशाह से उसकी शिकायत की तो बादशाह की नाराज़गी से बचने के लिये उस (रत्नसिंह) ने वि० सं० १७५५ (ई० स० १६९८) में मालवा के सूबेदार मुख्तारखां के द्वारा मुसलमान होकर अपना नाम इस्लामखां और रामपुरे का नाम इस्लामपुर रखा। इसपर बादशाह उसका तरफ़दार हो गया और उसने उसको रामपुरे का स्वामी स्वीकार कर लिया। उसके मुसलमान होने पर उसके दो बेटे बदनसिंह और संग्रामसिंह गोपालसिंह के पास चले गये। जब गोपालसिंह को अपना राज्य पीछा पाने की उम्मेद न रही तब वह शाहज़ादा बेदारबख़्त के पास से भागकर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) की शरण में जा रहा और शाही इलाक़ों में लूटमार करने लगा। महाराणा के इशारे से मलका बाजणा के जागीरदार उदयभान शक्तावत ने उसको सहायता दी।

रत्नसिंह केवल रामपुरे से ही सन्तुष्ट न हुआ, किन्तु उसने उधर के दूसरे शाही इलाक़ों और उज्जैन पर भी अधिकार कर लिया। जब अमानतख़ां ने उससे उज्जैन आदि छुड़ाना चाहा तब वह लड़ने को तैयार हो गया और ३०-४० हज़ार सेना लेकर सारंगपुर के पास उससे लड़ा और मारा गया। यह अवसर पाकर गोपालसिंह ने रामपुरे पर पीछा अपना अधिकार कर लिया, परन्तु वृद्धावस्था के कारण उससे वहां का प्रबन्ध ठीक होता न देखकर महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने अपने प्रधान कायस्थ बिहारीदास को बादशाह फ़र्रुख़सियर के पास भेजकर रामपुरा अपने नाम लिखा लिया और उदयपुर से सेना भेजकर उसे अपने अधिकार में कर लिया तथा राव गोपालसिंह को एक परगना देकर अपना सरदार बनाया।

गोपालसिंह के पीछे उसका बड़ा पोता बदनसिंह उसकी जागीर का स्वामी हुआ और महाराणा की सेवा में रहा। उसके पुत्र न होने के कारण, उसके भाई संग्रामसिंह को वह जागीर मिली। फिर महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने यह परगना अपने भानजे माधवसिंह को अन्य सरदारों के समान सेवा करने की शर्त पर दे दिया।

महाराजा जयसिंह की मृत्यु के पीछे जयपुर की गद्दी के लिये ईश्वरीसिंह और माधवसिंह के बीच झगड़ा हुआ। ईश्वरीसिंह ने उसके मंत्री केशवदास को उसके शत्रुओं की बहकावट में आकर विष-प्रयोग द्वारा मरवा डाला। यह समाचार पाकर होल्कर, जो केशवदास का सहायक था, सेना लेकर जयपुर पर चढ़ आया। ईश्वरीसिंह ने उसे रोकना चाहा, किन्तु उसके मंत्री हरगोविन्द नाटाणी ने, जो अपनी पुत्री के साथ के महाराजा के अनुचित सम्बन्ध के कारण नाराज़ था, जयपुर की सेना को तैयार न किया, जिससे होल्कर से लड़ने में अपने को असमर्थ देखकर ईश्वरीसिंह ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। होल्कर ने जयपुर पर अपना अधिकार कर लिया और माधवसिंह वहां का राजा हुआ। रामपुरे का परगना, जो महाराणा ने माधवसिंह को सेवा की शर्त पर दिया था उसने फ़ौजख़र्च में होल्कर को दे दिया। तब से रामपुरे के चन्द्रावत होल्कर के अधीन हुए।

संग्रामसिंह के बाद लछमनसिंह, भवानीसिंह, मोहकमसिंह (दूसरा),

माहरसिंह, तेजसिंह, किशोरसिंह और खुमाणसिंह क्रमशः वहां के स्वामी हुए। जब से यह परगना होल्कर के हस्तगत हुआ तब से चन्द्रावत अपनी भूमि (रामपुरा) प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे। अन्त में तुकोजीराव होल्कर ने रामपुरा १०००० रु० वार्षिक आय के गांवों सहित उन्हें दे दिया, जो अब तक उनके अधीन है।

महाराष्ट्र में गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

मुधोल

चित्तोड़ के रावल रणसिंह (कर्णसिंह) के तीन पुत्र-क्षेमसिंह, माहप और राहप-हुए। क्षेमसिंह अपने पिता रणसिंह का उत्तराधिकारी हुआ और माहप को सीसोदे की जागीर मिली, जिसका विस्तार केलवाड़े तक था। मेवाड़ के स्वामी 'रावल' और सीसोदे के सरदार 'राणा' कहलाते रहे। माहप के पीछे सीसोदे की जागीर का स्वामी उसका छोटा भाई राहप हुआ और रावल क्षेमसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह मेवाड़ के राज्य का स्वामी हुआ। रावल सामंतसिंह के पीछे आठवां राजा रावल रत्नसिंह चित्तोड़ का स्वामी हुआ और राहप का दसवां वंशधर राणा लक्ष्मसिंह (लक्ष्मणसिंह) सीसोदे की जागीर का मालिक हुआ।

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने रत्नसिंह पर चढ़ाई की और क़रीब छः महीने तक चित्तोड़ के क़िले पर घेरा रहने के पश्चात् रावल रत्नसिंह मारा गया और सुलतान का उस क़िले पर वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदि १४ (ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को अधिकार हो गया। सीसोदे का राणा लक्ष्मणसिंह अपने ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह आदि आठ पुत्रों सहित अलाउद्दीन से लड़ने को गया था। इस लड़ाई में वह अपने सात पुत्रों सहित मारा गया और केवल अजयसिंह नाम का उसका एक पुत्र घायल होकर बचा, जो अपने पिता की सीसोदे की जागीर का स्वामी हुआ।

राणा लक्ष्मणसिंह के ज्येष्ठ कुंवर अरिसिंह ने अपने पिता की आज्ञा के विना ऊनवा गांव के एक चंदाणा राजपूत की बलवती पुत्री से विवाह किया,

विजयनगर के साथ की प्रसिद्ध तालीकोट की लड़ाई में बड़ी वीरता और साहस के काम किये। इस लड़ाई में कर्णसिंह (दूसरा) ने अपने प्राण अपने स्वामी के लिये अर्पण कर दिये। इस उत्तम सेवा से प्रसन्न होकर सुलतान ने उसके पुत्र चोलराज को उसकी पुरानी जागीर के अतिरिक्त तोरगल का परगना तथा सात हज़ारी मन्सब दिया[1]।

चोलराज के तीन पुत्र पीलाजी, कानोजी और वल्लभसिंह हुए। उसकी मृत्यु के बाद पीलाजी भी सुलतान इब्राहीम की ओर से लड़ता हुआ मारा गया। इस सेवा से प्रसन्न होकर सुलतान ने अपने फ़रमान में उसका उल्लेख करते हुए उसके पुत्र प्रतापसिंह (प्रतापराव) के नाम ७००० सेना के मन्सब के साथ मुधोल आदि की जागीर बहाल की[2]।

इन दिनों मुग़लों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और उनके आक्रमण दक्षिण के उक्त राज्यों पर भी होने लगे थे। शाहजी (प्रसिद्ध शिवाजी के पिता) ने निज़ाम (अहमदनगर) की सेवा छोड़ने के बाद बीजापुर की सेवा स्वीकार कर ली और उसका प्रभाव भी उस राज्य में दिन दिन बढ़ता जा रहा था। फिर उसने सुलतान मुहम्मद आदिलशाह के समय मुधोल राज्य में से अपने पूर्वजों का हिस्सा लेने की कोशिश की, जिसके विषय में सुलतान ने चोलराज के पौत्र प्रतापराव के नाम के अपने फ़रमान में लिखा है "वह ८४ गांवों सहित मुधोल का परगना, तोरगल का परगना, कर्नाटक की आधी जागीर और सात हज़ारी मन्सब पर सन्तुष्ट रहे। बेन का आधा परगना तथा कराड़ के २६ गांव, एवं कर्नाटक की आधी जागीर और पांच हज़ारी मन्सब शाहजी के रहे तथा वल्लभसिंह के पोते भैरवसिंह के बेटे मालोजी को विजयनगर के निकट के ३० गांव और दो हज़ारी मन्सब रहे। इनकी सनदें अलग अलग दी जायंगी[3]"। इस प्रकार भोंसला वंश की पुरानी जागीर का बँटवारा हुआ।

---

(१) अली आदिलशाह (प्रथम) का चोलराज के नाम का हि० स० ९७२ (वि० सं० १६२१=ई० स० १५६४) का फ़रमान।

(२) इब्राहीम (द्वितीय) का प्रतापराव के नाम ता० ११ रबि-उल-अव्वल हि० स० १००७ (आश्विन सु० १३ वि० सं० १६५५=ता० २ अक्टूबर ई० स० १५९८) का फ़रमान।

(३) मुहम्मद आदिलशाह का प्रतापराव (प्रतापसिंह) के नाम का ता० १८ रजब

प्रतापसिंह ... के षड्यन्त्र से मारा गया और उसका पुत्र बाजी-राव (बाजीराजे) उसका ... धिकारी हुआ। सुल्तान ने उसके पूर्वजों की बहमनी राज्य से लगा कर उस समय तक की उत्तम सेवा, वीरता आदि की प्रशंसा कर उसको अपना ... बनाया और उसकी जागीर व मन्सब बहाल रखा[१]।

इन दिनों दिल्ली के बादशाह शाहजहां की दक्षिण के राज्यों पर क्रूर दृष्टि पड़ी। उसने निज़ामशाही को तो नष्ट कर ही दिया था और आदिलशाही आदि राज्यों को भी वह मिटाना चाहता था। उस समय बीजापुर की सेना ने मुस्त-फ़ाख़ां की अध्यक्षता में कर्नाटक पर आक्रमण किया और लौटते वक्त उसने जिंजी के क़िले पर घेरा डाला, किन्तु वह क़िला सर न हुआ। इस चढ़ाई में बाजीराव घोरपड़े और शाहजी दोनों बीजापुर की सेना में थे। इन्हीं दिनों शाहजी के प्रसिद्ध पुत्र शिवाजी स्वतन्त्रता से अपना राज्य बढ़ा रहे थे और उन्होंने बीजापुर के कुछ क़िले भी अपने हस्तगत कर लिये थे। इसपर सुल्तान को यह संदेह हुआ कि शाहजी की प्रेरणा से ही शिवाजी ऐसा कर रहा है। इसलिये उसने कूटनीति से बाजीराव-द्वारा शाहजी को क़ैद करवाकर इस कलंक का टीका उस(बाजीराव)के सिर लगवा दिया। अन्त में शिवाजी ने बाजीराव को मारकर उसका बदला लिया।

बाजीराव के मालोजी और जयसिंह (शंकरा) दो पुत्र हुए। उस (बाजीराव) के बाद मालोजी (दूसरा) अपने पिता की जागीर का स्वामी हुआ। अपने पिता के मारे जाने पर उसको अपनी जागीर के सिवा धौलेश्वर आदि पांच और परगने इनाम में दिये गये[२]। मालोजी की और भी

हि० सं० १०४७ (पौष वदि ५ वि० सं० १६६४=ता० २६ नवम्बर ई० स० १६३७) का फ़रमान।

(१) मुहम्मद आदिलशाह का बाजीराजे (बाजीराव) के नाम का ता० १६ शाबान हि० स० १०५७ (आसोज वदि ५ वि० सं० १७०४=ता० ६ सितम्बर ई० स० १६४७) का फ़रमान।

(२) नज़फ़शाहअली (अली) का मालोजी (द्वितीय) के नाम ता० १२ जमादिउल-आख़िर हि० स० १०८१ (मार्गशीर्ष वदि २ वि० सं० १७२७=ता० २० अक्टूबर ई० स० १६७०) का फ़रमान।

उत्तम सेवाओं के उपलक्ष्य में सुलतान सिकन्दरशाह ने भी उसे कुलबाब गांव इनाम में दिया[1]।

इस समय बीजापुर राज्य का ह्रास हो रहा था। राज्य के पठान सरदार उच्छृङ्खल हो रहे थे और औरंगज़ेब भी उसे हड़प करना चाहता था। इस स्थिति में मालोजी अपने स्वामी के पक्ष में बना रहा। शिवाजी ने उसे एक पत्र लिखकर भोंसले और घोरपड़े एक ही वंश के होने से परस्पर मिल जाने की सलाह दी, किन्तु मालोजी ने उसे नहीं माना। औरंगज़ेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया और ई० स० १६८६ (वि० सं० १७४३) में उसे ले लिया। मालोजी औरंगज़ेब की सेना से खूब लड़ा, जिसपर बादशाही अफ़सर सय्यद-अली मुहम्मद उसके पास भेजा गया और उससे बादशाही सेवा स्वीकार करने का आग्रह किया गया, जिसको उसने स्वीकार कर लिया। इसपर बादशाह ने प्रसन्न होकर अपने फ़रमान में उसकी तथा उसके पूर्वजों की वंशपरंपरागत वीरता और स्वामिभक्ति की सराहना कर उसकी जागीर, प्रतिष्ठा और मन्सब आदि को पूर्ववत् बना रखा[2]। राव दलपत बुन्देला और राव गोपालसिंह चन्द्रावत के साथ मालोजी बादशाही सेना में रहकर दक्षिण की लड़ाइयों में लड़ा। ई० स० १७०० (वि० सं० १७५७) में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अर्थेजी (दूसरा) उसकी जागीर का स्वामी हुआ। वह बीजापुर का शासक भी नियुक्त हुआ था। उसके बाद उसके पुत्र पीराजी को वही स्थान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, किन्तु जब वह अपने भाई बाजी के हाथ से मारा गया तब उसका स्थान और पद उसके पुत्र मालोजी (तीसरा) को मिला। मालोजी के नाम के बादशाह मुहम्मदशाह के फ़रमान में उसके पूर्वजों की जागीर और अधिकार उसके नाम पर बहाल किये जाने का उल्लेख है[3]।

(१) सिकन्दर का मालोजी के नाम ता० २८ शाबान हि० स० १०८: (आश्विन वदि अमावस्या वि० सं० १७३५=ता० ५ अक्टूबर ई० स० १६७८) का फ़रमान।

(२) औरंगज़ेब का मालोजी के नाम का सन् जुलूस २९ (हि० स० १०९९= वि० सं० १७४३=ई० स० १६८६) का फ़रमान।

(३) अब्दुलफ़ते नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह का मालोजी के नाम ता० ८ शाबान सन् जलूस १६ (हि० स० ११४९=मार्गशीर्ष सुदि १० वि० सं० १७९३=ता० १ दिसंबर ई० स० १७३६) का फ़रमान।

इन दिनों दिल्ली की बादशाहत जर्जर हो रही थी। दक्षिण में निज़ाम ने प्रबल होकर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। मरहटे पेशवाओं के नेतृत्व में प्रबल हो रहे थे। घोरपड़ों की जागीर निज़ाम राज्य में भी थी, इसलिए मालोजी का पुत्र गोविन्दराव तो निज़ाम की सेवा में रहा और मालोजी पेशवा के पक्ष में रहा। जब पेशवा और निज़ाम के बीच लड़ाई हुई तब पिता-पुत्र प्रतिपक्षी हुए। वे आपस में वैर-भाव से नहीं किन्तु कुल-परंपरागत स्वामि-भक्ति के भाव से लड़े। इस लड़ाई में मालोजी के हाथ से गोविन्दराव घायल होकर मर गया तो निज़ाम ने उधर की जागीर उस(गोविन्दराव)के पुत्र नारायण-राव को दी[1]।

मालोजी जीवन पर्यन्त पेशवा की सेवा में रहा और अनेक लड़ाइयां लड़ा। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में पेशवा की ओर से उसे नई जागीर भी मिली, जो उसकी मृत्यु के बाद ज़ब्त हो गई। मालोजी के चार पुत्र-गोविन्दराव, महरराव, बाजीराव और राणोजी-हुए। गोविन्दराव ऊपर लिखे अनुसार मर चुका था और राणोजी अंग्रेज़ों और पेशवाओं के बीच की वड़गांव की ई० स० १७७६ (वि० सं० १८३६) की लड़ाई में मारा गया। मालोजी अपने पौत्र नारायणराव के साथ पूना में रहा करता था, इसलिए मुधोल की जागीर का प्रबन्ध अपने पुत्र महरराव को सौंप रखा था, किन्तु उसकी क्रूर प्रकृति के कारण उसकी प्रजा ने उसका विरोध कर उसके भतीजे नारायणराव को मुधोल पर नियत किया। महरराव ने कोल्हापुर से सहायता ली, किन्तु अन्त में हारकर वह ग्वालियर में जा रहा। मालोजी की सारी उम्र लड़ाइयों में गुज़री और ६५ वर्ष की अवस्था में ई० स० १८०५ (वि० सं० १८६२) में उसका देहान्त हुआ।

उसके पीछे नारायणराव, जो अपने दादा की जीवित दशा से ही मुधोल राज्य का प्रबन्ध करता था, वहां का स्वामी हुआ। उसके परमार और सोलंकी वंश की दो राणियों से तीन पुत्र-गोविन्दराव, वेंकटराव और लक्ष्मणराव-हुए।

(१) निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह का ता० ४ शव्वाल हि० स० ११८४ (माघ सुदि ५ वि० सं० १८२७=ता० २१ जनवरी सन् १७७१ ई०) का नारायणराव के नाम का फ़रमान।

नारायणराव के पीछे उनमें राज्य के लिए झगड़ा हुआ। गोविन्दराव ने पेशवा की मदद ली, परन्तु वह पेशवा के पक्ष में लड़ता हुआ अंग्रेज़ों के साथ की अष्टी की लड़ाई में ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में मारा गया, जिससे वेंकटराव (प्रथम) निष्कंटक मुधोल का राजा हुआ । उसने अंग्रेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली। उसका उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र बलवन्त-राव हुआ, किन्तु वह भी अठारह वर्ष की आयु में एक छोटे बच्चे को छोड़कर मर गया, जिसका नाम वेंकटराव (द्वितीय) था । उसे ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३८) में अधिकार प्राप्त हुआ। उसके उत्तराधिकारी उसके पुत्र सर मालोजी राव (चतुर्थ, नाना साहिब) मुधोल के वर्तमान स्वामी हैं । इनको के० सी० आई० ई० का ख़िताब और सेना में लेफ़्टिनेन्ट का पद है। इस राज्य को सरकार अंग्रेज़ी की ओर से ६ तोपों की सलामी है।

इस राज्य का क्षेत्रफल ३६८ वर्गमील, आबादी ६०१४० मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और ५११००० रु० की वार्षिक आय है।

कोल्हापुर

ऊपर मुधोल के इतिहास में राणा अजयसिंह के दक्षिण में गये हुए वंशजों का वृत्तान्त लिखते समय यह बतलाया गया है कि इन्द्रसेन (उग्रसेन) के दो पुत्र कर्ण (कर्णसिंह) और शुभकृष्ण (शुभकर्ण) हुए। कर्ण के वंश में मुधोल के राजा और शुभकर्ण के वंश में प्रसिद्ध शिवाजी हुए। कर्ण के पुत्र भीमसिंह को मुहम्मदशाह बहमनी ने 'राजा घोरपड़े बहादुर' की उपाधि दी, जिससे उसके वंशज घोरपड़े कहलाये और शुभकर्ण (शुभकृष्ण) के वंशधर अपने पुराने खानदानी नाम के अनुसार भोंसले ही कहलाते रहे।

शुभकर्ण के पीछे क्रमशः रूपसिंह, भूमीन्द्र, रापा, बरहट (बरड़, बाबा) खेला, कर्णसिंह, संभा, बाबा और मालूजी हुए। मालूजी ने वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में अहमदनगर के सुलतान की सेवा स्वीकार की। उसके शाहजी नामक पुत्र हुआ, जिसका विवाह उसने मरहटे जादू (जादव) सरदार की पुत्री के साथ किया। उसकी जागीर का उत्तराधिकारी उसका पुत्र शाहजी हुआ।

जब शाहजी ने बीजापुर की सेवा स्वीकार की और वहां उसका प्रभाव बढ़ा तब उसने अपने पूर्वजों की जागीर का बँटवारा कराने के लिए सुलतान मुहम्मद आदिलशाह के समय कोशिश की, जिसपर सुलतान ने जागीर का बँटवारा कर दिया, जिसका ब्यौरा उसने अपने ता० १८ रजब हि० स० १०४७ (पौष वदि ४ वि० सं० १६९४=नवम्बर ता० २६ ई० स० १६३७) के मुधोल-वालों के पूर्वज प्रतापराव के नाम के फ़रमान में दिया है।

शाहजी के पुत्र प्रसिद्ध शिवाजी हुए, जिनका वृत्तान्त पहले 'मरहटों का सम्बन्ध' के प्रसंग में संक्षेप से लिखा जा चुका है। शिवाजी के दो पुत्र-बड़ा संभाजी और छोटा राजाराम-थे। संभाजी के दुश्चरित्र होने के कारण शिवाजी ने उसको क़ैद कर लिया। उन(शिवाजी)के देहान्त होने पर सरदारों ने राजाराम को गद्दी पर बिठाया, किन्तु उन(शिवाजी)की मृत्यु के समाचार पाते ही संभाजी रायगढ़ जाकर अपने पिता की गद्दी पर बैठ गया और राजाराम को क़ैद कर लिया। औरंगज़ेब के हाथ से संभाजी के मारे जाने पर बादशाही सेनापति एतक़ादखां ने रायगढ़ फ़तह कर लिया और संभाजी की राणी अपने बालक पुत्र शाहू सहित क़ैद हुई। उस समय शिवाजी का दूसरा पुत्र राजाराम किसी तरह भाग निकला और गद्दी पर बैठकर उसने बादशाही सेना से लड़ाइयां कीं, परन्तु जुल्फ़िक़ारखां से हारकर वह वि० सं० १७५४ (ई० स० १६९७) में सतारे चला गया।

राजाराम के मरने पर उसका बालक पुत्र शिवाजी (दूसरा) गद्दी पर बैठा और राज्य का काम उसकी माता ताराबाई चलाने लगी। वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) में जब बादशाह औरंगज़ेब अहमदनगर में मर गया तब शाहज़ादे आज़म ने संभाजी के पुत्र शाहू को क़ैद से छोड़ दिया। उसने आते ही ताराबाई से सतारे का राज्य छीन लिया, जिससे वह अपने पुत्रों-शिवा और संभा-को लेकर कोल्हापुर चली गई। कई वरसों तक कोल्हापुर और सतारा के बीच झगड़ा चलता रहा। अन्त में ई० स० १७३० (वि० सं० १७८७) में सुलह हुई और सतारावालों ने कोल्हापुर राज्य की स्वतन्त्रता स्वीकार की।

राजाराम के बाद शिवाजी ने १२ वर्ष तक राज्य किया। वि० सं० १७६९ (ई० स० १७१२) में उसकी मृत्यु होने पर उसका भाई संभाजी कोल्हापुर का

स्वामी हुआ। वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) में संभाजी भी मर गया। उसके मरने से शिवाजी की मूल शाखा नष्ट हो गई। इससे उसकी बड़ी राणी जीजाबाई ने अपने पति की इच्छा के अनुसार शिवाजी के वंश के दूर के भोंसला खानदान में से एक लड़के को गोद लेना चाहा। इस विषय में पेशवा ने पहले तो रुकावट की, परन्तु बाद में उसे स्वीकार कर लिया। उस लड़के का नाम शिवाजी रखा गया और जीजाबाई राज्य का काम चलाने लगी। जीजाबाई के राज्य करते समय कोल्हापुर राज्य पर बहुत कुछ आपत्ति आई। उस (जीजाबाई) के देहान्त होने पर एवं शिवाजी (दूसरे) के बालक होने के कारण दीवान यशवन्तराव शिन्दे राज्य का काम चलाता था। यशवन्तराव की मृत्यु के पीछे रत्नाकरपन्त आप्पा दीवान हुआ। उसके समय राज्य में शान्ति रही।

उस (शिवाजी) की मृत्यु ई० स० १८१२ (वि० सं० १८६९) में हुई, जिससे उसका ज्येष्ठ पुत्र संभाजी (आबा साहब) उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह बहुत शान्त प्रकृति का राजा था। उसके समय पेशवा और अंग्रेज़ों के बीच लड़ाइयां हुईं, जिनमें उसने अंग्रेज़ों की सहायता की, जिसके बदले में चिकोड़ी और मनोली के दो परगने अंग्रेज़ों ने उसको दिये। ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) में आबा साहब निर्दयता के साथ मारा गया। उसके बाद उसका छोटा भाई शाहजी (बुवा साहिब) गद्दी पर बैठा। वह दुष्ट प्रकृति का एवं क्रूर था। उसके समय प्रजा पर बहुत जुल्म हुआ और वह अंग्रेज़ों के साथ भी छेड़छाड़ करने लगा, जिससे अंग्रेज़ों ने उसपर सेना भेजकर उसको दबाया। ई० स० १८३७ (वि० सं० १८९४) में उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका बालक पुत्र शिवाजी (तीसरे, बाबा साहब) ने राज्य पाया। उसकी बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट की निगरानी में रहा।

ई० स० १८६६ (वि० सं० १९२३) में बाबा साहब भी मर गया, जिससे उसका दत्तक पुत्र राजाराम उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसका देहान्त यूरोप के प्रवास के समय फ्लोरेन्स नगर में हुआ। उसके दत्तक पुत्र शिवाजी (चौथे) के विक्षिप्तसा होने के कारण राज्य का काम रीजेन्सी कौंसिल-द्वारा चलता रहा। ई० स० १८८५ (वि० सं० १९४२) में उसका देहान्त होने पर शाहूजी कागल

से गोद गया, जिसके बालक होने के कारण राज्य का काम रीजेन्सी कौंसिल करती रही। उसने राजकुमार कॉलेज (राजकोट) में शिक्षा पाई और ई० स० १८८४ (वि० सं० १९४१) में उसको राज्य का पूर्णाधिकार प्राप्त हुआ। उसने बड़ी योग्यता से राजकाज चलाया। उसकी निम्न वर्ण के लोगों के प्रति बड़ी सहानुभूति थी। वह अपने पूर्वज छत्रपति शिवाजी के समान कुलाभिमानी और क्षत्रिय वंश में होने का गौरव रखता था। जब ब्राह्मण पुरोहितों ने धार्मिक क्रियाएं वैदिक रीति से कराना स्वीकार न किया तब उसने उनकी जागीरें छीन लीं और अपने यहां की धार्मिक क्रियाएं वैदिक रीति से कराना आरम्भ कर दिया। उसने राज्य की बहुत कुछ सुव्यवस्था एवं उन्नति की। उसने शहर के बाहर दरबार के लिए एक विशाल भवन बनाया, जिसके ऊपर की तमाम खिड़कियों में छत्रपति शिवाजी के जीवन पर्यन्त की तमाम घटनाएं रंगीन कांचों में बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित की गई हैं। जब उक्त महाराजा ने ये सब घटनाएं मुझे बतलाई तो मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। विद्यानुरागी होने से उसने अपने राज्य में विद्या की बहुत कुछ उन्नति की। ई० स० १९२२ (वि० सं० १९७९) में उसका देहान्त हुआ। उसके पुत्र राजाराम (दूसरे) कोल्हापुर राज्य के वर्तमान स्वामी हैं। इनको जी० सी० आई० ई० का खिताब और सेना में लेफ्टिनेन्ट का पद है।

इस राज्य का क्षेत्रफल ३२१७ वर्गमील भूमि, आबादी ८३३७२६ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय १४०१२००० रु० हैं। इस राज्य को १९ तोपों की सलामी का सम्मान है।

सावन्तवाड़ी

सावंतवाड़ी का इलाक़ा पहले बीजापुर के सुलतानों के अधिकार में था। ई० स० १५५४ (वि० सं० १६११) में भोंसला वंश का मांग सावंत बीजापुर की सेवा छोड़कर वाड़ी नामक गांव में जा रहा, तो बीजापुरवालों ने उसपर सेना भेजी, जिसको उसने परास्त किया और अपनी मृत्यु तक वह स्वतन्त्र रहा।

उसके पीछे उसके वंशजों को फिर बीजापुर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, परन्तु फोंड सावंत के पुत्र भोंसला खेम सावंत ने फिर स्वतन्त्र होकर ई० स० १६२७ से १६४० (वि० सं० १६८४ से १६९७) तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सोम सावंत हुआ, परन्तु डेढ़ वर्ष के पीछे उसका देहान्त होने पर उसका भाई लखम सावंत वहां का राजा हुआ।

ई० स० १६५० (वि० सं० १७०७) में उसने छत्रपति शिवाजी की अधीनता स्वीकार की और वह सारे दक्षिणी कोंकण का सर-देसाई माना गया। लखम सावंत का उत्तराधिकारी उसका भाई फोंड सावंत (दूसरा) हुआ। उसके उत्तराधिकारी खेम सावंत (दूसरे) ने छत्रपति शिवाजी को कोंकण से निकालने के लिए मुग़लों का पक्ष लिया और कई बार गोआ की सीमा पर आक्रमण कर अपना राज्य बहुत बढ़ाया।

जब छत्रपति शिवाजी के पौत्र साहूजी का कोल्हापुर से झगड़ा हुआ उस वक्त उस (खेम सावंत) ने साहूजी का पक्ष लिया, जिससे उसकी सर-देशमुखी स्वीकार की गई और कुंडाल तथा पंच-महाल के परगने उसको दिये गये। उसके पीछे उसका भतीजा फोंड सावंत (तीसरा) राज्य का स्वामी हुआ, जिसने ई० स० १७३० (वि० सं० १७८७) में कोलाबा के कान्होजी आंगरिया को, जो सामुद्रिक लुटेरों का मुखिया था, दबाने के लिए अंग्रेज़ों के साथ सन्धि की।

ई० स० १७३७ (वि० सं० १७९४) में उसका देहान्त होने पर उसका पोता रामचन्द्र सावंत गद्दी पर बैठा। उसका क्रमानुयायी उसका पुत्र खेम सावंत (तीसरा) हुआ। उसने जयाजी सिंधिया की पुत्री से विवाह किया और दिल्ली के बादशाह से "राजा बहादुर" का खिताब पाया।

इस सम्मान की ईर्ष्या के कारण कोल्हापुर के राजा ने वाड़ी पर हमला किया और उसके कई गढ़ छीन लिए, जो सिंधिया ने पीछे उसको दिला दिये। उसने कोल्हापुर, पेशवा, पोर्चुगीज़ और अंग्रेज़ों से भी लड़ाइयां कीं।

ई० स० १८०३ (वि० सं० १८६०) में उसका देहान्त हुआ और उसके उत्तराधिकारी के लिए झगड़ा रहा। ई० स० १८०५ (वि० सं० १८६२) में उसकी विधवा राणी लक्ष्मीबाई ने रामचन्द्र सावंत (भाऊ साहिब) नामक

बालक को गोद लिया। यह बालक भी तीन वर्ष बाद मर गया और फोंड सावंत (चौथा) उसका क्रमानुयायी हुआ।

इन दिनों सामुद्रिक लुटेरों के कारण उधर अंग्रेज़ों के व्यापार को बड़ी हानि पहुंचने लगी, जिससे फोंड सावंत (चौथे) को ई० स० १८१२ (वि० सं० १८६६) में अंग्रेज़ों से सन्धि कर वेंगुरला का बंदरगाह उनको सौंपना पड़ा और सब लड़ाई के जहाज़ भी देने पड़े। उसके पीछे खेम सावंत (चौथे) ने बाल्यावस्था में राज्य पाया, परन्तु राज्य-प्रबन्ध में कुशल न होने के कारण राज्य में कई बखेड़े हुए, जिससे राज्य-प्रबन्ध अंग्रेज़ों के सुपुर्द करना पड़ा।

ई० स० १८६१ (वि० सं० १६१८) में राज्य का अधिकार पीछा उसको मिला और ई० स० १८६७ (वि० सं० १६२४) में उसका देहान्त हुआ। उसका पुत्र फोंड सावंत (पांचवां, आना साहिब) राज्य का स्वामी हुआ।

ई० स० १८६६ (वि० सं० १६२६) में उसके देहान्त होने पर उसके पुत्र रघुनाथ सावंत (बाबा साहिब) ने राज्य पाया।

ई० स० १८६६ (वि० सं० १६५६) में उसकी मृत्यु होने पर श्रीराम उसका उत्तराधिकारी हुआ। ई० स० १६१३ (वि० सं० १६७०) में उसका बालक पुत्र खेम सावंत (पांचवां, बापू साहिब भोंसले) राजा हुए।

इनका विद्याभ्यास एवं सैनिक शिक्षा इंगलैंड में हुई और गत यूरोपीय महासमर के समय इन्होंने मेसोपोटामिया में अच्छा काम किया, जिससे इनको हिज़ हाईनेस की उपाधि और सेना में कप्तान का पद मिला। ये सावंतवाड़ी के वर्तमान स्वामी हैं।

इस राज्य में ६२५ वर्गमील भूमि, २०६४४० मनुष्यों की आबादी (ई० स० १६२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और ६६३००० रु० की वार्षिक आय है। सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से ६ तोपों की सलामी है और यहां के राजा 'सर-देसाई' कहलाते हैं।

मध्यप्रदेश का गुहिल (सीसोदिया) वंशी राज्य

नागपुर

नागपुर के राजा छत्रपति शिवाजी के परदादा बाबाजी के छोटे भाई परसोजी के वंश में थे। परसोजी का पौत्र मुधोजी निज़ामशाही में नौकर था और उमरावती व भामगांव उसके जागीर में थे, फिर वह शंभाजी की सेवा में रहा। उसका दूसरा पुत्र परसोजी उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने बराड़ आदि ज़िलों पर अपना अधिकार जमा लिया, जिसपर राजाराम ने उसको ख़िलअत देकर उन प्रान्तों का स्वामी मान लिया। शंभाजी का पुत्र शाहूजी दिल्ली से लौटते समय नर्मदा पारकर खानदेश में पहुंचा उस समय परसोजी १५००० सवारों के साथ उससे जा मिला। जब वह (शाहूजी) गद्दी पर बैठा तब उसने उसको 'सेना-साहिब-सूबा' का ख़िताब और बराड़ आदि की बड़ी जागीर दी।

परसोजी का पुत्र कान्होजी और उस(परसोजी)के भाई बापूजी का पौत्र राघोजी भोंसला हुआ। उस समय छिंदवाड़ा ज़िले के देवगढ़ में गोंडों का राज्य था। वहां के राजा बख़्तबुलन्द ने नागपुर शहर बसाया। उसके पुत्र चांद सुलतान ने नागपुर में अपनी राजधानी स्थिर की। ई० स० १७३६ (वि० सं० १७६६) में चांद सुलतान के मरने पर उसकी गद्दी के लिये दो दावेदार खड़े हुए। इसपर उस(चांद सुलतान)की विधवा राणी ने राघोजी भोंसले को, जो पेशवा की तरफ़ से बरार का शासक था, बुलाया। वह चांद सुलतान के दोनों बेटों को राजा बनाकर पीछा बरार को चला गया। तदनन्तर उन दोनों भाइयों के बीच झगड़ा खड़ा हुआ तो राघोजी ई० स० १७४३ (वि० सं० १८००) में फिर बुलाया गया। उसने बड़े भाई बुरहानशाह का पक्ष लिया और उसे वहां का राजा बनाया, परन्तु उसको नाममात्र का ही राजा रखकर कुछ दिनों पीछे वह स्वयं वहां का मालिक बन बैठा। इस प्रकार नागपुर के गोंडों का राज्य भोंसलों के अधिकार में गया। वह वीर प्रकृति का पुरुष था। उसने दो बार बंगाल पर चढ़ाई की और कटक ज़िला प्राप्त किया। ई० स० १७४५ से ई० स० १७५५ (वि० सं० १८०२ से वि० सं० १८१२) तक उसने चांदा, छत्तीसगढ़

और संभलपुर ज़िले अपने राज्य में मिला लिए। ई० स० १७५५ (वि० सं० १८१२) में उसका देहान्त होने पर उसका उत्तराधिकारी जानोजी हुआ। वह पेशवा और निज़ाम के बीच की लड़ाइयों में लड़ा, परन्तु वे दोनों उससे अप्रसन्न हो गये और फिर उन दोनों ने मिलकर नागपुर पर चढ़ाई की तथा उसे ई० स० १७६५ (वि० सं० १८२२) में जला दिया।

जानोजी के मरने पर उसके दो भाइयों में गद्दी के लिए झगड़ा हुआ और नागपुर से ६ मील दक्षिण को पांचगांव की लड़ाई में वे एक दूसरे के हाथ से मारे गये तो जानोजी के भाई मुधोजी का बालक पुत्र राघोजी (दूसरा) नागपुर के राज्य का स्वामी हुआ। उसके समय में हुशंगाबाद और नर्मदा के दक्षिण का प्रदेश उसके राज्य में मिलाया गया। वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध सिंधिया से मिल गया, परन्तु असई और आरगांव की लड़ाइयों में उन दोनों के हार जाने पर राघोजी को कटक, दक्षिणी बरार और संभलपुर अंग्रेज़ों को देना पड़ा। इस प्रकार राघोजी के राज्य का एक तिहाई हिस्सा उसके हाथ से निकल गया, जिससे उसको अपनी सेना क़ायम रखने के लिए प्रजा पर नये नये कर लगाने पड़े। ऐसे समय में पिंडारियों ने ई० स० १८११ (वि० सं० १८६८) में नागपुर पर आक्रमण कर उसका कुछ हिस्सा जला दिया।

ई० स० १८१६ में राघोजी (दूसरे) का देहान्त होने पर उसका पुत्र परसोजी (दूसरा) नागपुर का स्वामी हुआ, जो कमज़ोर था। उसको उसके चाचा व्यंकोजी के पुत्र आपा साहब (मुधोजी) ने मार डाला और वह नागपुर का स्वामी हो गया। उसने अंग्रेज़ों से सुलह की और ई० स० १७६६ (वि० सं० १८५६) से नागपुर में अंग्रेज़ी रेज़िडेन्ट रहने लगा। ई० स० १८१७ (वि० सं० १८७४) में अंग्रेज़ों और पेशवा के बीच लड़ाई छिड़ जाने पर उसने पेशवा का पक्ष लेकर अंग्रेज़ी सेना पर आक्रमण किया, परन्तु सीताबल्दी और नागपुर की लड़ाइयों में उसकी हार हुई, जिससे बरार का बाक़ी का हिस्सा और नर्मदा के दक्षिण का प्रदेश अंग्रेज़ों को सौंपना पड़ा। फिर वह नागपुर की गद्दी पर बिठलाया गया, परन्तु अंग्रेज़ों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के अपराध में गद्दी से ख़ारिज किया जाकर इलाहाबाद भेजा जाने वाला था, किन्तु मार्ग में से ही

वह भागकर महादेव की पहाड़ियों में होता हुआ पंजाब की ओर चला गया। वहां से वह जोधपुर जा रहा, जहां ई० स० १८४० (वि० सं० १८६७) में उसका देहान्त हुआ।

आपा साहब के भाग जाने पर नागपुर का रहा-सहा राज्य भी रेज़िडेन्ट के अधिकार में हो गया। तत्पश्चात् राघोजी (दूसरे) का दौहित्र बाजीराव (राघोजी तीसरा) ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में गोद लिया गया, परन्तु उसके नाबालिग होने के कारण राज्य का काम रेज़िडेन्ट के निरीक्षण में होने लगा। ई० स० १८२६ (वि० सं० १८८३) में एक नया अहदनामा होकर उसको अधिकार दिया गया, जिसके अनुसार उसको ८ लाख रुपये अंग्रेज़ी फ़ौज ख़र्च का सालाना देना पड़ा। ई० स० १८५३ (वि० सं० १९१०) में उसका देहान्त हो गया। उसके कोई पुत्र न होने से नागपुर का राज्य लॉर्ड डलहौज़ी ने अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया।

बाजीराव की मृत्यु होने पर राघोजी की विधवा स्त्री ने जानोजी (दूसरा) को ई० स० १८५५ में गोद लिया। ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) के सिपाही-विद्रोह में इस वंश ने सरकार अंग्रेज़ी की ख़ैरख़्वाही की। इसलिये इस वंशवालों को सतारा के ज़िले में देवर का इलाक़ा और 'राजा बहादुर' का ख़िताब वंशपरंपरा के लिये मिला तथा २३३००० रुपये की वार्षिक पेन्शन मुक़र्रर कर दी गई। जानोजी के दो पुत्र राघोजीराव और लक्ष्मणराव हुए, जो विद्यमान हैं। राघोजीराव के दो पुत्र फतहसिंहराव और जयसिंहराव हैं।

मद्रास इहाते के गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

तंजावर (तंजोर)

तंजोर के राजा भी उसी भोंसला वंश के हैं जिसमें प्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी हुए। वहां पर पहले नायक वंश के राजा राज्य करते थे। उन्होंने बहुत से किले और विष्णुमंदिर बनाये। उस वंश के अन्तिम राजा पर मदुरा के नायक चौक्कनाथ ने ई० स० १६६२ (वि० सं० १७१६) में आक्रमण किया। बचाव की सूरत न देखकर वह अपने रणवास और राजमहल को नष्ट करने के बाद लड़ता हुआ मारा गया। उसका एक बालक पुत्र बचने पाया, जो बीजापुर के सुलतान के पास पहुंचा। सुलतान ने अपने सेनापति वेंकाजी को, जो छत्रपति शिवाजी का भाई था, उस बालक को उसका राज्य पीछा दिलाने के लिए तंजोर पर भेजा। उसने चौक्कनाथ से उसका राज्य छुड़ाकर उस बालक नायक को गद्दी पर बिठा दिया, परन्तु ई० स० १६७४ (वि० सं० १७३१) के आसपास वह स्वयं वहां का स्वामी बन बैठा।

उसके मरने पर उसका पुत्र शाहजी ई० स० १६८२ (वि० सं० १७३९) में वहां का राजा हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण उसका भाई शरफोजी उसका उत्तराधिकारी हुआ। ई० स० १७२८ (वि० सं० १७८५) में शरफोजी का देहान्त हो गया तो उसका भाई तुकोजी उसका क्रमानुयायी हुआ। वह राजकार्य में अधिक निपुण और विद्यानुरागी था। उसके पीछे येकोजी (बाबा साहिब) राज्य का स्वामी हुआ। उसके निस्सन्तान होने से उसकी राणी सुजानबाई, जो बड़ी चतुर और धर्मनिष्ठ थी, राजकार्य चलाने लगी। उसने तीन वर्ष तक राज्य का प्रबन्ध किया। उस समय राज्य के लिए अनेक हकदार खड़े हुए। अन्त में ई० स० १७३९ (वि० सं० १७९६) में काटराजा तंजोर का राजा बन बैठा, परन्तु दूसरे ही वर्ष तुकोजी का दूसरा पुत्र सयाजी गद्दी पर बिठलाया गया, किन्तु वह नाममात्र का ही राजा रहा। तुकोजी के दासी-पुत्र प्रतापसिंह ने उससे राज्य छीन लिया। उसके समय में कर्नाटक के नवाब अन्वरुद्दीन ने उसपर चढ़ाई की तो सरकार अंग्रेज़ी ने बीच में

पड़कर राजा से नवाब को ४००००० रु० सालाना ख़िराज दिलाये जाने की शर्त पर आइन्दा के लिए सुलह करा दी। प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र तुलजा ने राज्य पाया। उसने वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१) में रामनाड़ पर चढ़ाई की, जो कर्नाटक के अधीन था। इसपर कर्नाटक के नवाब ने राजा पर फ़ौज भेजी, किन्तु बाद में सुलह होने पर राजा ने वेल्लम का क़िला और कुछ परगने नवाब को दे दिये। इसके बाद हैदरअली से सम्बन्ध होना पाया जाने पर तंजोर का राज्य सरकार अंग्रेज़ी ने छीन लिया, किन्तु वि० सं० १८३३ (ई० स० १७७६) में वापस दे दिया।

वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में तुलजा का देहान्त हो जाने पर उसका भाई अमरसिंह गद्दी पर बैठा। तुलजा ने शरफ़ू को गोद लिया था, परन्तु अमरसिंह ही राज्य का स्वामी बन बैठा। अन्त में अमरसिंह अलग कर दिया गया और शरफ़ू ही वास्तविक हक़दार माना गया, एवं अमरसिंह की पेंशन कर दी गई। शरफ़ू केवल नाममात्र का ही राजा रहा। उसका देहान्त वि० सं० १८८६ (ई० स० १८३२) में हुआ। इससे उसका पुत्र शिवाजी उसका उत्तराधिकारी हुआ जो लाऔलाद मरा, जिससे तंजोर का राज्य लॉर्ड डलहौज़ी ने अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया।

शिवाजी ने कई विवाह किये थे, किन्तु उसके कोई पुत्र न हुआ। उसकी विधवा राणी कामाक्षाबाई ने राज्य पाने का बड़ा प्रयत्न किया, जो असफल हुआ। उसकी एक दूसरी राणी से दो कन्याएं हुईं, जिनमें से एक तो मर गई और दूसरी विजयमोहना मुक्तांबा को सरकार अंग्रेज़ी ने 'तंजोर की कन्या' का ख़िताब, ७२००० रु० वार्षिक पेन्शन एवं १३ तोपों की सलामी का सम्मान दिया। उसकी कन्या लक्ष्मीबाई विद्यमान महाराजा सियाजी राव गायकवाड़ को ब्याही गई।

विज़ियानगरम्

विज़ियानगरम् मद्रास इहाते के उत्तरी हिस्से के विज़गपट्टम् ज़िले में एक बड़ी ज़मीदारी है। वहां के स्वामी भी गुहिलवंशी (सीसोदिया) हैं। ई० स० १८८३ (वि० सं० १९४०) में उक्त राज्य का एक छोटासा इतिहास विज़ियानगरम्

से प्रकाशित हुआ, जिससे पाया जाता है कि वहां के राजा गुहिलवंशी हैं। जब महाराजकुमारी विज़ियानगरम् का विवाह रींवा होना निश्चय हुआ उस समय तहक़ीक़ात होकर यह निश्चय हुआ कि उदयपुर और विज़ियानगरम् के राजा एक ही वंश के हैं। तत्सम्बन्धी कागज़ों पर उदयपुर के महाराणा शंभुसिंह और जयपुर के महाराजा रामसिंह की मोहर और दस्तख़त हैं।

वहां का प्राचीन इतिहास अंधकार में है। वहां के राजाओं का मूल-पुरुष माधववर्मा हुआ, उसके वंश में ई० स० १६५२ (वि० सं० १७०६) में पशुपति माधववर्मा नाम के एक पुरुष ने विज़गपट्टम् में प्रवेश कर अपना राज्य स्थापित किया एवं उसने तथा उसके वंशजों ने उसे बढ़ाया। उसके कई वर्ष बाद विजयरामराज हुआ, जो बहुत ही पराक्रमी एवं प्रसिद्ध था। वह फ्रेंच सेनापति जनरल बूसी का मित्र और सहायक था। ई० स० १७१० (वि० सं० १७६७) में उसका उत्तराधिकारी पेद्दविजयरामराज हुआ। उसने पोतनूर के बदले विज़ियानगरम् को अपनी राजधानी बनाया तथा राज्य का विस्तार बढ़ाया। उसने भी बूसी के साथ मित्रता की और ई० स० १७५७ (वि० सं० १८१४) में बोबिली के ज़मींदारों को परास्त कर उनकी राजधानी पर अपना अधिकार जमा लिया, किन्तु तीन ही दिन के बाद वह वहीं अपने डेरे में शत्रुओं के हाथ से मारा गया।

उसके बाद उसका पुत्र आनन्दराज उसका क्रमानुयायी हुआ। उसने फ्रेंच लोगों से सम्बन्ध विच्छेद कर विज़गपट्टम् लेकर अंग्रेज़ों को सौंप दिया। कर्नेल फ़ोर्ड के साथ वह दक्षिण की लड़ाइयों में शामिल रहा, किन्तु लौटते समय मार्ग में उसका देहान्त हो गया, जिससे उसके दत्तक पुत्र विजयरामराज ने राज्य पाया। वह नाममात्र का राजा रहा। उसके सौतेले भाई सीताराम ने, जो बड़ा पराक्रमी था, आसपास के जागीरदारों को अधीन कर लिया। उसने कम्पनी की बड़ी सहायता की, किन्तु वह मद्रास बुला लिया गया, जहां से वह वापस कभी नहीं लौटा। उसका भाई (विजयरामराज) राज्य का काम योग्यता से नहीं कर सकता था, इसलिये सरकार ने उसे मसलीपट्टम् भेज दिया, जिसपर उसने सिर उठाया। अन्त में वह पद्मनाभम् की लड़ाई में मारा गया। उसका पुत्र नारायण बाबू ज़मींदारों की शरण में चला गया, किन्तु बाद में

कार्रवाई होने पर सरकार अंग्रेज़ी ने राज्य का अधिकांश ज़ब्त कर ११५७ गांव-वाले २४ परगने उसे दिये।

उसकी मृत्यु ई० स० १८४५ (वि० सं० १९०२) में काशी में हुई। उसका उत्तराधिकारी विजयराम गजपतिराज हुआ। उसने राज्यप्रबन्ध बड़ी कुशलता से किया, जिसके उपलक्ष्य में सरकार अंग्रेज़ी ने उसे महाराजा एवं के० सी० एस० आई० का ख़िताब प्रदान किया। उसका क्रमानुयायी उसका पुत्र आनंद-राज (दूसरा) हुआ। उसको भी सरकार ने महाराजा एवं जी० सी० आई० ई० के ख़िताब से सम्मानित किया। उसकी मृत्यु ई० स० १८९७ (वि० सं० १९५४) में हुई। उसके बाद उसके पुत्र राजा पशुपतिविजयराम गजपतिराज ने राज्य पाया, किन्तु उसके नाबालिग़ होने के कारण राज्य का प्रबन्ध सरकार अंग्रेज़ी द्वारा होता रहा। ई० स० १९०४ (वि० सं० १९६१) में उसे पूर्णाधि-कार प्राप्त हुए।

नेपाल का राज्य

नेपाल के महाराजाओं का मूलपुरुष चित्तोड़ के रावल समरसिंह के ज्येष्ठ कुंवर रत्नसिंह का छोटा भाई कुंभकरण माना जाता है। रावल रत्नसिंह के समय दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तोड़ पर आक्रमण कर वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में उसे ले लिया और अपने बड़े शाहज़ादे खिजरखां को वहां का शासक नियत किया। चित्तोड़ का राज्य छूट जाने से रत्नसिंह के भाई-बेटे इधर उधर चले गये। उसके भाई कुंभकर्ण के वंशज समय पाकर कमाऊं के पहाड़ी प्रदेश में होते हुए पहले पाल्पा में जा बसे, फिर क्रमशः वे अपना राज्य बढ़ाने लगे और पृथ्वीनारायणशाह ने नेपाल को अपने हस्तगत कर लिया[1]। कुंभकर्ण से लगाकर नरभूपालशाह तक का इतिहास बहुधा अंधकार में ही है। पृथ्वीनारायणशाह के वंशज महाराजाधिराज राजेन्द्रविक्रमशाह ने 'राजकल्पद्रुम' नाम का तंत्र ग्रन्थ लिखा, जिसमें विक्रम (जिल्लराज का पिता) से लगाकर अपने समय तक की वंशावली दी है[2], जो वीरविनोद में दी हुई वंशावली से बहुत कुछ मिलती हुई है। उक्त पुस्तक में उसने अपने पूर्वज विक्रम का चित्रकूट (चित्तोड़) से आना बतलाया है।

---

(१) कुंभकर्ण से लगाकर पृथ्वीनारायणशाह तक की नामावली वीरविनोद में इस तरह लिखी मिलती है—

(१) कुंभकर्ण। (२) अयुत। (३) परावर्म। (४) कविवर्म। (५) यशवर्म। (६) उदुम्बरराय। (७) भट्टराय। (८) जिल्लराय। (९) अजलराय। (१०) अटलराय। (११) तुथाराय। (१२) आमसीराय। (१३) हरिराय। (१४) ब्रह्मानिकराय। (१५) मनमन्थराय। (१६) भूपालखान। (१७) मीचाखान। (१८) जयन्तखान। (१९) सूर्यखान। (२०) मियाखान। (२१) विचित्रखान। (२२) जगदेवखान। (२३) कुलमण्डनशाह। (२४) आसोवनशाह। (२५) द्रव्यशाह। (२६) पुरन्दरशाह। (२७) पूर्णशाह। (२८) रामशाह। (२९) डंबरशाह। (३०) श्रीकृष्णशाह। (३१) पृथ्वीपतिशाह। (३२) वीरभद्रशाह। (३३) नरभूपालशाह और (३४) पृथ्वीनारायणशाह।

(२) राजकल्पद्रुम के अनुसार वंशावली इस प्रकार है—

(१) विक्रम। (२) जिल्लराज। (३) अजित। (४) अटलराज। (५) तुथाराज। (६) विमिकिराज। (७) हरिराज। (८) श्रीब्रह्मराज। (९) मन्मथ। (१०) जैनखान। (११) सूर्यखान। (१२) मीचाखान। (१३) विचित्र। (१४) महाशाही। (१५) द्रव्यशाही। (१६)

पृथ्वीनारायणशाह ने अपना इलाक़ा बढ़ाना शुरू किया और वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६८) में उसने नेपाल पर चढ़ाई की। कुछ समय तक लड़ाई होने के बाद उसने काठमांडू को लेकर उसे अपनी राजधानी बनाया। वह नेपाल का गुहिलवंशी पहला महाराजाधिराज हुआ। फिर उसने पाटन और भक्तपुर (भाटगांव) आदि के राज्य छीनकर अपने राज्य को बहुत बढ़ाया। इस कार्य में उसके मुख्य सेनापति राणा रामकृष्ण ने, जो उसी (गुहिल) वंश का था, बड़ी वीरता एवं स्वामिभक्ति बतलाई, जिससे प्रसन्न होकर उस (पृथ्वीनारायणशाह) ने उसके पीछे उसके पुत्र राणा रणजीतकुमार को अपने मन्त्रियों में से एक नियत किया। वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१) में वह वीर राजा नवाकोट के जंगल में शिकार खेलते समय एक शेर से मारा गया। उसके दो पुत्र सिंहप्रतापशाह और बहादुरशाह थे।

सिंहप्रतापशाह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। वह भी अपने पिता के समान वीर था। उसने गद्दी पर बैठने के बाद अपने छोटे भाई को देश से निकाल दिया। उसके समय राणा रणजीतकुमार ने सोमेश्वर और उपद्रंग के प्रांतों को जीतकर नेपाल राज्य में मिलाया। उस(सिंहप्रतापशाह) के दो पुत्र रणबहादुरशाह और शेरबहादुरशाह हुए। वि० सं० १८३२ (ई० स० १७७५) में उसका ज्येष्ठ पुत्र रणबहादुरशाह, जो बालक था, नेपाल का स्वामी हुआ। उसके बालक होने के कारण बहादुरशाह, जो नेपाल से निकाला हुआ बेतिया में रहता था, सिंहप्रतापशाह की मृत्यु के समाचार पाते ही काठमांडू में आकर मन्त्री के तौर पर राज्य का काम करने लगा, परन्तु रणबहादुरशाह की माता राजेन्द्रलक्ष्मी से सदा अनबन रहने के कारण वह फिर राज्य से निकाल दिया गया और राज्य का काम राजमाता चलाने लगी। वह बड़ी वीर प्रकृति की और नीति-कुशल थी। उसके समय राणा रणजीतकुमार ने गोरखा राज्य से पश्चिम के पाल्पा, तन्हू, लमजंग और

पूर्णशाही। (१७) रामशाही। (१८) डंबर। (१९) कृष्णशाही। (२०) रुद्रशाह। (२१) पृथ्वीपतिशाही। (२२) वीरभद्र। (२३) नरभूपालशाह और (२४) पृथ्वीनारायणशाह।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री; केटलॉग ऑफ़ पाम लीफ़ एण्ड सिलेक्टेड पेपर मैनुस्क्रिप्ट्स; दरबार लाइब्रेरी नेपाल; पृ० २४२-४३।

काश्की आदि के कई छोटे छोटे राज्य जीतकर नेपाल में मिला लिये। वि० सं० १८४३ (ई० स० १७८६) में उस(राजमाता)के देहान्त होने के कारण बहादुरशाह फिर नेपाल में आया और रणबहादुरशाह के अतालीक के तौर पर राज्य का प्रबन्ध करने लगा। उसने अपने नज़दीक के पहाड़ी जाति के क्षत्रियों की रियासतों को नेपाल में मिला लिया। उसके समय बेतिया की तराई का प्रदेश, जिसको वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में कप्तान किन्लॉक ने नेपाल के पहले के राजाओं से जीतकर अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया था, पीछा नेपाल राज्य में मिल गया। इसके बाद वि० सं० १८४६ (ई० स० १७९२) में नेपाल राज्य की सरकार अंग्रेज़ों से व्यापारिक संधि हुई, परन्तु उसका पालन न हुआ। रणबहादुरशाह के समय चीन साम्राज्य के अधीनस्थ तिब्बत देश पर चढ़ाई हुई और वहां का एक नगर लूट लिया गया, जिसपर चीन की तरफ़ से तुंग्थांग की मातहती में ७०००० के लगभग सेना नेपाल को रवाना हुई। इस सेना के साथ की लड़ाइयों में नेपालवालों की बड़ी हार हुई। उस समय राणा रणजीतकुमार ने बड़ी वीरता बतलाई। अन्त में प्रति पांचवें वर्ष ख़िराज के तौर पर चीन के बादशाह के पास भेट भेजने की शर्त पर चीनवालों से सुलह हो गई। फिर कमाऊं के राजा से लड़ाई हुई, जिसमें राणा रणजीतसिंह वीरता से लड़ता हुआ मारा गया।

रणबहादुरशाह ने अन्त मे बहादुरशाह को क़ैद कर चितवन की झाड़ी में भेज दिया, जहां एकाएक ज्वर होने से वह मर गया। उस(रणबहादुरशाह) को अपनी एक महाराणी पर अधिक प्रेम था, जिससे उसकी मृत्यु होने पर उसका चित्त बहुत ही खिन्न रहने लगा तो उसने काशीवास करना निश्चय कर वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में अपने ज्येष्ठ पुत्र गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह को राज्य का स्वामी बनाकर काशी को प्रस्थान कर दिया। कुछ समय तक काशी में रहने के बाद उसने फिर नेपाल को प्रस्थान किया और किसी तरह वहां पहुंचकर उसने राजा तो अपने पुत्र को ही रखा, किन्तु राज्य का कार्य फिर अपने हाथ में ले लिया। उसने देवालयों पर हस्तक्षेप किया और ब्राह्मणों को दी हुई भूमि को खालसा कर लिया। उसकी सख़्ती से तंग आकर कुछ रियासती लोगों ने उस महाराजा को मरवाने का प्रपञ्च रचा। उन्होंने शेरबहादुर को

उसमें अग्रणी किया। इसकी ख़बर पाते ही उसने उस (शेरबहादुर) को उस सेना में जाने की आज्ञा दी जो पश्चिमी इलाक़े में भेजी गई थी। उसने उस आज्ञा का पालन न कर सख़्ती के साथ उत्तर दिया, जिसपर महाराजा ने उसको मार डालने की आज्ञा दी तो क्रुद्ध होकर उसने महाराजा की छाती में कटार घुसेड़ दिया, जिससे उसका तो देहान्त हो गया, किन्तु राणा रणजीतकुमार के ज्येष्ठ पुत्र बालनरसिंह ने तत्क्षण उसको भी वहीं मार डाला।

गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह के, जो अपने पिता की जीवित अवस्था से ही राज्य करता आ रहा था, समय प्रधान मंत्री भीमसिंह थापा के भाई नैनसिंह की अध्यक्षता में कोटकांगड़े पर सेना भेजी गई। वहां के राजा संसारचन्द्र ने अपना राज्य छीने जाने के भय से अपनी पुत्री का विवाह महाराजा के साथ करना चाहा और ख़िराज देना भी स्वीकार किया, किन्तु ये बातें नेपाल के अधिकारियों ने स्वीकार न कीं और युद्ध छिड़ गया, जिसमें संसारचन्द्र का सेनापति कीर्तिसिंह मारा गया और उसकी सेना भाग निकली। नैनसिंह थापा सालकांगड़े पर अधिकार करने के लिये शहर में घुसा, जहां वह कीर्तिसिंह की स्त्री के हाथ की गोली से मारा गया। उसके स्थान पर अमरसिंह थापा नियत हुआ। उसने कोटकांगड़ा को ले लिया और संसारचन्द्र को वहां से निकाल दिया। इसपर वह वहां से पंजाब के राजा रणजीतसिंह से सहायता ले आया और नेपालियों से फिर लड़ा, जिससे उनको पीछे हटना पड़ा और अन्त में सुलह होकर सालकांगड़े तक नेपाल की सीमा स्थिर हुई।

संसारचन्द्र से सुलह हो जाने के पश्चात् अमरसिंह ने दक्षिणी सीमा के पास अंग्रेज़ों से लड़ाई करना चाहा। इसपर अंग्रेज़ों ने अमरसिंह थापा के पास अपना एलची भेजा, परन्तु नेपालवालों ने सुलह करना स्वीकार न कर अंग्रेज़ी सेना से लड़ाई ठान ली। इसपर जनरल ऑक्टरलोनी ७०००० सेना सहित लड़ने को नियत किया गया। उसने जनरल गिलेस्पी (Gillespie) को पाल्पा की तरफ़ वज़ीरसिंह (नैनसिंह थापा का पुत्र) से मुक़ाबला करने को भेजा और आप अमरसिंह से लड़ने के लिये सालकांगड़ा की तरफ़ गया। वज़ीरसिंह के साथ की लड़ाई में अंग्रेज़ी सेना की हार हुई, जनरल गिलेस्पी मारा गया और रही सही सेना जनरल ऑक्टरलोनी के पास लौट गई। जनरल ऑक्टर-

लोनी को भी सालकांगड़ा की तरफ़ की लड़ाई में हार जाने के कारण अंग्रेज़ी सीमा में लौटना पड़ा। कुछ समय बाद उसी की मातहती में नेपाल पर दुबारा सेना भेजी गई। उस समय उसने अपनी सेना के अलग अलग टुकड़े कर अलग अलग स्थानों पर भेजे और स्वयं अमरसिंह की तरफ़ बढ़ा। अमरसिंह की हार हुई और नेपाली सेना को सालकांगड़ा छोड़कर काली नदी तक हट जाना पड़ा। जनरल ऑक्टरलोनी काठमांडू से १८ कोस इस तरफ़ चीरवा की घाटी तक चला गया। वहां सरदार रणवीरसिंह थापा से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें नेपाली सेना की हार हुई। अन्त में वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१६) में सुलह हुई, जिसमें काली नदी दोनों के बीच की सीमा स्थिर हुई और तराई का प्रदेश नेपालवालों को दे दिया गया। फिर भीमसेन थापा के भाई रणवीर-सिंह की मारफ़त जनरल ऑक्टरलोनी के उद्योग से १०० वर्ष तक के लिये परस्पर की मैत्री का अहदनामा हुआ और अंग्रेज़ी रेज़िडेन्ट नेपाल में एवं नेपाली वकील कलकत्ते में रहने लगा।

इसके थोड़े ही समय पीछे गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह का २१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। उक्त महाराजाधिराज का एक ही पुत्र राजेन्द्र-विक्रमशाह था, जिसकी अवस्था उस समय अनुमानतः दो वर्ष की थी। राजे-न्द्रविक्रमशाह की बाल्यावस्था के कारण राज्य का काम भीमसेन थापा बड़ी योग्यता से करता रहा। वह एक बड़ा योग्य पुरुष था और उसने राज्य की आमद और सेना की बहुत कुछ उन्नति की।

इस समय थापा लोगों का प्रभाव बहुत कुछ बढ़ा हुआ था और पांडे लोग उनके विरोधी थे। इन दोनों दलों के बीच संघर्ष चला और वि० सं० १८९४ (ई० स० १८३७) में भीमसिंह थापा पर मिथ्या दोष लगाया जाकर वह क़ैद किया गया, जिससे उसे आत्मघात करना पड़ा। इसपर उसका भतीजा मातबरसिंह थापा पंजाब को चला गया। वि० सं० १८९६ (ई० स० १८३९) में रणजंग पांडे वज़ीर नियत हुआ। उस समय उसने बड़ी महाराणी की सलाह के अनुसार रुपये एकत्र करने के लिये रियासती लोगों पर ज़ुल्म करना शुरू किया और सेना की तनख़्वाह घटाना चाहा। इसपर सेना बिगड़ उठी और उस(सेना)ने महाराजाधिराज से उसकी शिकायत की, परन्तु उस(महाराजा)ने टालमटूल का ही उत्तर दिया। रणजंग

पांडे पागलसा होगया, जिससे राज्य का काम रघुनाथ पंडित और फ़तेहजंग चौतरिया[1] के सुपुर्द हुआ। इन लोगों के कामों में महाराजाधिराज और महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रमशाह के, जिसकी उम्र १२ वर्ष की थी, हस्तक्षेप करने के कारण राज्य का प्रबन्ध शिथिल होता गया। महाराजकुमार पाण्डे लोगों की सलाह पर चलता था। बड़ी महाराणी की मृत्यु के पीछे छोटी महाराणी भी राज्य-कार्य में हस्तक्षेप करने लगी। रघुनाथ पण्डित महाराणी का सलाहकार रहा। कुछ समय पीछे महाराजाधिराज को पदच्युत करने का प्रपंच रचा गया। इस समय पालपा के सूबेदार गुरुप्रसादशाह ने, जो महाराजाधिराज का रिश्तेदार था, राज्य के कुल सरदारों को इकट्ठा कर एक बड़ी सभा की, जिसमें सब लोगों की तरफ़ से यह कहा गया कि महाराजकुमार की ओर से हम पर बड़ा ज़ुल्म होता है और महाराजाधिराज उसको नहीं रोकते, इसलिये उनसे प्रार्थना की जावे कि वे प्रजा की जान-माल की रक्षा और राज्य का उत्तम प्रबन्ध करें। महाराजाधिराज का विचार युवराज को अपनी विद्यमानता में ही महाराजा बनाने का था और महाराणी चाहती थी कि महाराजाधिराज के पीछे मेरे दो पुत्रों में से एक राजा बने। महाराजाधिराज में राज्यप्रबन्ध करने की कुशलता न थी और न वह एक बात पर दृढ़ रहता था, इसलिये राज्य की दशा शोचनीय हो गई। यह देखकर वि० सं० १८९९ (ई० स० १८४२) में महाराजाधिराज ने मातबरसिंह को नेपाल में वापस बुला लिया। उसने काठमांडू में जाकर अपने चाचा भीमसिंह पर मिथ्या दोषारोपण करानेवालों को सज़ा दिलाना चाहा। उस बात की तहक़ीक़ात होकर कई एक को सज़ा दी गई और थापा लोगों का ज़ब्त किया हुआ माल उन्हें लौटा दिया गया। फिर मातबरसिंह वज़ीर नियत हुआ। युवराज की यह इच्छा थी कि वह अपने पिता को पदच्युत कर राज्य का कुल काम अपने हाथ में ले, परन्तु उसकी यह इच्छा पूरी न होने के कारण वह काठमाण्डू छोड़कर तराई में जा रहा। महाराणी राज्य का कुल काम अपने हाथ में लेने का विचार कर रही थी। इस बात के ज्ञात होते ही मातबरसिंह ने चाहा कि महाराणी का दख़ल बिलकुल उठा देना चाहिये। इस विचार से वह युवराज को वापस ले आया, जिससे महाराणी उससे अप्रसन्न हो गई। उसने महाराजा-

(१) नेपाल में महाराजा के ख़ानदानी रिश्तेदार चौतरिया कहलाते हैं।

धिराज को बहकाकर उससे मातबरसिंह को मरवाना स्वीकार करा लिया। महाराणी ने सीढ़ी से गिरजाने के बहाने से मातबरसिंह को अपने पास बुलाया और जब उसने सलाम करने को सिर झुकाया उस वक़ पर्दे की ओट से बंदूकें चलीं और वह वहीं मारा गया। उपर्युक्त बालनरसिंह के बेटे जंगबहादुर ने उसी वक़ महल से बाहर आकर मातबरसिंह के बाल-बच्चों को उनके माल-असबाब सहित उनके घर से अपने पास बुला लिया और प्रातःकाल होते ही उनको वहां से अन्यत्र रवाना कर दिया।

मातबरसिंह के मारे जाने के बाद फ़तेहजंग मुख्य मंत्री बनाया गया और गगनसिंह खवास तथा जंगबहादुर उसके सलाहकार नियत हुए। महाराणी को गगनसिंह खवास पर स्नेह और बड़ा विश्वास था, जिससे वह उसी के कहने के अनुसार काम करती थी, इसलिये उसको मारने के लिये महाराजाधिराज ने एक आदमी नियत किया। उसने उसके मकान पर जाकर उसको गोली से मार डाला। यह खबर उसके पुत्र वज़ीरसिंह ने महाराणी के पास पहुंचाई तो उसने उसकी जांच कराने के लिये बिगुल बजवाया, जिसकी आवाज़ सुनते ही जंगबहादुर अपने भाइयों तथा तीन पल्टनों सहित वहां उपस्थित हुआ। महाराणी ने उसको तहक़ीक़ात करने की आज्ञा दी, तो उसने निवेदन किया कि अगर सब सरदार तहक़ीक़ात के समय शस्त्र छोड़कर आवें तो तहक़ीक़ात हो सकती है। महाराणी ने उसे स्वीकार किया, जिसपर जंग-बहादुर अपनी तीन पल्टनों का बाड़ा बांधकर आप तो महाराणी के पास बैठ गया और सेना के बीच अपने भाई बंबहादुर, बदरीनरसिंह, कृष्णबहादुर, रणो-द्दीपसिंह, जगत्शमशेर आदि को तहक़ीक़ात के लिये बिठा दिया। जब जांच शुरू हुई तब बंबहादुर और कृष्णबहादुर ने कहा कि गगनसिंह को चौतरिया लोगों ने मारा या मरवाया होगा। इसपर फ़तेहजंग के बेटे खड्गविक्रमशाह ने क्रोध कर कृष्णबहादुर और बंबहादुर पर अपने छुरे का प्रहार किया, इसपर कोलाहल मच गया और महाराणी ने कुल चौतरिया लोगों को क़त्ल करने की आज्ञा दी, जिससे २७ बड़े बड़े अफ़सर और बहुतसे आदमी मारे गये। इसके बाद महाराणी ने राज्य का काम जंगबहादुर को सौंप दिया। महाराणी ने युव-राज सुरेन्द्रविक्रमशाह और उसके भाई उपेन्द्रविक्रमशाह को क़ैद करा लिया,

परन्तु वज़ीर जंगबहादुर युवराज की जान बचाना चाहता था। इसपर महाराणी ने जंगबहादुर को अपने पास बुलाकर मरवा डालने और वीरध्वज को मंत्री बनाने का उद्योग किया, जो निष्फल हुआ।

महाराजाधिराज और युवराज ने उस (जंगबहादुर) पर राज्य की रक्षा करने और युवराज के शत्रुओं को नष्ट करने का भार छोड़ा और महाराणी से कहलाया कि वह अपने दोनों पुत्रों सहित नेपाल से बाहर चली जावे। महाराणी ने अन्य कोई उपाय न देखकर महाराजाधिराज को अपने साथ चलने को तैयार किया, जिससे महाराजाधिराज, महाराणी और उसके दोनों पुत्र काशी को चले गये।

युवराज सुरेन्द्रविक्रमशाह नेपाल का महाराजाधिराज हुआ और उसने जंगबहादुर को पूरे अधिकार के साथ वज़ीर नियत किया। कुछ दिनों पीछे महाराणी की सलाह के अनुसार महाराजाधिराज नेपाल में जाने की इच्छा कर वि० सं० १८६४ (ई० स० १८३७) में सिंगोली नामक स्थान पर पहुंचा और महाराणी समेत नेपाल में पहुंचने का उद्योग करने लगा। इसपर युवराज और जंगबहादुर ने उससे कहलाया कि आप नेपाल में आना चाहें तो अकेले आ सकते हैं, परन्तु महाराणी वगैरह को छोड़कर वहां जाना उसने स्वीकार न किया और वह जंगबहादुर को मरवाने का उद्योग करने लगा। उस विषय का एक पत्र नेपाली अफ़सरों और सैनिकों के पास एक पुरुष के साथ भेजा गया जो मार्ग में ही पकड़ा गया और जंगबहादुर ने उसे अफ़सरों और सैनिकों को सुनाकर कहा कि आप चाहें तो मुझे मार डालें मैं मरने को तैयार हूं। इसपर उन्होंने एकमत होकर कहा कि महाराजाधिराज की आज्ञा पालन के योग्य नहीं है। फिर उनके विचारानुसार महाराजाधिराज को पकड़ने के लिये कप्तान सनकसिंह सेना सहित भेजा गया। वह महाराजाधिराज को वि० सं० १८६४ (ई० स० १८३७) में अपने साथ राजधानी में ले आया। उसके साथी गुरुप्रसादशाह आदि मारे गये और बाकी के भाग गये। जब वह काठमाण्डू लाया गया तो उसकी प्रतिष्ठा में कोई कमी न की गई, किन्तु वह भाटगांव के महलों में रखा गया। बाद में वह उसकी इच्छानुसार काठमाण्डू में लाया गया, परन्तु राजकार्य में उसका कोई दखल न रहा।

उक्त महाराजाधिराज के समय जंगबहादुर का प्रभाव बहुत कुछ बढ़ा और राज्य का सारा काम उसी की इच्छा के अनुसार होता रहा। कुछ दिनों तक महाराजाधिराज का भाई उपेन्द्रविक्रमशाह भी राज्य का कुछ काम करता रहा। उसके समय पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह की राणी चन्द्रकुंवरी, जो चुनारगढ़ में नज़रबंद थी, भागकर काठमांडू चली गई तो महाराजाधिराज ने उसके खानपान आदि के खर्च के अतिरिक्त उसके लिये ८०० रु० माहवार हाथखर्च के कर दिये।

वि० सं० १९०६ (ई० स० १८५०) में महाराणी विक्टोरिया की साल-गिरह पर जंगबहादुर अपने भाई कर्नल जगत्शमशेरजंग, धीरशमशेरजंग तथा कप्तान रणमिहरसिंह आदि अधिकारियों सहित नेपाल राज्य की तरफ़ से इंगलैंड गया और अङ्गरेज़ों के साथ दोस्ती बढ़ाना शुरू किया। उसकी इस अनुपस्थिति में राज्य का काम उसका भाई बंबहादुर चलाता रहा।

वि० सं० १९०७ (ई० स० १८५१) में जंगबहादुर इंगलैंड से वापस आया और महाराणी विक्टोरिया की तरफ़ से एक सम्मानपत्र महाराजाधिराज के लिये लाया, जो दरबार में २१ तोपों की सलामी होकर पढ़ा गया। फिर कप्तान करवीर खत्री ने महाराजा के छोटे भाई उपेन्द्रविक्रमशाह, जंगबहादुर के भाई बद्रीनरसिंह आदि को कहा कि जंगबहादुर ने इंगलैंड में रहते समय खानपान में धर्म के विरुद्ध आचरण किया है, इसलिये उसको मरवा डालना चाहिये। यह बात बंबहादुर को मालूम होते ही उसने जंगबहादुर से कही तो उसने उन लोगों को अंग्रेज़ों के द्वारा पांच वर्ष तक के लिये प्रयाग के जेलखाने में भिजवा दिया।

वि० सं० १९११ (ई० स० १८५४) में नेपाल के किसी सौदागर की लासा में लेनदेन के बारे में व्यापारियों से तक़रार हुई, जिसमें नेपाली सौदागरों का बहुतसा माल लूट लिया गया और एक दो आदमी भी मारे गये। इसका वहां कोई इन्साफ़ न हुआ तब नेपाल की तरफ़ से उसकी हानि की पूर्ति करने को लिखा गया, परन्तु उसपर कुछ ध्यान न दिया गया तो तिब्बत की सीमा पर बंबहादुर, धीरशमशेरजंग और जगत्शमशेरजंग की अध्यक्षता में सेना भेजी गई, जो आगे बढ़ती गई। लड़ाई होने पर तिब्बतवालों की हार हुई और

उनकी बहुतसी भूमि पर नेपालवालों का अधिकार हो गया। चीनी अंबान (प्रतिनिधि) ने आपस में सुलह कराने का उद्योग किया, परन्तु नेपालवालों की मांग बहुत ज्यादा होने के कारण वह स्वीकार न हुआ तो उस (अंबान) ने कहा कि मैं चीन से बहुत बड़ी सेना मंगवाकर नेपाल को नष्ट करा दूंगा। इस धमकी का जंगबहादुर पर कुछ भी असर न हुआ और लड़ाई होती रही। अन्त में तिब्बतवालों ने १०००० रु० सालाना नेपाल के महाराजा को देना, नेपाली व्यापारियों के माल पर कुछ भी महसूल न लेना और नेपाली व्यापारियों के मुक़द्दमे फ़ैसल करने के लिये तिब्बत में नेपाली रेज़िडेन्ट रखने की शर्त पर सुलह कर ली।

वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५६) में जंगबहादुर ने वज़ीर का काम अपने छोटे भाई बंबहादुर को सौंप दिया, जिसपर महाराजाधिराज ने उस (जंगबहादुर) को 'महाराजा' का ख़िताब और १००००० रु० सालाना आमद के काशकी और लमजंग के दो सूबे प्रदान किये। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में बंबहादुर का देहान्त होनेपर जंगबहादुर को वज़ीर का काम फिर अपने हाथ में लेना पड़ा।

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) के सिपाही विद्रोह के समय जंग-बहादुर अपने भाई रणोद्दीपसिंह और धीरशमशेरजंग तथा १२००० नेपाली सेना के साथ सरकार अंग्रेज़ी की सहायता के लिए हिन्दुस्तान में आया। इस सेना की सहायता से अंग्रेज़ों ने गोरखपुर और लखनऊ पीछे ले लिये और उधर के विद्रोहियों को दबाया। इसके उपलक्ष्य में जंगबहादुर को सरकार अंग्रेज़ी से जी० सी० बी० की उपाधि मिली और वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में नेपाल को अवध की सीमा की तरफ़ का पर्वतीय प्रदेश वापस दे दिया गया। वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में सरकार अंग्रेज़ी की ओर से जंगबहादुर को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब और १९ तोपों की ज़ाती सलामी का सम्मान प्राप्त हुआ।

वि० सं० १९३३ (ई० सं० १८७७) के शीतकाल में जंगबहादुर अपने भाई जगत्शमशेरजंग के बेटे जनरल अमरजंग तथा ज़नाना सहित शिकार के लिए तराई में गया, जहां नेपाल से ४० कोस दूर बाघमती नदी के किनारे

पत्थरघटा नामक स्थान पर दस्त लगने से फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १८७७ ता० २५ फरवरी) को उसका देहान्त हुआ। जंगबहादुर बड़ा ही साहसी, वीर, युद्धकुशल, नीति-निपुण और राज्य का सच्चा हितचिन्तक था। उसके समय में नेपाल राज्य की बहुत कुछ उन्नति हुई। उसके अनेक शत्रु होते हुए भी उसने निर्भीक होकर काम किया और उनके एक भी षड्यन्त्र को चलने न दिया। उसने जीवनपर्यन्त निस्वार्थभाव से राजा, प्रजा और देश की सेवा की और अपने सद्‌गुणों के कारण वह राजा और प्रजा दोनों का प्रीतिपात्र बना रहा।

उसकी मृत्यु के बाद उसके भाइयों ने उसका बेटा जगत्‌जंग वज़ीर न बने यह सोचकर उसके भाई रणोद्दीपसिंह को महाराजाधिराज से कहकर वज़ीर बनवाया और राज्य का सब काम वह तथा उसके भाई जगत्‌शमशेरजंग और धीरशमशेरजंग करने लगे। महाराजकुमार त्रैलोक्यविक्रमशाह उन लोगों के काम में हस्तक्षेप करने लगा, जो उनको सहन न हुआ। इसपर उनको मरवाने का प्रपंच रचा गया, जो निष्फल हुआ। वि० सं० १९३४ चैत्र वदि १२ (ता० ३० मार्च ई० स० १८७८) को युवराज का अचानक देहान्त हो गया।

युवराज की मृत्यु के पीछे रणोद्दीपसिंह ने उसके सलाहकारों के पद में कमी करना और उनका अपमान करना शुरू किया, जिससे कई लोगों ने अप्रसन्न होकर छोटे कुंवर नगेन्द्रविक्रमशाह से सलाह कर रणोद्दीपसिंह को मारने तथा श्रीविक्रम थापा को वज़ीर बनाने का उद्योग किया। इन लोगों में जंगबहादुर का पुत्र पद्मजंग भी शामिल था। त्रैलोक्यविक्रमशाह की राणियों ने जगदीश, रामेश्वर और द्वारका की यात्रा के लिए प्रस्थान किया उस वक्त रणोद्दीपसिंह उनके साथ था। उनके जगदीश व रामेश्वर से दलबल सहित बंबई पहुंचने पर उनको महाराजाधिराज सुरेन्द्रविक्रमशाह की बीमारी के समाचार मिलते ही वे सब नेपाल चले गये। उनके वहां पहुंचने के बाद वि० सं० १९३८ ज्येष्ठ शु० १५ (ई० स० १८८१ ता० १२ जून) को सुरेन्द्रविक्रमशाह की मृत्यु हो गई और उसका ७ वर्ष का बालक पौत्र पृथ्वीवीरविक्रमशाह नेपाल का स्वामी हुआ। उसकी बाल्यावस्था के समय रणोद्दीपसिंह आदि राज्य का काम करने लगे, किन्तु नगेन्द्रविक्रमशाह आदि ने रणोद्दीपसिंह आदि को

मारने और दूसरा वज़ीर नियत करने का उद्योग किया। इस षड्यन्त्र में कर्नेल श्रीविक्रम थापा, कर्नेल अमरविक्रम थापा, कर्नेल इन्द्रसिंह आदि कई फ़ौजी अफ़सर शरीक थे। इसकी सूचना गगनसिंह खवास के पोते उत्तरध्वज ने रणोद्दीपसिंह को दी, जिसपर उन षड्यन्त्रकारियों में से २० से अधिक पुरुष क़त्ल किये गये और कई एक पाल्पा में क़ैद किये गये। कुंवर नगेन्द्र-विक्रमशाह, जनरल बंविक्रम और जनरल पद्मजंग भी क़ैद किये गये। जगत्जंग पर इस षड्यन्त्र में शरीक होने का सन्देह किया गया, परन्तु वह हिन्दुस्तान में होने से क़ैद नहीं किया जा सका। रणोद्दीपसिंह ने उसके पास तसल्ली का परवाना भेजकर उसे नेपाल में बुला लिया और उसके वहां पहुंचते ही वह क़ैद कर लिया गया, लेकिन कुछ दिनों बाद वह छूट गया। फिर कुछ समय तक रणोद्दीपसिंह ने निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार काम किया। इसके बाद वह जगत्जंग को राज्य का काम सौंपकर तीर्थयात्रा करने को तैयार हुआ। इस बात से अप्रसन्न होकर महाराजाधिराज की माता ने उसकी रवानगी से एक दिन पहले उसको, जगत्जंग को और उसके बेटे युद्धप्रतापजंग को वि० सं० १९४२ (ई० स० १८८५) में मरवा डाला। रणोद्दीपसिंह के मारे जाने के बाद वज़ीर का काम धीरशमशेरजंग के बड़े बेटे वीरशमशेरजंग के सुपुर्द हुआ।

उसके समय में शान्ति रही, जिससे राज्य में बहुत कुछ उन्नति हुई। उसने काठमांडू और भाटगांव में नल-द्वारा जल पहुंचाने का प्रबन्ध किया, प्रजा के लिए अस्तपाल और पाठशालाएं खोलीं और अच्छे अच्छे भवन बनवाये। उसने अंग्रेज़ों के साथ की मैत्री को अच्छी तरह निभाया और अंग्रेज़ी सेना में गोरखों को भरती कराया। उसका देहान्त वि० सं० १९५८ (ई० स० १९०१) में हुआ। उसके बाद उसका भाई देवशमशेरजंग वज़ीर बना, परन्तु तीन ही महीनों पीछे उसके भाई चन्द्रशमशेरजंग ने उसको पदच्युत कर दिया। वह (चन्द्रशमशेरजंग) अपने भाई व अन्य राज्यकर्मचारियों सहित ई० स० १९०३ के देहली दरबार में सरकार अंग्रेज़ी-द्वारा निमन्त्रित होकर उपस्थित हुआ। उसके समय में नेपाल राज्य और अंग्रेज़ों के बीच का घनिष्ठ संबन्ध पूर्ववत् बना रहा। महाराजा-धिराज पृथ्वीवीरविक्रमशाह का देहान्त ११ दिसम्बर ई० स० १९११ को हुआ।

उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र त्रिभुवनवीरविक्रमशाह हुआ। उसका भी प्रधान मन्त्री चन्द्रशमशेरजंग रहा।

उसने राज्य के प्रत्येक विभाग में बहुत कुछ सुधार किया। न्याय के लिए हाईकोर्ट एवं प्रिवी कौंसिल जैसी अदालत कायम की और उच्च शिक्षा के लिए त्रिभुवनचन्द्र कॉलेज स्थापित किया, जहां बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। इसके अतिरिक्त वैद्यक, क़ानून, व्यापार आदि की पढ़ाई की व्यवस्था भी उसने की। उसको सरकार अंग्रेज़ी से जी० सी० बी०, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० एम० जी०, जी० सी० वी० ओ०, डी० सी० एल० (ऑक्सफोर्ड) की पदवियां मिलीं और अंग्रेज़ी सेना में लेफ्टिनेन्ट जनरल (Honorary) का पद रहा तथा चीन राज्य की ओर से भी उसको एक लम्बी चौड़ी उपाधि[1] मिली। उसके पीछे राणा भीमशमशेरजंग जी० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ० नेपाल के प्रधान-मन्त्री और सेनापति हुए। इनको ता० १ जनवरी ई० स० १९३२ को भारत सम्राट् की तरफ़ से नाइट ग्रैन्ड क्रॉस (Honorary) की उपाधि मिली। नेपाल में राज्य का पूर्ण अधिकार प्रधानमन्त्री (वज़ीर) के ही हाथ में कई वर्षों से चला आ रहा है।

---

(1) Thong Lin Pimma Kokang Wang Syan. (Honorary)

ग्यारहवां अध्याय

मेवाड़ की संस्कृति

धर्म

वैदिक धर्म

प्राचीन काल से ही मेवाड़ में वैदिक (ब्राह्मण) धर्म का प्रचार रहा है। ईश्वरोपासना, यज्ञ करना, वर्ण-व्यवस्था वैदिक धर्म के मुख्य अंग हैं। यज्ञ में पशु-हिंसा भी होती थी। ज्योंही भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का डंका बजने लगा, त्योंही वैदिक धर्म का प्रचार घटने लगा, परन्तु उसकी जड़ जमी ही रही। मौर्य राजा अशोक ने अपने साम्राज्य में यज्ञों का होना बन्द कर दिया था, किन्तु मौर्य साम्राज्य का अन्त होते ही शुङ्ग वंश का सितारा चमकने पर बौद्ध धर्म की अवनति के साथ ही पुनः अश्वमेधादि यज्ञ होने लगे।

चित्तोड़ से करीब १० मील उत्तर घोसुंडी नामक ग्राम से मिले हुए वि० सं० के पूर्व की दूसरी शताब्दी के लेख से प्रकट है कि वर्तमान नगरी नामक स्थान के, जो प्राचीन काल में 'मध्यमिका' नाम से विख्यात था, राजा सर्वतात ने अश्वमेध यज्ञ किया था। सहाड़ां ज़िले के नांदसा ग्राम के तालाब के तटवर्ती विशाल यूप (यज्ञस्तम्भ) पर वि० सं० २८२ (ई० स० २२५) के दो लेख खुदे हैं, जिनमें से एक पर शक्ति-गुण-गुरु-द्वारा षष्टिरात्र यज्ञ करने का उल्लेख है। नगरी से वि० सं० की चौथी शताब्दी की लिपि का दोनों किनारों से टूटा हुआ एक शिलाखंड मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि वहां ········ ने वाजपेय यज्ञ किया था और उसके पुत्रों ने उसका यूप (यज्ञस्तम्भ) खड़ा करवाया था। लेख खंडित होने से यज्ञ करनेवाले का नाम जाता रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक धर्म पर बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा, पर उसका अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ। इस परिवर्त्तन के युग में

वैदिक-धर्म में कई नवीन बातों का समावेश होकर वह नये सांचे में ढाला गया। बौद्धों की देखादेखी मूर्तिपूजा की प्रथा चल पड़ी और विष्णु के चौबीस अवतारों में बुद्ध और ऋषभदेव की भी गणना की गई। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न आचार्यों ने क्रमशः अपने उपास्य देवताओं के नाम पर विभिन्न सम्प्रदायों की सृष्टि की। परिणाम यह हुआ कि वैदिक-धर्म अनेक शाखाओं में बँट गया और उसके स्थान में पौराणिक-धर्म प्रचलित हुआ।

भगवद्गीता में उल्लिखित विराट्स्वरूप को लक्ष्य में रखकर सात्वतों (यादवों) ने वासुदेव की भक्ति के प्रचारार्थ विष्णु की उपासना चलाई, जो सात्वत अर्थात् भागवत सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। वह वैष्णव सम्प्रदायों में सब से प्राचीन है। उपर्युक्त घोसुंडी ग्रामवाले शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा सर्वतात ने भगवान् संकर्षण और वासुदेव की पूजा के निमित्त शिलाप्राकार (मन्दिर) बनवाया था। इससे निश्चित है कि मेवाड़ में विक्रम संवत् पूर्व की दूसरी शताब्दी से भी पूर्व मूर्तिपूजा का प्रचार था और विष्णु की पूजा होती थी। भागवत सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ पंचरात्र संहिता है। इस सम्प्रदायवाले मन्दिरों में जाना, पूजा करना, मन्त्रों का पढ़ना और योग-द्वारा भगवान् का साक्षात् होना मानते थे। सृष्टि का पालनकर्त्ता विष्णु होने से वैष्णव-धर्म का प्रचार अधिकता से होने लगा, क्योंकि बौद्ध और जैनों की भांति इसमें दया का प्राधान्य था। पीछे से विष्णु की अनेक प्रकार की चतुर्भुज मूर्तियां बनने लगीं, फिर हाथों की संख्या यहां तक बढ़ती गई कि कहीं चौदह, कहीं सोलह, कहीं बीस और कहीं चौबीस हाथवाली मूर्तियां देखने में आती हैं।

वैष्णव धर्म

मेवाड़ के नागदा, आहाड़, चित्तोड़गढ़ और कुंभलगढ़ आदि स्थानों में विष्णु-मंदिर भिन्न भिन्न समय के बने हुए हैं, जहां से विष्णु के पृथक् पृथक् अवतारों की कई मूर्तियां मिली हैं। समय समय पर इस सम्प्रदाय की कई शाखाएं हुईं, जिनमें मेवाड़ में मुख्यतः वल्लभ, रामानुज और निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। विक्रम् संवत् की अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल से मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ और नाथद्वारा तथा कांकरोली में इस सम्प्रदाय के आचार्य लोग रहने लगे। मेवाड़ में विष्णु के प्राचीन मंदिर चित्तोड़गढ़,

बाडोली, नागदा, आहाड़ आदि अनेक स्थलों में विद्यमान हैं, जिनमें सबसे प्राचीन बाडोली का शेषशायी विष्णु का मंदिर है, जो विक्रम की दसवीं शताब्दी से भी पूर्व का बना हुआ है। नगरी से वि० सं० ४८१ (ई० स० ४२४) का एक शिलालेख मिला है, जिसमें एक विष्णुमन्दिर के बनने का उल्लेख है, परन्तु अब वह मंदिर नहीं रहा।

शैव सम्प्रदाय

शिव की पूजा मेवाड़ में दीर्घकाल से चली आती है। ऋषभदेव से कुछ मील दूर कल्याणपुर नामक प्राचीन नगर के खण्डहर से मिले हुए विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी की लिपि के एक लेख में कदर्थिदेव द्वारा शिव-मन्दिर बनाये जाने का उल्लेख है। शिव-मंदिर सम्बन्धी मेवाड़ से मिले हुए शिलालेखों में यह लेख सबसे प्राचीन है। मेवाड़ के स्वामी शिव को ही अपना उपास्यदेव मानते हैं। शिव के उपासक सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता और हर्ता शिव को ही मानते हैं। शैव सम्प्रदाय सामान्य रूप से पाशुपत सम्प्रदाय कहलाता है। विष्णु की भांति शिव की भी भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तियां मिलती हैं। शिव की मूर्तियां प्रायः लिङ्गाकार या ऊपर से गोल और नीचे चार मुखवाली होती हैं। इन चारों मुखों में से पूर्व का मुख सूर्य, उत्तर का ब्रह्मा, पश्चिम का विष्णु और दक्षिण का रुद्र का सूचक होता है। मध्य का गोल भाग ब्रह्माण्ड अर्थात् विश्व का बोधक है। इस कल्पना का तात्पर्य यह है कि ये चारों देवता ईश्वर के ही भिन्न भिन्न नामों के रूप हैं। शिव की विशालकाय त्रिमूर्तियां सुप्रसिद्ध चित्तोड़गढ़ के दो मंदिरों में हैं, जिनमें से परमार राजा भोज के बनवाए हुए त्रिभुवननारायण (समिद्धेश्वर) के मंदिर की मूर्ति सब से प्राचीन है। इस मंदिर का महाराणा मोकल ने जीर्णोद्धार कराया, जिससे यह मोकलजी का मंदिर कहलाता है।

इस सम्प्रदायवाले शिव के कई अवतार मानते हैं, जिनमें से लकुलीश अवतार का प्रभाव मेवाड़ में विशेष रहा। एकलिङ्गजी, मेनाल, तिलिस्मा, बाड़ोली आदि स्थानों के प्राचीन शिवमंदिर इसी सम्प्रदाय के हैं। इन मंदिरों के पुजारी कनफड़े साधु होते थे, जो शरीर पर भस्म रमाते और आजन्म ब्रह्मचारी रहते थे। लकुलीश के ४ शिष्यों-कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य-से चार सम्प्रदाएं चलीं। उनमें से एकलिङ्गजी के मंदिर के मठाधीश कुशिक सम्प्रदाय

के अनुयायी थे। कई शैव सम्प्रदाय के मंदिरों के द्वार पर लकुलीश की मूर्तियां बनी हुई हैं, जो पद्मासन-स्थित और जैन-मूर्तियों की भांति शिर पर केशों से आच्छादित हैं। उनके दाहिने हाथ में बीजोरा और बायें में लकुट (दण्ड) होता है। इस सम्प्रदाय के साधु वर्तमान समय में लकुलीश का नाम तक भूल गये हैं और वे (कनफड़े, नाथ) अपने को गोरखनाथ आदि के शिष्यों में मानने लग गये हैं।

यज्ञादिक में यद्यपि ब्रह्मा को अवश्य स्थान दिया जाता है, परन्तु मेवाड़ में ब्रह्मा का मन्दिर कहीं पर नहीं है। इससे अनुमान होता है कि इस देश में ब्रह्मा के मन्दिर बनाने और उसके पूजने की रूढ़ि न रही हो।

ब्रह्मा

सूर्य की पूजा का मेवाड़ में अधिक प्रचार था, जिसके अनेक प्रमाण हैं। चित्तोड़गढ़ का प्रसिद्ध कालिका माता का मंदिर सूर्य का ही मंदिर था। वर्तमान समय में वहां पर जो कालिका की मूर्ति है वह पीछे से बिठलाई गई है। आहाड़, नादेसमा आदि स्थानों में प्राचीन समय के सूर्य के मंदिर और मूर्तियां मिली हैं। सूर्य की मूर्ति खड़ी हुई द्विभुज होती है, दोनों हाथों में कमल, पैरों में घुटने से कुछ नीचे तक लंबे बूट, छाती पर कवच और सिर पर किरीट होता है। राणपुर के जैनमंदिर के निकट एक सूर्य का प्राचीन मंदिर है, जिसके बाहिरी भाग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य की मूर्तियां बनी हुई हैं, जिन सब के नीचे सात घोड़े और पैरों में लम्बे बूट हैं।

सूर्य-पूजा

केवल परमात्मा के भिन्न भिन्न नामों को ही देवता मानकर उपासना प्रारम्भ हुई इतना ही नहीं, किन्तु ईश्वर की मानी हुई शक्ति एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं की पत्नियों की शक्तिरूप में कल्पना की जाकर उनकी पृथक् पृथक् पूजा होने लगी। प्राचीन साहित्य के अवलोकन से देवियों के भिन्न भिन्न नाम मिलते हैं जैसे कि ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री। इन सात शक्तियों को मातृका कहते हैं। देवियों की कल्पना में दुर्गा अर्थात् महिषासुरमर्दिनी मुख्य है और जगह जगह उसकी पूजा होती है।

शाक्त-संप्रदाय

मेवाड़ के छोटी सादड़ी नामक क़स्बे से दो मील दूर भंवर माता के मन्दिर से वि० सं० ५४७ माघ सुदि १० (जनवरी ई० स० ४९१) का

एक शिलालेख मिला है, जिसमें गौरवंशी क्षत्रिय राजा यशगुप्त-द्वारा देवी का मन्दिर बनाये जाने का उल्लेख है। सामोली गांव से मिले हुए मेवाड़ के राजा शीलादित्य के समय के वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) के शिलालेख में लिखा है कि वहां के निवासी जेंतक महत्तर-द्वारा अरण्यवासिनी देवी का मन्दिर बनाया गया। इन लेखों से निश्चित है कि मेवाड़ में देवी की पूजा भी विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्व से चली आती थी। तांत्रिक ग्रन्थों में देवियों की अनेक प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख है। मातृकाओं की मूर्तियां चित्तोड़-गढ़, कुंभलगढ़, उदयपुर आदि स्थानों में देखने में आई हैं और दुर्गा की मूर्तियां तो जगह जगह मिलती हैं, उनके चार, आठ, बारह, सोलह और बीस तक भुजाएं होती हैं।

देवी के उपासकों में एक दल वाममार्गी कहलाता है, जो बड़े ही गुप्त-रूप से उपासना करता है। मद्य, मांस और स्त्री-सेवन करना इस मत का मुख्य सिद्धान्त है। मेवाड़ में इस मत का पहिले विशेष प्रचार था और कुछ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ और शूद्र लोग निःसंकोच ऐसी उपासनाओं में भाग लेते थे। समय के परिवर्तन से अब इस मत का प्रभाव घटता जाता है, किन्तु फिर भी यत्र तत्र इस उपासना के कुछ चिह्न विद्यमान हैं। क्षत्रिय लोग प्रायः देवी के उपासक होते हैं और नवरात्रि आदि अवसरों पर देवी के आगे भैंसों तथा बकरों का बलिदान करते हैं। अन्य लोग भी इस मत के उपासक हैं, पर उनकी उपासना का मार्ग भिन्न है।

गणेश-पूजा

पौराणिक युग में जब मूर्ति-पूजा का प्रवाह चल निकला तब शिव के पुत्र गणेश की पूजा भी प्रत्येक माङ्गलिक कार्य में सब से प्रथम होने लगी और सर्वसिद्धिदाता मानकर लोग उसकी उपासना करने लगे। मेवाड़ में गणेश के मंदिर कई जगह पर बने हुए हैं, किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व का कोई मंदिर देखने में नहीं आया। शिव तथा विष्णु के कितने ही मंदिरों के द्वार पर गणेश की मूर्तियां खुदी हुई मिलती हैं। उससे विदित होता है कि गणेश की पूजा भी दीर्घकाल से होती है।

विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति और गणेश की पूजा पंचायतन नाम से प्रसिद्ध है और उसके उपासक स्मार्त कहलाते हैं। जावर, उदयपुर, सीसारमा आदि

स्थानों में विष्णु और शिव के पंचायतन मंदिर बने हुए हैं। ऐसे मंदिरों में जिस देवता का मंदिर मुख्य हो उसकी मूर्ति मध्य के बड़े मंदिर में और अन्य चार मूर्तियां बाहर के भाग में परिक्रमा के चारों कोनों पर बने हुए छोटे मंदिरों में स्थापित की जाती हैं।

अन्य देवी देवताओं की पूजा

मूर्तिपूजा के प्रवाह के साथ इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, कुबेर आदि दिक्पाल तथा रेवंत, भैरव, हनुमान, नाग आदि देवताओं की भी उपासना प्रारम्भ होकर उनकी मूर्तियां बनने लगीं, इतना ही नहीं, किन्तु ग्रह, नक्षत्र, प्रातः, मध्याह्न, सायं, ऋतु, शस्त्र, नदियां और युगों तक की मूर्तियां बनाई जाकर उनके पूजने की प्रथा चल निकली। उनका धार्मिक विश्वास यहां तक बढ़ गया कि वे वृक्षों तक को पूजने लगे। मेवाड़ में बहुधा इन उपर्युक्त देवताओं की मूर्तियां मिलती हैं। महाराणा कुंभा का बनाया हुआ वि० सं० १५०५ (ई० स० १४४८) का चित्तोड़गढ़ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ तो ऐसी मूर्तियों का भंडार है।

बौद्ध धर्म

मेवाड़ में निरीश्वरवादी बौद्ध धर्म का प्रचार नाममात्र का रहा। नगरी में एक स्तूप और मौर्य राजा अशोक के समय की लिपि में खुदा हुआ शिलालेख का एक छोटासा टुकड़ा मिला है, जिसमें '[स]व भूतानं दयाथं का' 'सर्व जीवों की दया के लिए' लेख है। जीवदया की प्रधानता बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में समान रूप से थी, इसलिए यह स्पष्टरूप से नहीं कहा जा सकता कि यह लेख किस धर्म से सम्बन्ध रखता है।

चित्तोड़ के किले पर जयमल की हवेली के सामनेवाले तालाब पर ठोस पत्थर के छः बौद्ध स्तूप मिले हैं। उनके सिवाय बौद्धों के सम्बन्ध का कोई चिह्न नहीं मिलता, पर इन स्तूपों से निश्चित है कि मेवाड़ में बौद्ध धर्म का कुछ प्रभाव अवश्य रहा था।

जैन धर्म

जैन धर्म बौद्ध धर्म से भी प्राचीन है और मेवाड़ में वैदिकधर्म के साथ साथ इसका पूरा प्रचार रहा। जैनधर्मावलम्बी जीव, अजीव, आश्रव (मन, वचन और शरीर का व्यापार एवं शुभाशुभ के बन्धन का हेतु), सम्वर (आश्रव का रोकनेवाला), बन्ध, निर्जरा (बन्धकर्मों का क्षय), मोक्ष, पुण्य और पाप इन नौ तत्त्वों को मानते हैं। जीव अर्थात् चैतन्य आत्मा कर्म का कर्त्ता और फल का भोक्ता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सब व्यक्त और अव्यक्तरूप से चैतन्य गुणवाले हैं। काल, स्वभाव, नियति, कर्म और उद्यम उत्पत्ति के मुख्य कारण हैं। इन्हीं पांच निमित्तों से परमाणु (पुद्गल) नियम-पूर्वक आपस में मिलते हैं, जिससे जगत् की प्रवृत्ति होती है और यही कर्म के फल देते हैं। ये लोग ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते। इनके मतानुसार यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। इस धर्म के अनुयायी लोग अपने चौबीस तीर्थंकरों, कई देवियों और अपने धर्माचार्यों आदि की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं। इनके अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी हैं। जैनधर्म के भी मुख्यतः दो फ़िर्के-दिगम्बर और श्वेताम्बर-हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय की मूर्तियां नग्न होती हैं और श्वेतांबरों की कोपीनवाली। दिगंबर लोग तीर्थंकरों को वीतराग मानते हैं अतः वे मूर्तियों को आभूषण आदि से अलंकृत नहीं करते, किन्तु श्वेतांबर लोग रत्नजटित सुवर्ण आदि की बनी हुई अंगिया आदि भूषण पहिनाकर उन्हें सराग बनाने में भक्ति समझते हैं। दिगंबर मत के साधु नग्न रहते हैं और शहरों से दूर जंगलों में निवास करते हैं, पर मेवाड़ में ये साधु नहीं हैं। श्वेतांबर साधु उपासरों में रहते हैं और श्वेत तथा पीत वस्त्र पहिनते हैं। समय पाकर जैन आचार्यों ने भी कई गच्छों की सृष्टि की, जिनमें से किसी न किसी गच्छ के आचार्य को प्रत्येक जैन अपना कुलगुरु मानता है।

स्थानकवासी (ढूंढिये) श्वेतांबर सम्प्रदाय से पृथक् हुए हैं, जो मंदिरों और मूर्तियों को नहीं मानते। इस शाखा के भी दो भेद हैं, जो बारापंथी और तेरह-पंथी कहलाते हैं। ढूंढियों का सम्प्रदाय बहुत प्राचीन नहीं है। लगभग ३०० वर्ष से यह प्रचलित हुआ है। जैनधर्म की उन्नति के समय में कई राजपूत जैनधर्मावलम्बी होकर महाजनों में मिल गये और उनकी गणना ओसवालों में हुई।

मेवाड़ में सैकड़ों जैनमंदिर बने हुए हैं, उनमें से कितने एक मौर्य राजा संप्रति के समय के बतलाये जाते हैं, परन्तु उनके इतने पुराने होने का कोई चिह्न नहीं मिलता। वस्तुतः विक्रम की दसवीं शताब्दी से पूर्व का बना हुआ कोई जैनमंदिर इस समय मेवाड़ में विद्यमान नहीं है।

चित्तोड़ का प्रसिद्ध जैन कीर्त्तिस्तम्भ (जिसको दिगम्बर सम्प्रदाय के बघेरवाल महाजन जीजा ने बनवाया था), ऋषभदेव (केसरियानाथ), करेड़ा, कुम्भलगढ़, चित्तोड़ के सतवीस देवलां आदि अनेक प्रसिद्ध मंदिर मेवाड़ में जैनधर्म के उत्कर्ष के सूचक हैं।

इस्लाम धर्म

सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने वि० सं० १२५१ (ई० स० ११९४) में अजमेर के चौहान-राज्य को अपने हस्तगत किया, उस समय मेवाड़ का पूर्वी हिस्सा, जो चौहानों के अधिकार में था, सुलतान के अधिकार में चला गया। तब से इस्लामधर्म का प्रवेश होकर क्रमशः मेवाड़ में मस्जिदें बनने लगीं तथा मुसलमान शासक बलात् हिन्दुओं को मुसलमान बनाने लगे। मेवाड़ में इस्लाम धर्म के शिया और सुन्नी नामक दो फ़िर्के हैं, जिनमें सुन्नी अधिक हैं। दाऊदी बोहरे शिया फ़िर्के के अनुयायी हैं।

ईसाई धर्म

वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में अंग्रेज़ी सरकार से सन्धि होकर कर्नल जेम्स टॉड पोलिटिकल एजेन्ट होकर मेवाड़ में आया और वह उदयपुर से ६ मील दूर डबोक में रहने लगा। उसके बाद कई पोलिटिकल अफ़सर नियत होकर आये, परन्तु स्थायी रूप से ईसाईधर्म की नींव नहीं लगी। महाराणा सज्जनसिंह के समय स्कॉटिश प्रेसबिटेरियन मिशन का पादरी डा० शेपर्ड उदयपुर में आया और उसने वहां ईसाई मिशन क़ायम किया तथा मेवाड़ में शिक्षा के हेतु कई मदरसे खोले। उक्त मिशन की ओर से स्त्री-शिक्षा के लिये भी प्रयत्न किया जाकर राजधानी उदयपुर में मदरसा खोला गया

और चिकित्सा के लिए अस्पताल भी बनाया गया। राज्य की ओर से गिरजाघर बनाने को हाथीपोल के बाहर ज़मीन दी गई, जहां गिरजाघर बनाया जाकर नियमबद्ध उपासना होने लगी। मिशन के उद्योग से कतिपय भील तथा थोड़े से अन्त्यजों ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया। उसी समय से ईसाईधर्म की बुनियाद मेवाड़ में पड़ी और क्रमशः उसकी वृद्धि होती जाती है।

सामाजिक परिस्थति

वर्णव्यवस्था

भारतीय लोगों के सामाजिक जीवन में वर्णव्यवस्था मुख्य है और इसी भित्ति पर हिन्दू-समाज का भवन खड़ा है, जो अनन्त बाधाओं का सामना करने पर भी अक्षुण्ण रहा। वर्णव्यवस्था का उल्लेख यजुर्वेद में भी है। बौद्ध और जैनों के द्वारा यद्यपि इसको बड़ा धक्का पहुंचा तथापि वह नष्ट न हुई और हिन्दू-धर्म के पुनरभ्युदय के साथ प्रतिदिवस उसकी उन्नति होती गई। वेदों में चार वर्ण बतलाये गये हैं, जिनका वर्णन यहां पर किया जाता है।

वर्णव्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणसमाज चारों वर्णों में मुख्य है। ब्राह्मणों का मुख्य कर्त्तव्य पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और लेना है। मेवाड़ में ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान रहा और समय समय पर सैकड़ों गांव, कुएं और हज़ारों बीघा ज़मीन उनको दी गई। उनके बनाये हुए काव्य, साहित्य, शिल्प, इतिहास, चरित्र और वैद्यक आदि पर कई ग्रंथ हैं और उनकी रची हुई अनेक प्रशस्तियां अब तक विद्यमान हैं। ब्राह्मण लोग सदा से विद्या के अनुरागी रहे, इसीलिये शिक्षक का पद इनको मिलता था और प्रायः यही राजकुमारों आदि के शिक्षक होते थे। पुरोहित का पद तो ब्राह्मणों की पैतृक सम्पत्ति रही। राजा से लगाकर सामान्य व्यक्ति तक का पुरोहित ब्राह्मण ही होता है। मन्त्री और मुसाहिब के पद पर भी समय समय पर ये लोग नियत होते रहे हैं। सामान्यतः इन लोगों का कार्य पूजा-पाठ आदि भी रहा, पर देश और अपने स्वामी की रक्षार्थ युद्ध में भी ब्राह्मणों के भाग

ब्राह्मण

लेने के कई उदाहरण मिलते हैं। पिछले समय में ब्राह्मणों में विद्या का ह्रास होने लगा और वे कृषिकर्म करने लगे। इसपर महाराणा मोकल ने उनको साङ्गवेद पढ़ाने की व्यवस्था की, जैसा कि कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति से पाया जाता है (श्लोक संख्या २१७)। कई ब्राह्मणों ने व्योपार और शिल्पकारी का कार्य करना आरम्भ किया और जब पेशों के अनुसार जातियां बनने लगीं तब शिल्प का कार्य करनेवाले ब्राह्मण 'खाती' और व्योपार करनेवाले ब्राह्मण 'बोहरा' कहलाने लगे; जैसे ननवाणा बोहरा, पल्लीवाल बोहरा आदि। पिछले समय में ब्राह्मणों में गांव आदि के नाम पर अनेक उपजातियां हुईं और उनका परस्पर का खान-पान का सम्बन्ध छूट गया, जिससे उनकी बड़ी क्षति हुई और होती जाती है। वर्त्तमान समय में मेवाड़ राज्य के उच्च पदों तथा अहलकारों में ब्राह्मणों की संख्या पर्याप्त है। कई पुरोहिताई, पूजापाठ, कथावाचन, अध्यापन, वैद्यक, व्योपार, शिल्पकारी आदि कार्यों से जीवन निर्वाह करते हैं और उनकी बड़ी संख्या कृषिजीवी है।

ब्राह्मणों की भांति क्षत्रियों का भी समाज में ऊंचा स्थान चला आता है। उनका मुख्य कर्त्तव्य प्रजा-पालन, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन आदि थे।

क्षत्रिय

शासक और सेनापति का पद क्षत्रियों का ही रहा है। ब्राह्मणों के संसर्ग से उनमें शिक्षा का प्रचार अच्छा रहा और उन्होंने संस्कृत तथा भाषा में कई ग्रन्थों की रचना की। देश पर आनेवाली विपत्ति के समय प्राण देना वे (क्षत्रिय) अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते रहे और मेवाड़ के क्षत्रियों ने तो समय समय पर अद्भुत शौर्य प्रकट किया है। दरवाज़ों के किवाड़ों पर लगे हुए लम्बे लम्बे तीक्ष्ण भालों के सामने खड़े हो मदमत्त हाथी को अपने बदन पर हुलवाना मेवाड़ के क्षत्रियों का ही काम था। छुरी, कटारी, तलवार, ढाल, बर्छी, तीर-कमान और घोड़ा राजपूतों की प्रिय वस्तु थी। पुरुषों की भांति क्षत्राणियों ने भी वीरता के कार्य किये हैं और सतीत्व-रक्षा के लिये उनके जौहर करने के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। राजपूत[1] युद्धविद्या में कुशल होने के अतिरिक्त अन्य कई विषयों के ज्ञाता होते थे। कविता से

(१) मुसलमानों के आगमन के पश्चात् क्षत्रियवर्ग राजपूत शब्द से संबोधित होने लगा, जो राजपुत्र का अपभ्रंश है।

उन्हें बड़ा अनुराग था और वे स्वयं कविता करते थे। इसीसे वे अपने यहां ब्राह्मण, चारण, राव (भाट) आदि को आश्रय देते थे। शरण आये हुए की रक्षा करना वे अपने जीवन का मुख्य मन्त्र मानते थे। शस्त्र छोड़कर शत्रु भी उनके पास चला आता तो वे उसकी रक्षा करते थे। राजपूतों का स्त्री-समाज अपढ़ नहीं होता था। अध्यापिकाएं रख उनको शिक्षा दिलाई जाती थी और व्यावहारिक ज्ञान में वे बड़ी निपुण होती थीं। चाहे सर्वस्व नष्ट हो जाय राजपूत वचन का पालन करते थे। आत्माभिमान और वंश-गौरव राजपूतों में अवश्य होता था। मेवाड़ में शायद ही ऐसा कोई ग्राम होगा, जहां लड़ाई में मारे गये वीर क्षत्रियों के स्मारक की छत्रियां तथा चबूतरे न हों। मेवाड़ में ही नहीं, किन्तु सारे भारतवर्ष में केवल एक क्षत्रिय वर्ण ही ऐसा रहा है, जिसमें उप-जातियां नहीं बनीं और न उसके परस्पर के खान-पान या विवाह-सम्बन्ध में कोई बाधा पड़ी।

वैश्य

वैश्यों के मुख्य कार्य पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीद (व्याजवृत्ति) और कृषि थे। बौद्ध काल में वर्णव्यवस्था शिथिल होने से उसका रूपान्तर हो गया। बौद्धों और जैनों के मतानुसार कृषि करना पाप माना गया, जिससे वैश्य लोगों ने पीछे से उसे छोड़ दिया और दूसरे धंधे करना इख़्तियार किया। उनके राज्य-कार्य करने, राजमंत्री होने, सेनापति बनने और युद्धों में लड़ने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। विक्रम की ११ वीं शताब्दी के आसपास से उनमें उपजातियां बनने लगीं और उनके परस्पर के विवाहादि सम्बन्ध छूटते गये।

शूद्र

प्राचीन काल में सेवा करनेवाले वर्ग का नाम शूद्र था। वह वर्ण हलका नहीं समझा जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की तरह शूद्रों को भी पंच-महायज्ञ करने का अधिकार था ऐसा पतंजलि के महाभाष्य और उसके टीकाकार कैयट के 'महाभाष्य प्रदीप' नाम के ग्रन्थ से पाया जाता है। बौद्धों की अवनति के समय हिन्दू-समाज में बहुतसे कार्यों—कृषि, दस्तकारी, कारीगरी आदि—का करना तुच्छ समझा जाने लगा और वैश्यों ने कृषि और शिल्प का काम छोड़ दिया तो इन कामों को शूद्र लोग करने लगे। वे ही किसान, लुहार, दरज़ी, धोबी, तक्षक, जुलाहे, कुम्हार और बढ़ई हो गये। पीछे

से इस वर्ण के लोगों में पेशों के अनुसार अलग अलग जातियां बन गई और उनका परस्पर का विवाह आदि सम्बन्ध भी मिट गया।

कायस्थ शब्द का अर्थ लेखक है जैसा कि प्राचीन शिलालेखों से पाया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जो लोग लेखक या अहलकारी का काम करते थे वे कायस्थ कहलाये। ये लोग सरकारी दफ़्तरों में अधिक संख्या में नौकर होते थे। पीछे से अन्य पेशेवालों के समान इनकी भी एक जाति बन गई। प्राचीन काल में राजकीय कर उगाहने के लिए एक समिति होती थी, जिसका नाम 'पंचकुल' था और उसका प्रत्येक सदस्य 'पंचकुली' (पंचोली) कहलाता था। राज्य के अहलकारों में इनकी संख्या विशेष होने से पंचकुल में भी ये लोग अन्य वर्ण की अपेक्षा अधिक होते थे, जिससे मेवाड़ में पंचोली शब्द बहुधा कायस्थों का सूचक हो गया है, परन्तु वास्तव में ऐसा ही नहीं है। ब्राह्मणों, वैश्यों और गूजरों तक में पंचोली उपनाम पाये जाते हैं। कायस्थों में उनके निकासस्थान आदि के नाम से अलग अलग भेद हो गये हैं, जैसे मथुरा से निकले हुए माथुर, श्रावस्ती से निकले हुए श्रीवास्तव, वलभी से निकले हुए वालभ[1], भटनेर (भटनगर) से निकले हुए भटनागर आदि। सूरजधज कायस्थ अपने को शाकद्वीपी ब्राह्मण और वालभ क्षत्रिय बतलाते हैं।

कायस्थ

भील एक जंगली जाति है और मेवाड़ में उनकी बड़ी आबादी है। इस जाति के लोग बहुधा शहरों से दूर पहाड़ी प्रदेश में पहाड़ियों की चोटियों पर एक दूसरे से दूर झोंपड़े बनाकर रहते हैं। बहुतसे झोंपड़े मिलकर एक पाल (पल्ली) कहलाती है और उसका मुखिया पालवी (पल्लीपति) या गमेती कहलाता है, जिसकी आज्ञा में प्रत्येक पाल के लोग रहते हैं। ये लोग पशुपालन, खेती, शिकार और घास या लकड़ी बेचकर अपना निर्वाह करते हैं और कभी कभी चोरी या डकैती भी करते हैं। उदयपुर के राज्यचिह्न में एक तरफ़ राजपूत और दूसरी तरफ़ भील बना हुआ है, जिसका अभिप्राय यही है

भील

(१) अब तो कायस्थ लोग वालभ नाम भी भूल गये हैं और वालभ को वाल्मीक कहने लगे हैं, परन्तु वास्तव में शुद्धरूप वालभ है। कई शिलालेख वालभ कायस्थों के लिखे हुए मिलते हैं। 'उदयसुन्दरीकथा' का कर्ता सोड्ढल अपने को वालभ कायस्थ लिखता है और वलभी के राजा के भाई के वंश में अर्थात् क्षत्रिय होना प्रकट करता है।

कि उक्त राज्य के मुख्य रक्षक राजपूत और भील रहे हैं। प्राचीन काल से ही ये स्वामिभक्त लोग युद्ध आदि के समय राजाओं की बड़ी सेवा करते; पहाड़ों में रहे हुए लोगों, राजपरिवारों और सरदारों के परिवारों की रक्षा करते; शत्रु की रसद आदि लूटते तथा मौके मौके पर उनसे लड़ते भी थे। राजा के राज्याभिषेकोत्सव के अन्त में एक भील-मुखिया अपने अंगूठे को तीर से चीरकर अपने रुधिर से राजा के राज्य-तिलक करता था। इस रीति का पता महाराणा अमरसिंह (दूसरे) तक तो लगता है। ये लोग भैरव, देवी, नाग, शिव, ऋषभदेव आदि देवताओं के उपासक होते हैं। इनके शस्त्र तीर, 'कामठा' (बांस का बना हुआ धनुष), तलवार और कटार हैं अब बन्दूक का भी ये लोग उपयोग करने लगे हैं तथा बचाव के लिए ढाल रखते हैं। ये एक लड़ाकू जाति है। इनकी स्त्रियां भी लड़ाई के समय अपने पतियों के साथ रहकर उनको भोजन देने, जल पिलाने और शत्रु की तरफ़ से आये हुए तीरों को एकत्र कर उनको देने की सहायता करती हैं एवं कभी कभी वे लड़ती भी हैं। महाराणा सज्जनसिंह के समय ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३८) में भीलों का उपद्रव हुआ और राज्य की सेना से लड़ाई हुई उस समय एक भीलनी ने ऐसे ज़ोर से तीर चलाया कि वह एक ऊंट का पेट फोड़कर पार निकल गया। इनके बालक लड़के भी अपने पशु चराते समय छोटे छोटे कामठों से तीर चलाने का अभ्यास करते हैं। एक लड़का आकाश में कंडा फेंकता है तो दूसरा उसको नीचे आते हुए अपने तीर से बेधने का प्रयत्न करता है। मेवाड़ में जिनको आजकल भील कहते हैं वे सब के सब भील नहीं हैं, किन्तु उनमें मीने भी हैं। साधारण जनता और राजकीय अहलकार उन सबको भील कहते हैं, परन्तु ये दोनों जातियां भिन्न भिन्न हैं और विशेष जांच करने से ही उनके बीच का भेद मालूम हो सकता है। मीने, मेव और मेरों के समान क्षत्रपों के सैनिकों में से हैं और भील यहां के आदि निवासी, जिनमें कुछ राजपूत भी मिल गये हैं। भील और भीलनियां नाचने, गाने और मद्य पीने के बड़े शौक़ीन होते हैं और वे बहुधा अपनी जाति के वीर पुरुषों के संबन्ध के गीत गाते हैं। इनका विवाह अग्नि की साक्षी से पुरोहित(गुरु)द्वारा होता है। ये लोग प्रत्येक जानवर का मांस खाते हैं और क़हत वग़ैरह के समय गाय को भी खा

जाते हैं। इनमें एकता विशेषरूप से होती है और ढोल बजाने या किलकारी करने से ये लोग सशस्त्र एकत्र हो जाते हैं। ये लोग स्त्रियों का बड़ा आदर करते हैं और आपस की लड़ाइयों में शत्रु की स्त्री पर कभी प्रहार नहीं करते। शपथ पर भी ये लोग बड़े दृढ़ होते हैं। केसरियानाथ (ऋषभदेव) के केसर का जल पीने पर कभी झूठ नहीं बोलते। अपने घर आये शत्रु का भी ये स्वागत करते हैं। ये लोग मेवाड़ में अस्पृश्य नहीं माने जाते।

प्राचीनकाल में भिन्न भिन्न जातियों या वर्णों में परस्पर छूतछात नहीं थी। वे एक दूसरे के हाथ का भोजन करते थे। छूतछात और खानपान के परहेज़ का प्रभाव पीछे से पड़ा है। प्रथम परस्पर के खानपान का भेद मांसाहार और शाकाहार से पड़ा। फिर वैष्णव संप्रदायों के प्रभाव से इसकी वृद्धि होती गई। अब तो एक वर्ण के लोग भी अपनी उपजातियों के साथ खाने पीने में बहुत कुछ संकोच करते हैं।

छूतछात

यहां के लोगों का भौतिकजीवन बहुत अच्छा रहा। राजा, सरदार और सम्पन्न लोग बड़े बड़े महलों और मकानों में रहते चले आते हैं। उनके मकानों में प्रकाश, वायुसंचार आदि का पर्याप्त ध्यान दिया जाता है और अलग अलग कामों के लिए अलग अलग कमरे होते हैं। अलग अलग समय पर राजाओं या सरदारों की सवारियों, धार्मिक उत्सवों, मेलों आदि के प्रसंगों पर हज़ारों लोग सम्मिलित होते हैं। कितने एक मेलों में व्यापार के लिए दूर दूर के व्यापारी आते हैं। होली के दिनों में फाग आदि खेलने का रिवाज़ प्राचीनकाल से चला आता है। हाथियों, भैंसों और मेंढों आदि की लड़ाइयां को लोग उत्साह से देखते हैं। दोलोत्सव स्त्री-पुरुषों के आह्लाद का सूचक है। शतरंज, चौपड़ आदि खेल लोगों के मनोरंजन के साधन हैं। प्राचीनकाल में जूआ भी होता था, जिसपर राज्य का कर लगता था, जैसा कि सारणेश्वर के मंदिर के वि० सं० १०१० के शिलालेख से पाया जाता है। क्षत्रिय लोग आखेट-प्रिय होते हैं और उसमें बड़ा आनन्द मानते हैं। सूअरों का शिकार वे प्रायः घोड़ों पर सवार होकर भालों से करते हैं और कभी कभी बन्दूक से भी उसको मारते हैं। शिकार के समय वे कुत्ते भी साथ रखते हैं। नटों के शारीरिक खेल और रामलीला आदि भी प्राचीनकाल से शहरों और ग्रामों में लोगों के मनो-

भौतिकजीवन

रंजन के लिए समय समय पर होते रहे हैं। उत्सवों और त्यौहारों के प्रसंग पर स्त्री और पुरुष अपनी हैसियत के अनुसार सोने, चांदी आदि के ज़ेवर तथा रंग बिरंगे वस्त्रों का विशेष उपयोग करते हैं।

दासप्रथा

दास-प्रथा प्राचीनकाल से चली आती है। राजाओं, सरदारों और धनाढ्य लोगों के यहां दास-दासियां रहते हैं। यहां की दासप्रथा कलुषित या घृणित नहीं रही। ये लोग परिवार के अंग की तरह रहते हैं और त्यौहार आदि प्रसंगों पर उनपर विशेष कृपा बतलाई जाती है। उनके वस्त्र, खानपान आदि का सुप्रबन्ध रहता है, जिससे वे असन्तुष्ट नहीं रहते। यदि वे स्वामी को छोड़कर अन्यत्र जाना चाहें तो किसी प्रकार का उनपर बलात्कार नहीं होता।

बहम

यहां की साधारण जनता में बहम का प्रवेश प्राचीनकाल से ही पाया जाता है। लोग जादू, टोने, भूत, प्रेत आदि पर विश्वास करते हैं और स्त्रियों में यह भाव विशेष रूप से पाया जाता है। भील लोगों में किसी किसी जीवित स्त्री को डाइन बतलाकर उसे बहुत कष्ट दिया जाता था, परन्तु अब राज्य की तरफ़ से उसकी रोक है। बहुतसी स्त्रियां अपने बच्चों आदि की बीमारी के समय दवा की अपेक्षा झाड़ा-फूंका या जादू-टोने पर अधिक विश्वास करती हैं, जिससे उनका यथोचित उपचार नहीं होता।

स्त्री-शिक्षा

प्राचीनकाल से ही राजाओं, सरदारों और धनाढ्यों के यहां लड़कियों को भी पढ़ाने की प्रथा चली आती है और साथ ही उनके सदाचरण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्त्री-शिक्षा के लिये पहले पाठशालाएं तो नहीं थीं, किन्तु अनेक कुटुम्बों में अपने परिवार के पुरुषों या गुरुओं अथवा स्त्रियों-द्वारा कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी और वे धार्मिक ग्रन्थों, कथाओं आदि को विशेष रूप से पढ़ती थीं। जैन आर्याएं, जैन स्त्री-समाज में साधारण शिक्षा के अतिरिक्त धार्मिक-शिक्षा का प्रचार भी करती रही हैं। कई स्त्रियों के रचे हुए भाषा के गद्य-ग्रन्थ, कविता के ग्रन्थ एवं अनेक भजन, गीत व पद उपलब्ध होते हैं। गीतों की रचना करना तो स्त्रियों के लिये एक आसान बात है। मीरांबाई के भजन और पद भारत भर में प्रसिद्ध हैं।

मेवाड़ में पहले पर्दे की प्रथा बिलकुल नहीं थी। राजाओं, सरदारों और धनाढ्यों के यहां स्त्रियां के रहने के स्थान पुरुषों से अलग अवश्य होते थे,

पर्दा जहां साधारण पुरुषों का प्रवेश नहीं होता था, परन्तु पुरोहित, आचार्य आदि के लिये कोई रोक-टोक न थी। कई राजघरानों की स्त्रियां लड़ाइयों में लड़ी हैं एवं शिकार में अपने पति के साथ भाग लेती रही हैं। जब मेवाड़ के राजाओं का प्राचीन रीति के अनुसार राज्याभिषेकोत्सव होता था उस समय राजा और मुख्य राणी एक सिंहासन पर आरूढ़ होते थे और राजसभा के सम्मुख उनपर अभिषेक होता था। राज्याभिषेक की इस रीति के महाराणा राजसिंह (दूसरे) तक प्रचलित रहने का तो पता चलता है। दिल्ली में मुग़लों का राज्य क़ायम होने के बाद जब हिन्दू राजाओं का वहां रहना होने लगा तब से जयपुर, जोधपुर आदि राज्यों में मुग़लों की देखादेखी पर्दे की प्रथा का प्रवेश हुआ, परन्तु मेवाड़ में उसका प्रचार महाराणा राजसिंह (दूसरे) के पीछे से हुआ। जब राजाओं के यहां यह प्रथा चली तो छोटे बड़े राजपूत सरदारों, मंत्रियों एवं धनाढ्यों के यहां भी उसका अनुकरण होने लगा। पर्दे की प्रथावाले सम्पन्न लोगों की स्त्रियां त्यौहार, देवदर्शन, विवाह आदि प्रसंगों पर कुछ स्त्रियों को साथ लेकर बाहर निकलने में संकोच नहीं करतीं। साधारण जनता में इस प्रथा का रिवाज़ बिलकुल नहीं है। यह प्रथा उन्हीं देशों में है, जहां मुसलमानों की प्रबलता विशेष रूप से रही।

सती की प्रथा भी प्राचीन है। वि० सं० की छठी शताब्दी के आसपास से लगाकर १९ वीं शताब्दी तक के सतियों के स्मारकस्तम्भ मिलते हैं।

सती पहले प्रत्येक जाति में यह रीति प्रचलित थी, परन्तु विशेष रूप से नहीं। कोई स्त्री किसी के बहकाने या आग्रह करने पर सती नहीं होती थी, किन्तु पति के साथ विशेष प्रेम होने से वह स्वयंही पति के साथ जल मरती थी। सामान्यतः सती होनेवाली स्त्रियों की संख्या सैकड़े पीछे १ या २ से अधिक नहीं रही। राजाओं में बहुविवाह की प्रथा होने के कारण उनके साथ अधिक राणियां या उपपत्नियां सती होती थीं, जैसा कि उनके स्मारकशिलाओं से पाया जाता है। ई० स० १८२९ (वि० सं० १८८६) में लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क ने भारत के अंग्रेज़ी राज्य में इस प्रथा को बन्द किया। फिर सरकार ने देशी राज्यों में भी उसे बन्द कराने का प्रयत्न किया। महाराणा सरूपसिंह ने बरसों तक टालमटूल करने के बाद वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) में अंग्रेज़ी सरकार की इच्छा

के अनुसार अपने राज्य में इस प्रथा की रोक कर दी तो भी उसके साथ उसकी उपपत्नी एजांबाई सती हो गई। तत्पश्चात् यह प्रथा मेवाड़ से बिलकुल उठ गई।

साहित्य

इस राज्य में संस्कृत, डिंगल और राजस्थानी साहित्य का प्रचार बहुत कुछ रहा। संस्कृत में कविता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था और कविता भी अधिकांश में बहुत सुन्दर होती थी, जैसा कि छोटी सादड़ी के पास के भंवरमाता के मन्दिर से मिले हुए वि० सं० ५४७ (ई० स० ४९०) के गौरवंशी क्षत्रिय राजा यशगुप्त के, वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के राजा अपराजित के तथा वि० सं० १०१० (ई० स० ९५३) के राजा अल्लट के लेखों एवं चित्तोड़, कुंभलगढ़, एकलिंगजी आदि की विस्तृत प्रशस्तियों से पाया जाता है। ऐतिहासिक काव्य भी कई लिखे गये, जिनका उल्लेख प्रसङ्ग प्रसङ्ग पर किया गया है। महाराणा कुंभा ने चार नाटकों की रचना की थी। उसके समय सूत्रधार मंडन ने देवतामूर्तिप्रकरण, प्रासादमंडन, राजवल्लभ, रूपमंडन, वास्तुमंडन, वास्तुशास्त्र, वास्तुसार और रूपावतार तथा उसके भाई नाथा ने वास्तुमंजरी और उसके पुत्र गोविन्द ने उद्धारधोरिणी, कलानिधि एवं द्वारदीपिका नामक शिल्प के ग्रन्थ रचे थे। स्वयं महाराणा कुंभा ने कीर्तिस्तंभों के विषय का एक ग्रन्थ रचा और उसको शिलाओं पर खुदवाकर अपने प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ पर लगवाया था, जो नष्ट हो गया, परन्तु उसकी पहली शिला का ऊपर का आधा हिस्सा मिला है, जिससे पाया जाता है कि उसने जय और अपराजित के मतों को देखकर उस ग्रन्थ की रचना की थी। संगीत सम्बन्धी कई ग्रन्थों की रचना यहां हुई। महाराणा कुंभा ने संगीतराज, संगीतमीमांसा आदि ग्रन्थों की रचना की। वैद्यक और ज्योतिष सम्बन्धी कितने एक ग्रन्थ भी यहां लिखे गये। डिंगल और राजस्थानी भाषा में गीत तथा ऐतिहासिक काव्यों की रचना विशेष रूप से मिलती है। खुम्माणरासा, राणारासा, रायमलरासा, भीमविलास आदि कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जैसा कि पहले कई स्थानों पर बतलाया जा चुका है। संस्कृत ग्रन्थों की रचना विशेष कर ब्राह्मणों की की हुई

मिलती है और डिंगल तथा राजस्थानी की रचना रावों, चारणों, भाटों, मोतीसरों तथा कई जैन साधुओं आदि द्वारा हुई है। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के पहले राजाओं, सरदारों, राजकीय पुरुषों, श्रीमन्तों आदि को डिंगल या राजस्थानी भाषा की कविता से विशेष अनुराग रहा और वे स्वयं कविता की रचना भी करते थे, इतना ही नहीं, किन्तु कविता से विशेष अनुराग होने के कारण वे कवियों का यथेष्ट आदर करते और गांव, कुएं आदि समय समय पर उनको देते रहे, जिनमें से अधिकतर अबतक उनके वंशजों के अधिकार में चले आते हैं।

शासन

मेवाड़ में प्राचीनकाल से ही राजा क्षत्रिय रहे हैं। वे अपने सामन्त, अमात्य (प्रधानमन्त्री), सेनापति, सान्धिविग्रहिक[1], अक्षपटलिक[2] आदि अधिकारियों की सलाह से राज्यकार्य करते थे। यदि प्रजा को कोई शिकायत होती तो उसकी सुनाई होकर उसके निराकरण का उद्योग किया जाता था। राज्य के अलग अलग विभागों पर अलग अलग अध्यक्ष नियत रहते थे। सेना की व्यवस्था इस प्रकार होती थी कि राजा के कुटुम्बियों और सरदारों को राज्य की तरफ़ से जागीरें दी जाती थीं, जिनकी आय के अनुसार नियत सेना से उनको राजा की सेवा करनी पड़ती थी। शत्रु के साथ के युद्ध के समय आवश्यकतानुसार उन्हें अपनी सेना के साथ लड़ने को जाना पड़ता था। उन लोगों को नियत ख़िराज भी देना पड़ता था। इस सेना के अतिरिक्त कई राजपूत आदि ख़ास तौर से तनख़्वाह पर नियत किये जाते थे।

शासन

शत्रुओं के साथ की लड़ाई, अपने राज्य पर के आक्रमण या पड़ोसी राज्यों पर हमला करने के समय सेनापति सेना की व्यवस्था करता था। सेना का मुख्य अंग हाथी, घोड़े और पैदल होते थे। लड़ाई के समय हाथी आड़ के तौर पर आगे खड़े किये जाते थे, परन्तु पीछे से लड़ाई में उनका उप-

युद्ध

---

(१) जिस राजकर्मचारी या मन्त्री के अधिकार में अन्य राज्यों से सन्धि या युद्ध करने का कार्य रहता था, उसको सान्धिविग्राहिक कहते थे।

(२) राज्य के आय-व्यय के विभाग का अध्यक्ष अक्षपटलिक कहलाता था।

योग कम होता गया और घोड़ों का प्रचार बढ़ता गया। लड़नेवाले योद्धाओं के शस्त्र पहले तलवार, कटार, बरछा, भाला और तीर-कमान होते थे एवं बचाव के लिए ढाल रहती थी। कई योद्धा अपने परतलों में दो दो तलवारें इस अभिप्राय से रखते थे कि लड़ते समय यदि एक टूट जाय तो दूसरी से काम लिया जाय। महाराणा सांगा के समय तक मेवाड़ में बन्दूकों या तोपों का प्रचार नहीं हुआ था, क्योंकि उस समय तक राजपूत बारूद[1] के उपयोग से अपरिचित थे। उनको बन्दूकों और तोपों का सामना पहले पहल बाबर के साथ की खानवे की लड़ाई में करना पड़ा था। उसके बाद मेवाड़ में बारूद का प्रचार हुआ और बन्दूकें तथा तोपें बनने लगीं। लड़ाई के समय राजपूत योद्धा अपने बचाव के लिए सिर पर लोहे की कड़ियोंवाले टोप, जिनपर कलगियां लगी रहती थीं, गर्दन से जंघा तक लोहे की कड़ियों के भिन्न भिन्न प्रकार के बख़्तर और पैरों की रक्षा के लिए वैसे ही पायजामे पहनते थे। अपने घोड़ों की रक्षा के लिए उनकी पीठ पर मोटे वस्त्रों की बनी हुई भीतर लोहे की

(१) बाबर के भारत में आने के पहिले मेवाड़ के पड़ोसी गुजरात के सुल्तानों के यहां बारूद का प्रवेश हो चुका था। उनका परिचय अरब और मिश्र के तुर्कों से था और रूमी मुसलमान उनकी सेना में रहते थे। सुल्तान महमूदशाह बेगड़ा के समय गुजरात में रूमियों की अध्यक्षता में तोपखाना बना और पोर्चुगीज़ों के साथ की लड़ाई में उनका एक बड़ा जहाज़ तोपों से उड़ाया गया था। महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई हुई, उस समय गुजराती सेना के साथ तोपख़ाना था। अकबर के समय मेवाड़ में बन्दूकें और तोपें बन गई थीं। वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) में महाराणा प्रतापसिंह के समय बादशाह अकबर के सेनापति शाहबाज़खां ने कुंभलगढ़ को घेरा तब क़िले के अन्दर की एक बड़ी तोप के फट जाने से लड़ाई का बहुतसा सामान जल गया था। तोपों के आविष्कार के पहले चित्तोड़, रणथंभोर आदि क़िलों में पत्थर के बड़े बड़े गोले शत्रु पर फेंकने के लिये 'मकरी' नाम का एक यन्त्र रहता था, जिसको फ़ारसी में मंजनीक और अंग्रेज़ी में केटेपुल्ट (Catapult) कहते थे। इस यन्त्र के द्वारा नीचे से क़िलों में और क़िलों से नीचे की तरफ़ पत्थर के बड़े बड़े गोले फेंके जाते थे। चित्तोड़, रणथंभोर आदि क़िलों में ऐसे गोलों के ढेर अबतक कई जगह देखने में आते हैं। गिरनार (जूनागढ़, काठियावाड़) के क़िले के एक तहख़ाने के अन्दर मन मन भर के गोले भी मैंने देखे हैं। पृथ्वीराजरासे में चौहान राजा पृथ्वीराज के समय तोपों और बन्दूकों का वर्णन है, जो सर्वथा कल्पित है, क्योंकि वह पुस्तक वि० सं० १६०० के कुछ पीछे की बनी हुई है।

शलाका लगी हुई पाखरें (प्रक्षरा) डालते थे, गर्दन के बचाव के लिए मोटे चमड़े की दोनों तरफ़ लटकती हुई गर्दनियां रहती थीं और सिर की रक्षा के लिए भी वैसे ही चमड़े के आवरण रहते थे, जिनके आगे कभी कभी हाथी की सूंड बनाई जाती थी, जैसी कि पत्ता के चित्र में दीख पड़ती है। इस प्रकार सजधज कर शत्रु पर धावा करते समय भाले या तलवार का उपयोग करते थे। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर घोड़ों को छोड़कर वे पैदल हो जाते और तलवार से लड़ते थे। दूरी के युद्ध में वे तीर कमान का उपयोग करते थे। वे युद्ध से भागने की अपेक्षा लड़कर मरना पसन्द करते थे, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि युद्ध में मरा हुआ पुरुष सीधा सूर्यमंडल को जाता है। लड़ाई में घायल हुए शत्रुओं को वे उठाकर अपने यहां ले जाते और उनका इलाज़ कराते, परन्तु जो शत्रु ऐसा घायल होता कि जिसके बचने की कोई आशा न रहती तो उसको मार डालते, जिसको वे 'दूध पिलाना' कहते थे। कटार का उपयोग बहुत पास पास भिड़ जाने पर होता था अथवा घायल होकर गिरने पर यदि शत्रु मारने को निकट आ जाता तो किया जाता था। जब शत्रु क़िले के नज़दीक आ जाता तब उसकी दीवार के सीधे और तिरछे छिद्रों में से तीर या गोली मारते और उनके सीढ़ियां लगाकर दीवार पर चढ़ने की कोशिश करने पर उबलता हुआ तेल एवं उसमें तर कर जलती हुई रुई या कपड़े उनपर डालते थे। क़िलों में संग्रह किये हुए खाद्य पदार्थ के खूट जाने पर स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर कर जल जातीं और राजपूत गंगाजल पी, केसरिया वस्त्र, शिर में तुलसी और गले में रुद्राक्ष की माला धारण कर तथा 'कसूंबा' (जल में घोला हुआ अफ़ीम) पीकर हाथ में तलवार लिए दरवाज़ा खोल देते और शत्रु पर टूट पड़ते थे। उस समय वे प्राणों का मूल्य सस्ता और वीर-कीर्ति का महँगा समझते थे। राजपूत प्राण रहते हुए अपना बख़्तर[1] शस्त्र या

(१) अकबर से पराजित गुजरात के सुलतान मुजफ़्फ़रशाह के बंगाल से भागकर फिर गुजरात में पहुंचने और वहां उपद्रव मचाने की ख़बर पाकर बादशाह (अकबर) जगन्नाथ कछवाहा, रायसल दरबारी (शेखावत), जयमल कछवाहा और मानसिंह आदि को साथ लेकर उसपर चढ़ा। लड़ाई के समय कछवाहा जयमल, जो रूपसिंह का पुत्र और भारमल का भतीजा था, एक भारी बख़्तर पहने हुए था। अकबर ने उस बख़्तर को उसके लिये उपयुक्त

घोड़ा' शत्रु को कभी नहीं देता था। लड़ाइयों के समय रणवाद्य बजाये जाते और चारण, भाट आदि लोग पहले के पुरुषों की वीरगाथा के छन्द उच्चस्वर से सुना सुनाकर उनके रणोत्साह को बढ़ाते रहते थे।

राजपूत वीरों की वीरलीला का मुख्य क्षेत्र मेवाड़ रहा है। चित्तोड़ के क़िले की रज का एक एक कण राजपूत वीरों के रुधिर से अनेक वार तर हुआ है। कुंभलगढ़, मांडलगढ़, हल्दीघाटी, दीवेर, गोगूंदा आदि अनेक रणभूमियां प्रसिद्ध हैं। हज़ारों ग्रामों में युद्ध में प्राण देनेवाले वीरों के स्मारकस्तंभ अब-तक विद्यमान हैं, जो उनकी वीरता एवं कीर्ति को जीवित रखे हुए हैं।

न देखकर उतरवा दिया और अपने निजी बख़्तरों में से एक अच्छा और हलका बख़्तर उसे पहना दिया। उस समय राठोड़ मालदेव के पोते करण के बख़्तर न देखकर बादशाह ने वह भारी बख़्तर उसे दे दिया। जब जयमल नये बख़्तर को पहने हुए अपने पिता के पास पहुंचा तो उस (पिता) ने उससे पूछा कि अपना बख़्तर कहां है? इसपर जयमल ने सारा वृत्तान्त उसे कह सुनाया।

कछवाहों और राठोड़ों में वैर-भाव था, जिससे जयमल के पिता (रूपसिंह) को यह बात बुरी लगी और उसने बादशाह से यह कहकर अपना बख़्तर मांगा कि वह मेरे पूर्वजों का है और शुभ तथा विजय का चिह्न है। बादशाह ने उसे कहा कि मैंने भी अपना शुभ और विजय देनेवाला बख़्तर तुम्हें दिया है, तो भी रूपसिंह को सन्तोष न हुआ और वह विना बख़्तर के ही लड़ने लगा। इसपर बादशाह भी अपना बख़्तर उतारकर युद्ध के लिये तैयार हुआ, जिससे कछवाहा भगवानदास ने बहुत समझा बुझाकर रूपसिंह को बख़्तर पहना दिया और बादशाह से यह कहा कि रूपसिंह ने भंग के नशे में इतनी बात कही थी अतएव उसे क्षमा की जाय।

(१) जसवन्तराव होल्कर सिन्धिया से हारकर मेवाड़ में आया और उसने नाथद्वारे को लूटना चाहा। इसकी सूचना वहां के गुसांई ने महाराणा भीमसिंह को दी। इसपर महाराणा ने अपने कई सरदारों को सेना सहित वहां भेजा। वे लोग गुसांई और मूर्तियों को लेकर चले, इतने में कोठारिये का रावत विजयसिंह भी उनकी सहायता के लिये जा पहुंचा। पहले वे लोग ऊनवास गांव में ठहरे। वहां से आगे कुछ भय न देखकर विजयसिंह अपने ठिकाने को रवाना हुआ। मार्ग में जसवन्तराव होल्कर की सेना ने उस बहादुर को घेरकर कहा 'शस्त्र और घोड़े दे जाओ'। शस्त्र और घोड़ों को देने में अपना अपमान समझकर उस वीर रावत ने अपने घोड़ों को मार डाला और स्वयं वीरतापूर्वक शत्रुओं पर टूट पड़ा। शत्रु सेना में हज़ारों सैनिक थे, जो विजयसिंह की बहादुरी पर शाबास! शाबास! बोलते और अपनी जान का ख़तरा समझते थे। अन्त में वह वीर अपने राजपूतों सहित वहीं मारा गया।

न्याय के लिए वर्तमान शैली की अदालतें पहले नहीं थीं और न विशेष लिखा पढ़ी होकर बड़ी बड़ी मिस्लें बनती थीं। कभी कभी राजा और विशेष-

न्याय और दंड

कर न्यायाधीश सब प्रकार के मुक़द्दमे फ़ैसल करते थे। न्याय मिताक्षरा टीकासहित याज्ञवल्क्यस्मृति या उनके मेवाड़ी भाषानुवाद के आधार पर होता था। गांवों के कितने ही मुक़द्दमे तो वहां की पंचायतों से फ़ैसल हो जाते थे और कुछ ज़िलों के हाकिम तै कर देते थे। संगीन जुर्म का फ़ैसला न्यायाधीश देता था। अलग अलग प्रकार के अपराधों के लिए अलग अलग तरह की सज़ाएं दी जाती थीं। शिरच्छेद, अंगच्छेद, देशनिर्वासन, कारागार, जुर्माना आदि सज़ाएं भी होती थीं। अदालती काम पहले आज के जैसा जटिल न था। मुसलमानों के संबन्ध के खास दावे उनकी शरह के अनुसार फ़ैसल होते थे।

राज्य की आय कई प्रकार से होती थी, जिनमें विशेष तो भूमिकर से होती थी। पहले भूमि की पैदाइश का छठा हिस्सा अनाज के रूप में लिया

आय-व्यय

जाता था। पीछे से कुछ अधिक लिया जाने लगा। दूसरी आय राज्य में आनेवाले और उससे बाहर जानेवाले माल पर का कर (चुंगी) था, जो नक़द रुपयों में लिया जाता था। आय का तीसरा ज़रिया चांदी, शीशे और लोहे आदि की खानें थीं। पहले जावर की चांदी की खान से राज्य को बड़ी आय होती थी। सरदारों से नियत ख़िराज (छटूंद) लिया जाता था। इनके अतिरिक्त दंड, पशुविक्रय और जुए का कर तथा कई अन्य छोटी बड़ी लागतों से भी आय होती थी। जंगल राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थी, परन्तु पशुओं के लिए गोचर भूमि छोड़ी जाती थी और पहाड़ी प्रदेश के भीलों के लिए घास-लकड़ी एकत्र करने और उनको बेचने का प्रतिबन्ध न था। राज्य की तरफ़ से बनवाये हुए मन्दिरों आदि के निर्वाह के लिए गांव, कुएं या भूमि दी जाती थी और उनका साधारण खर्च दुकानों, घरों, कुओं, वस्तुओं आदि पर के नियत कर से चलता था।

व्यय के मुख्य अंग राज्यकार्य, तालाब आदि सार्वजनिक कार्य, सेना-विभाग तथा धार्मिक संस्थाएं थे। पहले देनलेन में आज के समान रुपयों की विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी। कई सैनिकों, नौकरों आदि को वेतन में

विशेषरूप से अन्न और थोड़े से रुपये मिलते थे। साधारण जनता में भी बहुतसी वस्तुएं अन्न देकर या एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु ली जाती थी। रुपयों का उपयोग कम होता था।

कृषि और सिंचाई का प्रबन्ध

राज्य के अधिकांश लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि रहा, इसलिए कृषकों की सुविधा का पूरा ख़याल रखा जाता था। काली मिट्टी की ज़मीन की, जिसको 'माळ' कहते हैं, सिंचाई के लिए कुओं की ज़रूरत नहीं होती। उसमें बिना सिंचाई के ही दोनों फ़सलें हो जाती हैं, परन्तु अन्यत्र खेती की सिंचाई के लिए जगह जगह कुए बने हुए हैं, जिनपर के अरहट या चरसों के द्वारा खेतों में जल पहुंचाया जाता है। जगह जगह छोटे बड़े तालाब बने हुए हैं, जिनसे सिंचाई होती है और पानी कम होने पर उनके अन्दर के भागों में भी खेती होती है। जयसमुद्र, राजसमुद्र, उदयसागर, पीछोला, फ़तहसागर आदि बड़े बड़े तालाबों की नहरों से भी बहुत कुछ आबपाशी होती है। नदियों से भी नालियां काटकर कई जगह खेतों में जल पहुंचाया जाता है। पहाड़ों के ढालों आदि पर, जहां हल नहीं चलाये जा सकते, भील लोग जगह जगह लकड़ियें काटकर उनके ढेर लगाते और उनको जला देते हैं, जिसकी राख खाद का काम देती है। फिर वे लोग वहां की ज़मीन को खोदकर उसमें मक्का वग़ैरह अन्न बोते हैं। ऐसी खेती को वालरा (वल्लर) कहते हैं। इस प्रकार की खेती प्राचीन काल से होती आई है। पहले अफ़ीम की खेती से किसानों की बड़ी आय होती थी, परन्तु पिछले वर्षों उसके बन्द हो जाने से उनकी वह आय कम हो गई।

आर्थिक स्थिति

पहले देश की उत्पन्न वस्तुओं से ही विशेषकर जनसाधारण का काम चल जाता था, जिससे लोग सन्तुष्ट रहते और उनकी आर्थिक स्थिति साधारणतया अच्छी रहती थी। अलबत्ता क़हतसाली के वर्षों में बाहर से खाद्य-पदार्थ लाने के साधन कम होने के कारण बहुत से ग़रीब लोग मर जाते थे। मुसलमानों और मरहटों के आक्रमण के समय प्रजा के लुट जाने से देश का अधिकांश भाग ऊजड़ और निर्धन सा हो गया। पीछे शांति के समय देश की दशा सुधरती गई, किन्तु जब से भड़कीली और विशेष सुन्दर चीज़ें बाहर से आने लगीं और लोगों की रुचि उनकी तरफ़ बढ़ी तब से बहुतसे

देशी व्यवसाय नष्ट हो गये । व्यापार के मार्ग की सहूलियत होने के कारण देश की उत्पन्न वस्तुएं बाहर जाने लगीं, जिससे बाहर से द्रव्य तो आने लगा, परन्तु महँगाई बढ़ती गई, जिससे लोगों की स्थिति पहले जैसी न रही, तो भी लोग सामान्यतः संतुष्ट हैं ।

प्राचीनकाल में मेवाड़ में शिल्प-कला बहुत ही उन्नत दशा में थी। बाड़ोली, मैनाल, तिलिस्मा, बीजोल्यां, धोड़, नागदा, चित्तोड़ आदि के कई

शिल्पकला

मन्दिरों में तक्षणकला के अपूर्व नमूने मिलते हैं। बाड़ोली के मंदिरों की, जो आबू (देलवाड़ा) के जैनमंदिरों से भी प्राचीन हैं, शिल्पकला के विषय में कर्नल टॉड ने लिखा है "उनकी विचित्र और भव्य बनावट का यथावत् वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। यहां मानो हुनर का ख़ज़ाना खाली कर दिया गया है। उसके स्तम्भ, छतें और शिखर का एक एक पत्थर छोटे से मंदिर का दृश्य बतलाता है। प्रत्येक स्तम्भ पर खुदाई का काम इतना सुन्दर और बारीकी के साथ किया गया है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। यह मंदिर सैकड़ों वर्षों का पुराना होने पर भी अबतक अच्छी स्थिति में खड़ा है"। इसी तरह बहुतसे अन्य स्थानों के मंदिरों में शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने पाये जाते हैं। वि० सं० ७१८ के राजा अपराजित के समय के कुटिल लिपि के शिलालेख के छोटे अक्षरों और स्वरों की मात्राओं को ऐसी सुन्दरता से खोदा है कि उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। ऐसा ही कई अन्य शिलालेखों के बारे में भी कहा जा सकता है। अनेक स्थानों से प्राप्त कितनी एक पाषाण और धातु की प्राचीन मूर्त्तियां भी तक्षणकला के उत्तम नमूने हैं। मुसलमानों के समय से राजमहलों, मन्दिरों और सम्पन्न लोगों के भवनों में मुसलमानी (सारसैनिक्) शैली का मिश्रण होता गया और अब उनमें अंग्रेज़ी शैली का भी मिश्रण होने लगा है।

मेवाड़ में वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के पूर्व का कोई चित्र देखने में नहीं आया। उस काल से पूर्व के राजाओं आदि के कई चित्र मिलते हैं, जो

चित्रकला

वास्तव में समकालीन नहीं, किन्तु पीछे के बने हुए हैं। राज्य में और सरदारों तथा सम्पन्न पुरुषों के यहां चित्रों के संग्रह मिलते हैं, जिनमें अनेक देवी-देवताओं, राजाओं, सरदारों, वीर एवं धनाढ्य पुरुषों, धर्माचार्यों,

राजाओं के दरबारों, सवारियों, तुलादानों, राजमहलों, जलाशयों, उपवनों, रण-खेत की लड़ाइयों, शिकार के दृश्यों, पर्वतीय छटाओं, महाभारत और रामायण के कथा-प्रसंगों, साहित्य शास्त्र, नायक-नायिकाओं, रसों, ऋतुओं, राग-रागिनियों आदि के कई सुन्दर चित्र पाये जाते हैं। ये चित्र बहुधा मोटे काग़ज़ों पर मिलते हैं। ऐसे संग्रह छूटे पत्रों की हस्तलिखित पुस्तकों के समान ऊपर नीचे लकड़ी की पाटी रखकर कपड़े के वेष्टनों से बंधे रहते हैं, जिनको 'जोतदान' कहते हैं। कई राजाओं आदि के पुराने पूरे कद के चित्र भी मिलते हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त कामशास्त्र या नायक नायिका भेद के लिखित ग्रन्थों, गीतगोविन्द, भागवत आदि धार्मिक पुस्तकों, शृंगाररस आदि की वार्ताओं एवं धार्मिक कथाओं की हस्तलिखित पुस्तकों में भी प्रसंग प्रसंग पर भिन्न भिन्न विषयों के भावसूचक सुन्दर चित्र भी मिलते हैं, जिनमें कितने ही चित्रकला के सुन्दर नमूने हैं। नाथद्वारा के वर्तमान टीकायत गोस्वामी महाराज गोवर्धनलालजी ने एक लाख से अधिक रुपये व्यय कर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत को नाथद्वारा के प्रसिद्ध चित्रकारों से सचित्र तैयार करवाया है। यह अमूल्य ग्रन्थ भी चित्रकला की दृष्टि से देखने योग्य है। वर्तमान समय में नाथद्वारा और उदयपुर दोनों चित्रकला के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं, जिनमें नाथद्वारा उदयपुर से इस विषय में बढ़कर है। राजाओं के महलों, गृहस्थों की हवेलियों आदि में दीवारों पर तथा कई मंदिरों की छतों और गुंबज़ों में समय समय के भिन्न भिन्न चित्राङ्कण देखने में आये हैं।

संगीत

संगीत में गीत (गाना), वाद्य (बजाना) और नाट्य (नाचना) का समावेश होता है। मेवाड़ के राजाओं के यहां गाने और बजाने की चर्चा ठेठ से चली आती है और उसके लिये अच्छे अच्छे गवैये नौकर रहते हैं। नृत्य नाटकों में होता था और स्त्रियां भी नाचती थीं। भारत में राजकुमारियों को संगीत की शिक्षा देने के लिये पुराने उदाहरण मिलते हैं। शिव का तांडव नृत्य तो प्रसिद्ध ही है।

महाराणा कुंभा संगीत में बड़ा निपुण था। उसने संगीतराज और संगीतमीमांसा नाम के दो संगीत के ग्रन्थों की रचना की थी और उसकी बनाई हुई जयदेव के संगीत के ग्रन्थ गीतगोविन्द और शारङ्गदेव के संगीतरत्नाकर

की टीकाएं उपलब्ध हुई हैं। एकलिङ्गमाहात्म्य के अन्त में अलग अलग देवताओं की स्तुतियों का एक अध्याय है, जिसकी रचना महाराणा कुंभा ने अलग अलग रागों में की थी और प्रत्येक स्तुति में उस(कुंभा)का नाम आता है। इससे स्पष्ट है कि कुंभा संगीत का अच्छा ज्ञाता और प्रेमी था। महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के ज्येष्ठ कुंवर भोजराज की स्त्री मीरांबाई संगीत में बड़ी निपुण थी। उसके रचे हुए भजन व पद अबतक भारत में प्रसिद्ध हैं, इतना ही नहीं, किन्तु उसका बनाया हुआ 'मीरांबाई का मलार' नामक राग भी अबतक प्रचलित है। मेवाड़ में संगीतवेत्ताओं का सदा आदर रहा और कई अच्छे अच्छे गवैये राज्य में नौकर रहते चले आ रहे हैं। प्रसंग प्रसंग पर राजा लोग उनका गान श्रवण कर अपना दिल बहलाव करते आ रहे हैं। बड़े बड़े सरदारों के यहां भी ऐसा ही होता आ रहा है।

शिव का ताण्डव नृत्य उद्धत माना गया, परन्तु पार्वती का मधुर एवं सुकुमार नृत्य 'लास्य' नाम से प्रसिद्ध रहा। पर्दे की प्रथा के साथ साथ स्त्रियों में नृत्यकला की अवनति होती गई, परन्तु राजाओं की राणियों से लगाकर साधारण लोगों की स्त्रियां तक विवाह आदि शुभ अवसरों पर अपने अपने स्थानों में नाचती हैं, किन्तु उनका नृत्य प्राचीन शैली के अनुसार नहीं। अब तो उसकी प्राचिन शैली दक्षिण के तंजोर आदि स्थानों में तथा कहीं कहीं अन्यत्र ही पाई जाती है।

परिशिष्ट-संख्या १

गुहिल से लगाकर वर्तमान समय तक की मेवाड़ के राजाओं की वंशावली

१ गुहिल (गुहदत्त)
२ भोज
३ महेन्द्र
४ नाग (नागादित्य)
५ शीलादित्य (शील) वि० सं० ७०३
६ अपराजित वि० सं० ७१८
७ महेन्द्र (दूसरा)
८ कालभोज (बापा) वि० सं० ७६१, ८१०
९ खुम्माण वि० सं० ८१०
१० मत्तट
११ भर्तृभट (भर्तृपट्ट)
१२ सिंह
१३ खुंमाण (दूसरा)
१४ महायक
१५ खुंमाण (तीसरा)
१६ भर्तृभट (भर्तृपट्ट, दूसरा) वि० सं० ९९९, १०००
१७ अल्लट वि० सं० १००८, १०१०
१८ नरवाहन वि० सं० १०२८
१९ शालिवाहन
२० शक्तिकुमार वि० सं० १०३४
२१ अंबाप्रसाद
२२ शुचिवर्मा
२३ नरवर्मा
२४ कीर्तिवर्मा

२५ योगराज
२६ वैरट
२७ हंसपाल
२८ वैरिसिंह
२६ विजयसिंह वि० सं० ११६४, ११७३
३० अरिसिंह
३१ चोड़सिंह
३२ विक्रमसिंह
३३ रणसिंह (कर्णसिंह)

मेवाड़ की रावल शाखा | **सीसोदे की राणा शाखा**

मेवाड़ की रावल शाखा

३४ क्षेमसिंह

३५ सामन्तसिंह वि० सं० १२२८
(डूंगरपुर की शाखा)

३६ कुमारसिंह
३७ मथनसिंह
३८ पद्मसिंह
३६ जैत्रसिंह वि० सं० १२७०, १३०६.
४० तेजसिंह वि० सं० १३१७, १३२४.
४१ समरसिंह वि० सं० १३३०, १३५८.
४२ रत्नसिंह वि० सं० १३५६, १३६०.

सीसोदे की राणा शाखा

१ माहप

२ राहप
३ नरपति
४ दिनकर
५ जसकरण
६ नागपाल
७ पूर्णपाल
८ पृथ्वीमल्ल
६ भुवनसिंह
१० भीमसिंह
११ जयसिंह
१२ लक्ष्मणसिंह वि० सं० १३६०

अरिसिंह
४३ हंमीरसिंह

१३ अजयसिंह
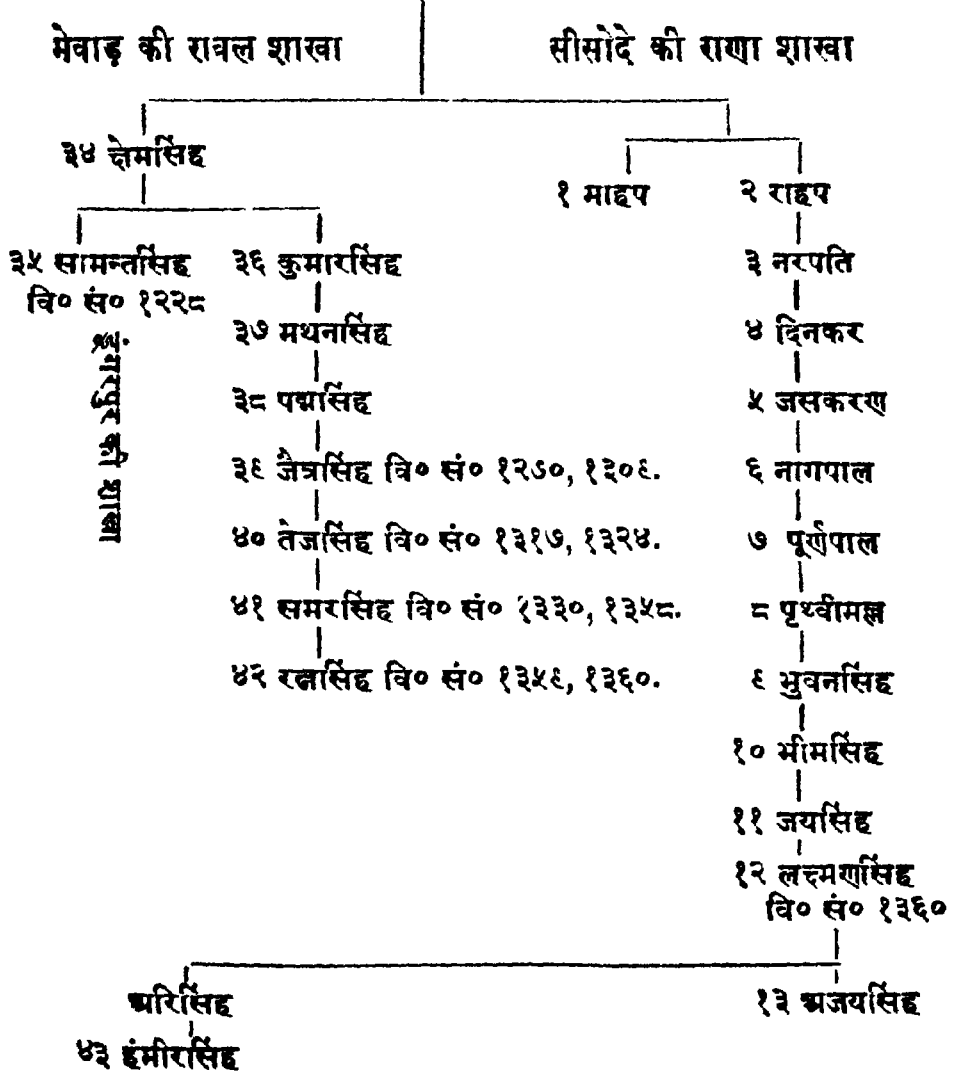
४३ महाराणा हंमीरसिंह वि० सं० १३८३(?)–१४२१ (?)
४४ „ क्षेत्रसिंह वि० सं० १४२१(?)-१४३९
४५ „ लक्षसिंह वि० सं० १४३९–१४७८ (?)
४६ „ मोकल वि० सं० १४७८(?)–१४९०
४७ „ कुंभकर्ण (कुंभा) वि० सं० १४९०–१५२५
४८ „ उदयसिंह (ऊदा) वि० सं० १५२५–१५३०
४९ „ रायमल वि० सं० १५३०–१५६६
५० „ संग्रामसिंह (सांगा) वि० सं० १५६६–१५८४
५१ „ रत्नसिंह (दूसरा) वि० सं० १५८४–१५८८
५२ „ विक्रमादित्य वि० सं० १५८८–१५९३
वणवीर वि० सं० १५९३–९४
५३ „ उदयसिंह (दूसरा) वि० सं० १५९४–१६२८
५४ „ प्रतापसिंह वि० सं० १६२८–१६५३
५५ „ अमरसिंह वि० सं० १६५३–१६७६
५६ „ कर्णसिंह वि० सं० १६७६–१६८४
५७ „ जगत्सिंह वि० सं० १६८४–१७०९
५८ „ राजसिंह वि० सं० १७०९–१७३७
५९ „ जयसिंह वि० सं० १७३७-१७५५
६० „ अमरसिंह (दूसरा) वि० सं० १७५५–१७६७
६१ „ संग्रामसिंह(दूसरा) वि० सं० १७६७–१७९०
६२ „ जगत्सिंह (दूसरा) वि० सं० १७९०–१८०८
६३ „ प्रतापसिंह (दूसरा) वि० सं० १८०८–१८१०
६४ „ राजसिंह (दूसरा) वि० सं० १८१०–१८१७
६५ „ अरिसिंह (दूसरा) वि० सं० १८१७–१८२९
६६ „ हम्मीरसिंह (दूसरा) वि० सं० १८२९–१८३४
६७ „ भीमसिंह वि० सं० १८३४–१८८५
६८ „ जवानसिंह वि० सं० १८८५–१८९५
६९ „ सरदारसिंह वि० सं० १८९५–१८९९

७० महाराणा सरूपसिंह वि० सं० १८९६-१९१८
७१ ,, शंभुसिंह वि० सं० १९१८-१९३१
७२ ,, सज्जनसिंह वि० सं० १९३१-१९४१
७३ ,, फ़तहसिंह वि० सं० १९४१-१९८७
७४ ,, सर भूपालसिंहजी वि० सं० १९८७ (विद्यमान)

परिशिष्ट-संख्या २

गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंश

अनेक पुरातत्ववेत्ताओं और पुरातत्व विभागों के प्रयत्न से अब तक हज़ारों शिलालेख प्रसिद्धि में आये हैं, किन्तु गौरवंश का कोई शिलालेख नहीं मिला था, जिससे उस वंश का अस्तित्व अंधकार में ही रहा। महाराणा रायमल के समय के वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिङ्गजी के मंदिर के दक्षिण द्वार के सामनेवाली बड़ी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान ग़यासशाह ख़िलजी के बीच की लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखा है "इस लड़ाई में एक गौर वीर प्रतिदिन बहुत से शकों (मुसलमानों) को मारता था, इसलिये क़िले के उस शृंग (बुर्ज़) का नाम गौरशृंग (गौराबुर्ज़) रखा गया। फिर रायमल ने उसी शृंग पर चार और गौर योद्धाओं को नियत किया। बड़ी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौर वीर मुसलमानों के रुधिर-स्पर्श से अपने को अपवित्र हुआ जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगंगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1]" अर्थात् मारा गया। इस अवतरण से

---

(१) तन्वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः ॥ ६८ ॥
कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेमुष्मिन् प्रत्यहं संजहार।
तस्मादेतन्नाम कामं बभार प्राकारांशश्चित्रकूटैकशृंगं ॥ ६९ ॥

यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वंशसूचक है न कि व्यक्तिसूचक।

काव्य की चार रीतियों में एक गौडी, मद्यों में गौडी (गुड़ से बना हुआ मद्य), गौडवध (काव्य), गौडपाद (आचार्य), गौड (देश) आदि शब्दों से संस्कृत के विद्वान् भलीभांति परिचित थे। ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करे यह संभव नहीं। गौर क्षत्रिय-वंश का कोई लेख न मिलने और उस वंश का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तान्त लिखते समय मुझे लाचार गौर क्षत्रियों को गौड क्षत्रिय अनुमान करना पड़ा, जो अब मुझे पलटना पड़ता है।

ई० स० १९३० (वि० सं० १९८७) में मुझे एक मित्र-द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी से दो मील दूरी पर एक पहाड़ी पर के भमर माता के मंदिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढ़ा नहीं जाता। सादड़ी का ज़िला पहले दक्षिणी ब्राह्मणों की जागीर में रहा था, इसलिये उस लेख का मोड़ी लिपि में होना मैंने अनुमान किया, परन्तु अनुसंधान करने पर यह उत्तर मिला कि उसकी लिपि मोड़ी नहीं, किन्तु उड़िया है और उसकी एक पंक्ति सीधी तो दूसरी फ़ारसी के समान उलटी अर्थात् दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी हुई है। इस कल्पित बात पर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि कोई आर्य लिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर को कभी नहीं लिखी गई। इस वास्ते मैंने स्वयं वहां जाकर उस लेख को पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि वह लेख उस समय की

योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोच्चान्
गौराभिधान् समधिशृंगमसावचर्पीत्।
श्रीराजमल्लनृपतिः प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वसंहरणचंडभुजानिवाद्रौ ॥ ७० ॥

मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यो योधो गौरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तत्।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छ्कविगलदसृक्पूरसंपर्कदोषं
निःशेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ॥ ७१ ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स्, पृष्ठ १२१.

ब्राह्मी लिपि का है और भाषा उसकी संस्कृत है। वह गौरवंश के क्षत्रिय राजाओं का है और एक काली शिला पर खुदा हुआ है। उसमें १७ पंक्तियां हैं, जिनमें १६ पंक्तियां श्लोकबद्ध हैं और अन्तिम पंक्ति गद्य की है। भमर माता का मंदिर बहुत प्राचीन होने से उसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ पाया जाता है और निजमंदिर (गर्भगृह) का नीचे का थोड़ासा हिस्सा ही प्राचीन रूप में बचने पाया है। मंदिर के टूट जाने पर यह शिलालेख अरक्षित दशा में पड़ा रहा और लोगों ने उसपर मसाला पीसा, जिससे उसका लगभग एक चौथाई अंश नष्ट हो गया है, तो भी जो अंश बचने पाया है वह भी बड़े महत्त्व का है। पीछे से उक्त मंदिर के जीर्णोद्धार के समय वह शिलालेख एक ताक़ में लगाया गया, जहां मेरे देखने में आया। बचे हुए अंश का आशय इस प्रकार है—

प्रारम्भ के दो श्लोक देवी के वर्णन के हैं। आगे गौरवंश के क्षत्रिय राजाओं का वंशक्रम दिया हुआ है। उक्त वंश में राजा धान्यसोम अभिषिक्त हुआ। उसके पीछे राज्यवर्द्धन हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र हुआ, जिसने शत्रुओं के राष्ट्रों को मथ डाला। उसका पुत्र यशगुप्त हुआ। वह बड़ा प्रतापी, दानी, यज्ञकर्ता और शत्रुओं का विजेता था। उस गौर महाराज ने वि० सं० ५४७ माघ सुदि १० (ई० स० ४६१ जनवरी) को पहाड़ पर अपने माता-पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मंदिर बनवाया[1]। इस लेख से निश्चित है कि गौर

(१) *तस्याः प्रणम्य प्रकरोम्यहमेव ···जस्रं*

[कीर्ति शु]भ्रां गुणगणौघम[यीं नृपाणाम्] [३]

············कुलो[द्भ]व व[ङ्श]गौराः

क्षात्रे प[दे] सतत दीक्षित···शौंडाः ।

·························

···धान्यसोम इति क्षत्रगणस्य मध्ये [४]

·························

············किल राज्यजितप्रतापो

यो राज्यवर्द्धण(न) गुणैः कृतनामधेयः

··························· [५]

नामक क्षत्रिय वंश वि० सं० की ६ ठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आसपास के प्रदेश पर उसके वंशवालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बड़ी वीरता से लड़े थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। वि० सं० की १४ वीं शताब्दी में भी गौरवंशी राजपूत मेवाड़ के राजाओं की सेवा में थे। चित्तोड़ के क़िले पर पद्मिनी के महलों से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुंबज़दार मकान हैं, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते हैं। अलाउद्दीन ख़िलजी के साथ की चित्तोड़ के महारावल रत्नसिंह की लड़ाई में गोरा और बादल बड़ी वीरता से लड़ते हुए मारे गये ऐसा पिछले ग्रन्थों में लिखा मिलता है। हि० स० ६४७ (वि० सं० १५६७=ई० स० १५४०) में मलिक महम्मद जायसी ने पद्मावत नाम

....

जातः सुतो करिकरायतदीर्घबाहुः ।
यश्चारिराष्ट्रमथनोद्यतदीप्तचक्रः
नाम्ना स राष्ट्र इति प्रोद्धतपुन्य(ण्य)कीर्तिः [६]

सोयम् यशोभरणभूषितसर्वगात्रः
प्रोत्फुल्लपद्म···तायतचारुनेत्रः ।
दक्षो दयालुरिह शासितशत्रुपक्षः
धर्मो शासति····यशगुप्त इति क्षितीन्दुः [८]

तेनेयं भूतधात्री क्रतुभिरिह चिता[पूर्व]शृंगेव भाति
प्रासादैरद्रितुङ्गैः शशिकरवपुषैः स्थापितैः भूषिताद्य
नानादानेन्दुशुभ्रैर्द्विजवरभवनैर्येन लक्ष्मीर्विभक्ता
········ स्थितयशवपुषा श्रीमहाराजगौरः [११]

यातेषु पंचसु शतेष्वथ वत्सराणाम्
द्वे विंशती समधिकेषु सप्तकेषु
माघस्य शुक्लदिवसे सगमत्प्रतिष्ठां
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१३]

मूललेख की छाप से

की कथा बनाई तथा वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनों पुस्तकों में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परन्तु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी हैं। इतने दीर्घकाल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नहीं, किन्तु एक ही पुरुष का सूचक नाम होना संभव है, जैसा कि राठोड़ दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि। गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौर(गोरा)वंश के बादल नामक पुरुष से हो। वंशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से ये दो नाम अलग अलग मान लिये हों।

परिशिष्ट-संख्या ३

पद्मावत का सिंहलद्वीप

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की बड़ी मनोरंजक कथा लिखी, जिसका आधार तो ऐतिहासिक घटना है, किन्तु ऊपर की भित्ति अपनी रचना को रोचक बनाने के लिए विशेषकर कल्पना से खड़ी की गई है। उसमें लिखा है "सिंहलद्वीप (सिंहल, लंका) में गंध्रवसेन (गंधर्वसेन) नामक राजा था। उसकी पटरानी चंपावती से पद्मावती (पद्मिनी) नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उसके पास हीरामन नाम का एक सुन्दर और चतुर तोता था। एक दिन वह पिंजरे से उड़ गया और एक बहेलिये-द्वारा पकड़ा जाकर एक ब्राह्मण को बेचा गया। उस(ब्राह्मण)ने उसको चित्तोड़ के राजा रतनसेन (रत्नसिंह) को एक लाख रुपये में बेचा। रतनसेन की राणी नागमती ने एक दिन शृंगार कर तोते से पूछा, क्या मेरे जैसी सुन्दरी जगत् में कोई है ? इसपर तोते ने उत्तर दिया कि जिस सरोवर में हंस नहीं आया वहां बगुला भी हंस कहलाता है। रतनसेन तोते के मुख से पद्मिनी के रूप, गुण

आदि की प्रशंसा सुनकर उसपर मुग्ध हो गया और योगी बनकर तोते सहित सिंहल को चला। अनेक राजकुमार भी उसके चेलों के रूप में उसके साथ हो लिए। कई संकट सहता हुआ राजा सिंहल में पहुंचा। तोते ने पद्मावती के पास जाकर रतनसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की प्रशंसा कर कहा कि तेरे योग्य वर तो वही है और वह तेरे प्रेम से मुग्ध होकर यहां आ पहुंचा है। वसंत पंचमी के दिन वह बनठनकर उस मंदिर में गई, जहां रतनसेन ठहरा हुआ था। वहां वे दोनों एक दूसरे को देखते ही परस्पर प्रेम-बद्ध हो गये, जिससे पद्मावती ने उसी से विवाह करना ठान लिया। अन्त में गंधर्वसेन ने उसके वंश आदि का हाल जानने पर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया और रतनसेन बड़े आनन्द के साथ कुछ समय तक वहीं रहा। उधर चित्तोड़ में उसकी वियोगिनी राणी नागमती ने अपने पति की राह देखते हुए एक वर्ष बीत जाने पर एक पक्षी के द्वारा अपने दुःख का सन्देश राजा के पास पहुंचाया। इसपर वह वहां से बिदा होकर अपनी राणी सहित चला और समुद्र के भयंकर तूफ़ान आदि आपत्तियां सहता हुआ अपनी राजधानी को लौटा। राघवचेतन नाम के एक ब्राह्मण ने पद्मिनी के रूप की तारीफ़ दिल्ली जाकर अलाउद्दीन से की, जिसपर वह (अलाउद्दीन) चित्तोड़ पर चढ़ आया। गोरा, बादल आदि अनेक सामंतों सहित रत्नसिंह मारा गया और पद्मिनी उसके साथ सती हुई"।

इस कथा में सिंहलद्वीप का समुद्र के बीच होना बतलाया है और उसी को लंका भी कहा है। अब हमें यह निश्चय करना आवश्यक है कि पद्मावत का सिंहलद्वीप वास्तव में समुद्रस्थित लंका है अथवा जायसी ने भ्रम में पड़कर किसी अन्य स्थान को समुद्रस्थित लंका मानकर अपने वर्णन को मनोहर बनाने का उद्योग किया है। इसका निश्चय करने के पूर्व हमें चित्तोड़ के स्वामी रत्नसिंह के राजत्वकाल की ओर दृष्टि डालना आवश्यक है। रत्नसिंह चित्तोड़ के रावल समरसिंह का पुत्र था। रावल समरसिंह के समय के ८ शिलालेख अब तक मिले हैं, जिनमें सबसे पहला वि० सं० १३३० कार्तिक सुदि १ का चीरवे गांव का और अन्तिम वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० का चित्तोड़ का है। इन शिलालेखों से निश्चित है कि वि० सं० १३५८ माघ सुदि

१० तक तो समरसिंह जीवित था। रत्नसिंह के समय का केवल एक शिलालेख वि० सं० १३५६ माघ सुदि ५ बुधवार का उदयपुर-चित्तोड़-रेलवे के कांकरोली रोड स्टेशन से ८ मील दूर दरीबा स्थान के माता के मंदिर के स्तम्भ पर खुदा हुआ है। इन लेखों से निश्चित है कि समरसिंह की मृत्यु और रत्नसिंह का राज्याभिषेक वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० और वि० सं० १३५६ माघ सुदि ५ के बीच किसी समय होना चाहिये।

रत्नसिंह को राज्य करते हुए एक वर्ष भी नहीं होने पाया था कि पद्मिनी के वास्ते चित्तोड़ की चढ़ाई के लिए सुलतान अलाउद्दीन ने सोमवार ता० ८ जमादि उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० सं० १३५६ माघ सुदि ६=ता० २८ जनवरी ई० स० १३०३) को प्रस्थान किया, छः महीने के करीब लड़ाई होती रही, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदि १४=ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को अलाउद्दीन का चित्तोड़ पर अधिकार हो गया।

रत्नसिंह लगभग एक वर्ष ही चित्तोड़ का राजा रहा उसमें भी अंतिम छः मास तो अलाउद्दीन के साथ लड़ता रहा। ऐसी स्थिति में उसका सिंहल (लंका) जाना, वहां एक वर्ष तक रहना और पद्मिनी को लेकर चित्तोड़ लौटना सर्वथा असंभव है अतएव जायसी का सिंहलद्वीप (सिंहल) लंका का सूचक नहीं हो सकता।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित जायसी ग्रन्थावली (पद्मावत और अखरावट) के विद्वान् सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी भूमिका में लिखा है "पद्मिनी क्या सचमुच सिंहल की थी? पद्मिनी सिंहल की हो नहीं सकती। यदि सिंहल नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा[1]"। उक्त विद्वान् का यह कथन बहुत ठीक है और उसका पता लगाना आवश्यक है। उक्त भूमिका में गोरा बादल के विषय में यह भी लिखा है कि गोरा पद्मिनी का चाचा लगता था और बादल गोरा का भतीजा था[2]। कर्नल टॉड ने गोरा और बादल को सीलोन (सिंहल) के राजा के कुटुम्बी

(१) जायसी ग्रन्थावली; काशी नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण, भूमिका, पृ० २६।
(२) वही; पृष्ठ २५।

बतलाया है और गोरा को पद्मिनी का चाचा तथा बादल को गोरा का भतीजा लिखा है[1]। ऐसा ही मेवाड़ की ख्यातों में भी लिखा मिलता है।

गौर (गोरा) नाम का वंश वि० सं० ५४७ से वि० सं० १५४५ तक मेवाड़ में विद्यमान था, जैसा कि परिशिष्ट-संख्या २ में बतलाया जा चुका है। गोरा बादल दो नाम नहीं किन्तु राठोड़ दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि के समान एक नाम होना संभव है, जिसका पहला अंश उसके वंश का सूचक और दूसरा उसका व्यक्तिगत नाम है। पिछले लेखकों ने प्राचीन इतिहास के अन्धकार एवं गौरवंश का नाम भूल जाने के कारण गोरा और बादल दो नाम बना लिये। चित्तोड़ से क़रीब ४० मील पूर्व में सिंगोली नाम का प्राचीन स्थान है, जिसके विस्तृत खंडहर और प्राचीन क़िले के चिह्न अबतक विद्यमान हैं, अतएव पद्मिनी का पिता सिंगोली का स्वामी हो। सिंगोली और सिंहल (सिंहलद्वीप) नाम परस्पर मिलते हुए होने के कारण पद्मावत के रचयिता ने भ्रम में पड़कर सिंगोली को सिंहल (सिंहलद्वीप) मान लिया हो, यह संभव है। रत्नसिंह के राज्य करने का जो अल्प समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता है कि उसका विवाह सिंहलद्वीप अर्थात् लंका के राजा की पुत्री से नहीं, किन्तु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ हो।

---

(१) टॉड राजस्थान जिल्द १; पृ० २८२ (कलकत्ता सं०)।

परिशिष्ट-संख्या ४

उदयपुर राज्य के इतिहास का कालक्रम

वि० सं०	ई० स०	
(६२३)[1]	(५६६)	राजा गुहिल का समय।
(६४३)	(५८६)	,, भोज का समय।
(६६३)	(६०६)	,, महेन्द्र का समय।
(६८३)	(६२६)	,, नाग का समय।
७०३	६४६	,, शीलादित्य (शील) का सामोली का शिलालेख।
७१८	६६१	,, अपराजित का कुंडा का शिलालेख।
(७४५)	(६८८)	,, महेन्द्र (दूसरे) का समय।
७६१	७३४	,, कालभोज (बापा) का चित्तोड़ लेना।
८१०	७५३	,, ,, ,, का संन्यास लेना।
,,	,,	,, खुम्माण का राज्य पाना।
(८३०)	(७७३)	,, मत्तट का समय।
(८५०)	(७९३)	,, भर्तृभट (भर्तृपट्ट) का समय।
(८७०)	(८१३)	,, सिंह का समय।
(८८५)	(८२८)	,, खुम्माण (दूसरे) का समय।
(९१०)	(८५३)	,, महायक का समय।
(९३५)	(८७८)	,, खुम्माण (तीसरे) का समय।
(९६०)	(९०३)	,, भर्तृभट (दूसरे) का समय।
९९९	९४२	,, ,, के समय का प्रतापगढ़ का शिलालेख।
१०००	९४३	,, ,, के समय का आहाड़ का शिलालेख।
१००८ } १०१० }	९५१ } ९५३ }	,, अल्लट के समय का सारणेश्वर के मंदिर का शिलालेख।
१०२८	९७१	,, नरवाहन के समय का एकलिंगजी का शिलालेख।
(१०३०)	(९७३)	,, शालिवाहन का समय।

(१) ( ) इस चिह्न के भीतर दिये हुए संवत् आनुमानिक हैं, निश्चित नहीं।

वि० सं०	ई० स०	
१०३४	९७७	राजा शक्तिकुमार के समय का आहाड़ (आटपुर) का शिलालेख।
(१०५०)	(९९३)	,, अंबाप्रसाद का समय।
(१०६४)	(१००७)	,, शुचिवर्मा का समय।
(१०७८)	(१०२१)	,, नरवर्मा का समय।
(१०९२)	(१०३५)	,, कीर्तिवर्मा का समय।
(११०८)	(१०५१)	,, योगराज का समय।
(११२५)	(१०६८)	,, वैरट का समय।
(११४५)	(१०८८)	,, हंसपाल का समय।
(११६०)	(११०३)	,, वैरिसिंह का समय।
(११६४)	(११०७)	,, विजयसिंह का कद्माल का दानपत्र।
११७३	१११६	,, ,, का पालड़ी का शिलालेख।
(११८३)	(११२७)	,, अरिसिंह का समय।
(११९५)	(११३८)	,, चोड़सिंह का समय।
(१२०५)	(११४८)	,, विक्रमसिंह का समय।
(१२१५)	(११५८)	रावल रणसिंह (कर्णसिंह) का समय।
(१२२५)	(११६८)	,, क्षेमसिंह का समय।
१२२८	११७२	,, सामन्तसिंह के समय का जगत का शिलालेख।
(१२३६)	(११७९)	,, कुमारसिंह का समय।
(१२४८)	(११९१)	,, मथनसिंह का समय।
(१२६८)	(१२११)	,, पद्मसिंह का समय।
१२७०	१२१३	,, जैत्रसिंह के समय का एकलिंगजी का शिलालेख।
१२७९	१२२२	,, ,, ,, नांदेसमा का शिलालेख।
१२८४	१२२८	,, ,, ,, 'ओघनिर्युक्ति' का लिखा जाना।
१३०९	१२५३	,, ,, ,, 'पाक्षिकवृत्ति' का लिखा जाना।
१३१७	१२६१	,, तेजसिंह के समय 'श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र-चूर्णि' का लिखा जाना।

वि० सं०	ई० स०	
१३२२	१२६५	रावल तेजसिंह के समय का घाघसे का शिलालेख।
१३२४	१२६७	,, ,, ,, गंभीरी नदी के पुल का शिलालेख।
१३३०	१२७३	,, समरसिंह के समय का चीरवे का शिलालेख।
१३३१	१२७४	,, ,, ,, चित्तोड़ का शिलालेख।
१३३५	१२७८	,, ,, ,, ,, ,,
१३४२	१२८५	,, ,, ,, आबू का शिलालेख।
१३४४	१२८७	,, ,, ,, चित्तोड़ का शिलालेख।
१३५६	१२९९	,, ,, ,, दरीबे का शिलालेख।
१३५६	१२९९	उलगखां का मेवाड़ में होकर जाना।
१३५८	१३०२	रावल समरसिंह के समय का चित्तोड़ का शिलालेख।
१३५९	१३०३	,, रत्नसिंह के समय का दरीबे का शिलालेख।
१३५९	१३०३	अलाउद्दीन का चित्तोड़ के लिए दिल्ली से प्रस्थान करना।
१३६०	१३०३	रावल रत्नसिंह का मारा जाना।
१३६०	१३०३	ख़िज़रखां का चित्तोड़ का शासक होना।
१३६७	१३१०	अलाउद्दीन के समय का चित्तोड़ का शिलालेख।
(१३७०)	(१३१३)	ख़िज़रखां का चित्तोड़ छोड़ना।
(१३७१)	(१३१४)	मालदेव सोनगरे (चौहान) को चित्तोड़ मिलना।
(१३८३)	(१३२६)	महाराणा हंमीरसिंह का चित्तोड़ लेना।
१३९८	१३४१	,, ,, का राव देवा को बूंदी दिलाना।
१४२३	१३६६	,, क्षेत्रसिंह के समय का गोगूंदे का शिलालेख।
१४३६	१३७९	,, ,, का अमीशाह को जीतना।
१४३९	१३८२	,, लक्षसिंह की गद्दीनशीनी।
१४६२	१४०६	,, ,, के समय का जावर का ताम्रपत्र।
१४६८	१४११	,, ,, ,, आबू का शिलालेख।
१४७५	१४१८	,, ,, ,, कोटसोलंकियान का शिलालेख।

वि० सं०	ई० स०	
१४७८	१४२१	महाराणा मोकल के समय का जावर का शिलालेख।
१४८५	१४२८	,, ,, ,, चित्तोड़ का शिलालेख।
१४८८	१४३१	,, ,, की सुलतान अहमदशाह पर चढ़ाई।

महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा)

१४९०	१४३३	महाराणा कुंभा का राज्य पाना।
१४९१	१४३४	,, ,, के समय का देलवाड़े का शिलालेख।
१४९४	१४३७	,, ,, के समय का नांदिया का ताम्रपत्र।
,,	,,	,, ,, के समय का नागदे का शिलालेख।
,,	,,	,, ,, की सुलतान महमूद के साथ की लड़ाई।
१४९५	१४३८	चूंडा का मेवाड़ में आना और रणमल का मारा जाना।
१४९६	१४३९	महाराणा कुंभा के समय का राणपुर का शिलालेख।
१५०५	१४४९	महाराणा कुंभा के कीर्तिस्तम्भ की प्रतिष्ठा।
१५०६	१४४९	,, ,, के समय का आबू का शिलालेख।
१५०९	१४५२	,, ,, का आबू पर अचलगढ़ बनाना।
१५१३	१४५६	,, ,, की नागोर पर चढ़ाई।
१५१५	१४५८	,, ,, की नागोर पर दूसरी बार चढ़ाई।
१५१५	१४५९	कुंभलगढ़ की प्रतिष्ठा।
१५१७	१४६०	चित्तोड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति।
,,	,,	कुंभलगढ़ की प्रशस्ति।
१५१८	१४६१	,, की दूसरी प्रशस्ति।
,,	,,	अचलगढ़ के आदिनाथ की मूर्ति का लेख।
१५२५	१४६८	महाराणा कुंभा का मारा जाना।

महाराणा उदयसिंह

१५२५	१४६८	महाराणा उदयसिंह (प्रथम, ऊदा) का राज्य लेना।
१५३०	१४७३	ऊदा का चित्तोड़ से भागकर कुंभलगढ़ जाना।

महाराणा रायमल

वि० सं०	ई० स०	
१५३०	१४७३	महाराणा रायमल की गद्दीनशीनी।
१५३९	१४८२	कुंवर संग्रामसिंह का जन्म।
१५४५	१४८८	एकलिंगजी की प्रशस्ति।
१५५४	१४९७	रमाबाई के बनवाये हुए जावर के मंदिर की प्रशस्ति।
१५५७	१५००	नारलाई के आदिनाथ के मंदिर का शिलालेख।
१५६०	१५०३	नासिरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई।
१५६१	१५०४	घोसूंडी की बावड़ी की प्रशस्ति।
१५६३	१५०६	झालों का मेवाड़ में आना।
१५६६	१५०९	महाराणा रायमल की मृत्यु।

महाराणा संग्रामसिंह (सांगा)

१५६६	१५०९	सांगा की गद्दीनशीनी।
१५७१	१५१४	गुजरात के सुलतान से लड़ाई।
१५७३	१५१६	कुंवर भोजराज का मीरांबाई के साथ विवाह।
१५७४	१५१७	चित्तोड़ का शिलालेख।
१५७६	१५१९	महाराणा का मालवे के सुलतान महमूद को क़ैद करना।
१५७७	१५२०	महाराणा का निज़ामुल्मुल्क को हराना।
,,	,,	गुजरात के सुलतान का मेवाड़ पर आक्रमण।
१५८३	१५२६	बाबर की इब्राहीम लोदी के साथ की पानीपत की लड़ाई।
१५८४	१५२७	सांगा की बाबर के साथ की खानवे की लड़ाई।
,,	,,	डिग्गी के कल्याणरायजी के मंदिर का शिलालेख।
,,	,,	सांगा का चन्देरी को प्रस्थान।
,,	,,	सांगा का देहान्त।

महाराणा रत्नसिंह

१५८४	१५२७	रत्नसिंह (द्वितीय) का राज्यारोहण।
१५८७	१५३०	रत्नसिंह के समय का शत्रुंजय का शिलालेख।
१५८८	१५३१	रत्नसिंह का मारा जाना।

महाराणा विक्रमादित्य

वि० सं०	ई० स०	
१५८८	१५३१	महाराणा का राज्याभिषेक।
१५८९	१५३३	बहादुरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई।
,,	,,	महाराणा के समय का ताम्रपत्र।
१५९२	१५३५	,, का चित्तोड़ पर अधिकार होना।
१५९३	१५३६	,, का वणवीर के हाथ से मारा जाना और उसका राज्य लेना।

महाराणा उदयसिंह (दूसरा)

वि० सं०	ई० स०	
१५९४	१५३७	महाराणा का राज्यारोहण।
१५९७	१५४०	कुंवर प्रतापसिंह का जन्म।
१६००	१५४३	शेरशाह सूर का चित्तोड़ की तरफ़ जाना।
(१६०३)	(१५४६)	मीरांबाई का देहान्त।
१६१३	१५५७	महाराणा का हाजीखां पठान के साथ युद्ध।
१६१६	१५५९	कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह का जन्म।
१६२१	१५६४	उदयसागर का बनना।
१६२४	१५६८	बादशाह अकबर का चित्तोड़ लेना।
१६२६	१५६९	,, ,, का रणथंभोर लेना।
१६२८	१५७२	महाराणा का देहान्त।

महाराणा प्रतापसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१६२८	१५७२	महाराणा का राज्याभिषेक।
१६३०	१५७३	कुंवर मानसिंह कछवाहे का उदयपुर जाना।
,,	,,	महाराणा के समय का शिलालेख।
१६३३	१५७६	हल्दीघाटी की लड़ाई।
,,	,,	बादशाह अकबर का गोगूंदे जाना।
१६३४	१५७७	महाराणा के समय का दानपत्र।
१६३५	१५७८	बादशाह अकबर का शाहबाज़खां को मेवाड़ पर भेजना और कुंभलगढ़ पर उसका अधिकार होना।

वि० सं०	ई० स०	
१६३६	१५८२	महाराणा के समय का दानपत्र।
१६४०	१५८३	जगमाल का राव सुरताण के हाथ से लड़ाई में मारा जाना।
१६४०	१५८४	कुंवर अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह का जन्म।
१६४१	१५८४	जगन्नाथ कछवाहे का मेवाड़ में भेजा जाना।
१६४३	१५८६	महाराणा का फिर मेवाड़ पर अधिकार होना।
१६५३	१५९७	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा अमरसिंह

१६५३	१५९७	महाराणा का राज्याभिषेक।
१६५६	१६००	मंत्री भामाशाह का देहान्त।
१६५७	१६००	शाहज़ादे सलीम की मेवाड़ पर चढ़ाई।
१६६०	१६०३	सलीम का मेवाड़ की दूसरी चढ़ाई के लिये नियत होना।
१६६२	१६०५	परवेज़ की मेवाड़ पर चढ़ाई।
१६६४	१६०७	कुंवर कर्णसिंह के पुत्र जगत्सिंह का जन्म।
१६६५	१६०८	महाबतखां का मेवाड़ पर भेजा जाना।
१६६६	१६०९	अब्दुल्लाखां का मेवाड़ पर भेजा जाना।
१६६८	१६११	राणपुर की लड़ाई।
१६७०	१६१३	बादशाह जहांगीर का खुर्रम को मेवाड़ पर भेजना।
१६७१	१६१४	महाराणा की बादशाह जहांगीर से संधि।
१६७१	१६१५	कुंवर कर्णसिंह का बादशाही सेवा में उपस्थित होना।
१६७२	१६१५	महाराणा के पौत्र जगत्सिंह का बादशाह के पास जाना।
१६७३	१६१६	कुंवर कर्णसिंह का दूसरी बार बादशाही सेवा में जाना।
१६७६	१६२०	महाराणा का देहान्त।

महाराणा कर्णसिंह

१६७६	१६२०	महाराणा का राज्याभिषेक।
१६७९	१६२२	शाहज़ादे खुर्रम का महाराणा के पास जाना।
१६८४	१६२८	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा जगत्सिंह

वि० सं०	ई० स०	
१६८४	१६२८	महाराणा की गद्दीनशीनी ।
१६८५	१६२८	देवलिये (प्रतापगढ़) का मेवाड़ से अलग होना ।
१६८५	१६२८	ठिकरिया गांव का दानपत्र ।
१६८६	१६२९	कुंवर राजसिंह का जन्म ।
१६८७	१६३०	नारलाई और नाडोल के आदिनाथ की मूर्तियों के लेख ।
१७००	१६४३	कुंवर राजसिंह का बादशाह के पास अजमेर जाना ।
१७०५	१६४८	ओंकारनाथ का शिलालेख ।
१७०५	१६४८	धाय के मंदिर की प्रशस्ति ।
१७०९	१६५२	जगन्नाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा ।
१७०९	१६५२	जगन्नाथ के मंदिर का शिलालेख ।
१७०९	१६५२	रूपनारायण के मंदिर का शिलालेख ।
१७०९	१६५२	महाराणा का स्वर्गवास ।

महाराणा राजसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१७०९	१६५२	महाराणा की गद्दीनशीनी ।
१७१४	१६५७	महाराणा के समय का दानपत्र ।
१७१५	१६५८	औरंगज़ेब का बादशाह होना ।
१७१६	१६५९	महाराणा का बांसवाड़े पर सेना भेजना ।
१७१७	१६५९	संतू की पहाड़ी के स्तम्भ का लेख ।
१७१७	१६६०	महाराणा का चारुमती से विवाह होना ।
१७१७	१६६०	भवांणा की बावड़ी का शिलालेख ।
१७१९	१६६२	मीनों का दमन ।
१७२०	१६६३	सिरोही के राव अखेराज को कैद से छुड़ाना ।
१७२२	१६६४	अंबा माता की चरणचौकी का लेख ।
१७२६	१६६९	बड़ी के तालाब की प्रशस्ति ।
१७३१	१६७४	देबारी का शिलालेख ।
१७३२	१६७५	छाणी गांव के आदिनाथ की मूर्ति का लेख ।

वि० सं०	ई० स०	
१७३२	१६७५	राजनगर के आदिनाथ के मंदिर की ४ मूर्तियों के ४ लेख।
,,	,,	राजप्रशस्ति महाकाव्य।
१७३३	१६७६	देबारी की त्रिमुखी बावड़ी की प्रशस्ति।
१७३४	१६७७	म० रा० का सिरोही के राव वैरीशाल की सहायता करना।
१७३५	१६७९	कुंवर जयसिंह का बादशाही सेवा में जाना।
,,	,,	महाराजा जसवंतसिंह का देहान्त और अजीतसिंह का महाराणा की शरण में जाना।
१७३६	१६७९	बादशाह औरंगज़ेब का 'जज़िया' लगाना।
,,	,,	महाराणा का जज़िया का विरोध।
,,	,,	औरंगज़ेब की महाराणा पर चढ़ाई।
,,	,,	औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयां।
१७३७	१६८०	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा जयसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१७३७	१६८०	महाराणा का राज्याभिषेक।
१७३७	१६८१	महाराणा की औरंगज़ेब के साथ की लड़ाई।
१७३८	१६८१	महाराणा की बादशाह से संधि।
१७४१	१६८४	पुर आदि परगनों का प्राप्त होना।
१७४४	१६८७	धूर के तालाब की प्रतिष्ठा।
१७४७	१६९०	कुंवर अमरसिंह के पुत्र संग्रामसिंह का जन्म।
१७४८	१६९१	जयसमुद्र की प्रतिष्ठा।
,,	,,	महाराणा का कुंवर अमरसिंह से विरोध।
१७५५	१६९८	महाराणा का देहान्त।

महाराणा अमरसिंह (दूसरा)

वि० सं०	ई० स०	
१७५५	१६९८	महाराणा का राज्याभिषेक।
१७६३	१७०७	बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु।
१७६४	१७०८	महाराजा जयसिंह और अजीतसिंह का महाराणा के पास जाना।

वि० सं०	ई० स०	
१७६६	१७०६	महाराणा का पुर, मांडल पर अधिकार होना।
,,	,,	कुंवर संग्रामसिंह के पुत्र जगत्सिंह का जन्म।
१७६७	१७१०	महाराणा का स्वर्गवास।
		महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा)
१७६७	१७१०	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१७६८	१७११	रणबाज़खां का मारा जाना।
,,	,,	ऋषभदेव के मंदिर की वासुपूज्य की मूर्ति का लेख।
,,	,,	,, ,, की दूसरी मूर्ति का लेख।
१७६६	१७१३	फ़र्रुख़सियर का जज़िया लगाना।
१७७०	१७१३	उदयपुर का शिलालेख।
१७७१	१७१४	महाराणा का दानपत्र।
१७७४	१७१७	बेदले की बावड़ी का लेख।
,,	,,	रामपुरे पर महाराणा का अधिकार होना।
,,	,,	राठोड़ दुर्गादास का मेवाड़ में जाना और रामपुरे का हाकिम होना।
१७७६	१७१६	सीसारमा की प्रशस्ति।
१७८१	१७२४	कुंवर जगत्सिंह के पुत्र प्रतापसिंह का जन्म।
१७८४	१७२७	ईडर का मेवाड़ में मिलाया जाना।
१७८६	१७२६	माधवसिंह को रामपुरा दिया जाना।
१७६०	१७३४	महाराणा का देहान्त।
		महाराणा जगत्सिंह (दूसरा)
१७६०	१७३४	महाराणा की गद्दीनशीनी।
,,	,,	उदयपुर के हरवेनजी के मंदिर की प्रशस्ति।
१७६८	१७४१	मरहटों से लड़ाई।
१७६६	१७४२	गोवर्धनविलास के कुंड की प्रशस्ति।
१८००	१७४३	उदयपुर के पंचोलियों के मंदिर की प्रशस्ति।
,,	,,	कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र राजसिंह का जन्म।

वि० सं०	ई० स०	
१८०७	१७५०	भटियाणी की सराय का शिलालेख।
,,	,,	रामपुरे का मेवाड़ से निकल जाना।
१८०८	१७५१	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा)

१८०८	१७५१	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८१०	१७५३	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा राजसिंह (दूसरा)

१८१०	१७५४	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८१२	१७५५	संध्यागिरि के मठ के निकटवर्ती शिवालय का शिलालेख।
१८१६	१७५६	मरहटों का मेवाड़ पर आक्रमण।
१८१७	१७६१	महाराणा का देहान्त।

महाराणा अरिसिंह (दूसरा)

१८१७	१७६१	महाराणा का राज्याभिषेक।
१८१६	१७६२	उदयपुर का शिलालेख।
१८१६	१७६३	उदयपुर की पार्श्वनाथ की मूर्ति का लेख।
१८२०	१८६३	देबारी के मंदिर का शिलालेख।
,,	,,	मल्हारराव होल्कर का मेवाड़ पर आक्रमण।
१८२१	१७६४	धायभाई के मंदिर का शिलालेख।
१८२४	१७६८	कुंवर भीमसिंह का जन्म।
१८२५	१७६६	उज्जैन की लड़ाई।
,,	,,	सालेड़ा गांव का शिलालेख।
१८२६	१७७०	माधवराव सिन्धिया का उदयपुर को घेरना।
१८२८	१७७१	गोड़वाड़ परगने का मेवाड़ से अलग होना।
,,	,,	समरू के साथ की लड़ाई।
१८२६	१७७३	महाराणा का आहूंण आदि पर आक्रमण।
,,	,,	महाराणा का देहान्त।

महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरा)

वि० सं०	ई० स०	
१८२६	१७७३	महाराणा का राज्यारोहण।
१८३३	१७७७	महाराणा का विवाह।
१८३४	१७७८	महाराणा का देहान्त।

महाराणा भीमसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१८३४	१७७८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८३८	१७८२	रावत राघवदास का महाराणा की सेवा में आना।
१८४४	१७८७	महाराणा की मरहटों पर चढ़ाई।
१८४४	१७८८	हड़क्याखाल की लड़ाई।
१८४६	१७८६	सोमचन्द गांधी का मारा जाना।
१८४८	१७६१	महाराणा से सिंधिया की मुलाक़ात।
१८४६	१७६२	रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालना।
१८५०	१७६४	डूंगरपुर तथा बांसवाड़े पर महाराणा की चढ़ाई।
१८५३	१७६६	प्रधान सतीदास तथा जयचन्द का क़ैद होना।
१८५६	१७६६	लकवा और टॉमस की लड़ाइयां।
१८५६	१७६६	मेहता देवीचन्द का प्रधान नियत होना।
१८५७	१८००	कुंवर जवानसिंह का जन्म।
१८५८	१८०२	चेजा घाटी की लड़ाई।
१८५६	१८०२	जसवन्तराव होल्कर की मेवाड़ पर चढ़ाई।
१८६०	१८०३	होल्कर का मेवाड़ को लूटना।
१८६२	१८०५	मेवाड़ में सिंधिया और होल्कर का आना।
१८६६	१८०६	अमीरखां आदि का मेवाड़ में आना।
१८६७	१८१०	कृष्णकुमारी का आत्म-बलिदान।
१८७२	१८१५	प्रधान सतीदास और जयचन्द का मारा जाना।
१८७३	१८१६	दिलेरखां की चढ़ाई।
१८७४	१८१८	अंग्रेज़ों से सन्धि।
१८७६	१८१६	मेरों का दमन।

वि० सं०	ई० स०	
१८७८	१८२१	शिवलाल गलूंड्या का प्रधान नियत होना।
१८८३	१८२६	कप्तान सदरलैंड के सुधार।
१८८४	१८२७	कप्तान कॉब का क़ौलनामा।
१८८५	१८२८	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा जवानसिंह

१८८५	१८२८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८८५	१८२८	मेहता रामसिंह का प्रधान बनाया जाना।
,,	,,	भोमट का प्रबन्ध।
१८८६	१८२६	बेगूं के रावत की होल्कर के इलाक़े पर चढ़ाई।
१८८८	१८३१	शेरसिंह का प्रधान बनाया जाना।
१८८८	१८३१	महाराणा की लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क से मुलाक़ात।
१८९०	१८३३	महाराणा की गया-यात्रा।
१८९३	१८३६	चढ़े हुए ख़िराज का फ़ैसला होना।
१८९३	१८३७	महाराणा की आबू-यात्रा।
१८९५	१८३८	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा सरदारसिंह

१८९५	१८३८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८९६	१८३९	भोमट के भीलों का उपद्रव।
१८९६	१८४०	महाराणा की गया-यात्रा।
१८९८	१८४१	महाराणा का सरूपसिंह को गोद लेना।
१८९९	१८४२	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा सरूपसिंह

१८९९	१८४२	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१९००	१८४४	मेहता शेरसिंह का प्रधान बनाया जाना।
१९०१	१८४५	सरदारों के साथ का कौलनामा।
१९०४	१८४७	लावे पर चढ़ाई।
१९०६	१८४९	सरूपशाही सिक्के का जारी होना।

वि० सं०	ई० स०	
१६०६	१८५२	चावड़ों को आर्ज्ये की जागीर वापस मिलना।
१६११	१८५४	नया कौलनामा बनाना और उसका रद्द होना।
"	"	मीनों का उपद्रव।
१६१३	१८५६	बीजोल्यां का मामला।
१६१३	१८५७	आमेट का झगड़ा।
१६१४	१८५७	सिपाही-विद्रोह।
१६१५	१८५८	महाराणी विक्टोरिया का घोषणापत्र।
१६१६	१८५६	कोठारी केसरीसिंह का प्रधान बनाया जाना।
१६१६	१८६०	खेराड़ में शान्ति स्थापन।
१६१८	१८६१	सतीप्रथा का बन्द किया जाना।
"	"	शंभुसिंह का गोद लिया जाना।
"	"	महाराणा का स्वर्गवास।
"	"	मेवाड़ में अंतिम सती।

महाराणा शंभुसिंह

१६१८	१८६१	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१६१६	१८६२	सलूंबर का मामला।
१६२०	१८६३	'अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़' का स्थापित होना।
१६२२	१८६५	महाराणा को राज्याधिकार मिलना।
१६२३	१८६६	ख़ास कचहरी का क़ायम होना।
१६२५	१८६८	मेवाड़ में भीषण अकाल।
१६२६	१८६६	सोहनसिंह को बागोर की जागीर मिलना।
१६२६	१८६६	महक़मा ख़ास का क़ायम होना।
१६२७	१८७०	महाराणा का अजमेर जाना।
१६२८	१८७१	महाराणा को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब मिलना।
१६३१	१८७४	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा सज्जनसिंह

१६३१	१८७४	महाराणा की गद्दीनशीनी।

वि० सं०	ई० स०	
१६३२	१८७५	मेहता पन्नालाल की पुनर्नियुक्ति।
”	”	मेवाड़ में अति-वृष्टि।
”	”	महाराणा का बंबई जाना।
”	”	लॉर्ड नॉर्थब्रुक का उदयपुर जाना।
१६३३	१८७७	महाराणा का दिल्ली-दरबार में जाना।
१६३३	१८७७	इजलास ख़ास की स्थापना।
१६३४	१८७८	अंग्रेज़ी सरकार और महाराणा के बीच नमक का समझौता।
१६३५	१८७८	शाहपुरे के साथ की क़लमबन्दी।
”	”	ज़मीन का बन्दोबस्त जारी होना।
१६३७	१८८०	महद्राजसभा की स्थापना।
१६३८	१८८१	भीलों का उपद्रव।
”	”	लॉर्ड रिपन का चित्तोड़ जाना और महाराणा को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब मिलना।
१६४०	१८८४	बोहेड़े का मामला।
१६४१	१८८४	महाराणा का देहान्त।

महाराणा फ़तहसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१६४१	१८८४	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१६४२	१८८५	लॉर्ड डफ़रिन का उदयपुर जाना।
१६४६	१८८६	ड्यूक ऑफ़ कॅनॉट का उदयपुर जाना।
”	”	बागोर का ख़ालसा किया जाना।
१६४६	१८६०	शाहज़ादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर जाना।
१६५०	१८६३	बन्दोबस्त का काम पूरा होना।
”	”	उदयपुर-चित्तोड़-रेलवे का बनाया जाना।
१६५३	१८६६	लॉर्ड एलगिन का उदयपुर जाना।
१६५४	१८६७	म० रा० की ज़ाती सलामी की वृद्धि और महाराणी को ऑर्डर आफ़ दी क्राउन ऑफ़ इन्डिया का सम्मान मिलना।

वि० सं०	ई० स०	
१६५६	१८६६	मेवाड़ में भीषण अकाल।
१६५६	१६०३	दिल्ली दरबार।
१६६१	१६०४	मेवाड़ में प्लेग का प्रकोप।
१६६६	१६०६	महाराणा की हरिद्वार-यात्रा।
१६६६	१६०६	मेवाड़ में घोर-वृष्टि।
१६६८	१६११	महाराणा का जोधपुर जाना।
१६६८	१६११	दिल्ली-दरबार।
१६७५	१६१८	महाराणा को जी० सी० वी० ओ० की उपाधि मिलना।
,,	,,	मेवाड़ में इन्फ्लुएन्ज़ा का भयानक प्रकोप।
१६७६	१६१६	महाराजकुमार (भूपालसिंहजी) को के० सी० आई० ई० का खिताब मिलना।
१६७८	१६२१	महाराणा का महाराजकुमार को राज्याधिकार सौंपना।
,,	,,	महाराजकुमार की घोषणा।
,,	,,	प्रिन्स ऑफ़ वेल्स का उदयपुर जाना।
१६८७	१६३०	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा सर भूपालसिंहजी (विद्यमान)

१६८७	१६३०	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१६८७	१६३१	महाराणा को जी० सी० एस० आई० का खिताब मिलना।

परिशिष्ट-संख्या ५

राजपूताने के इतिहास की दूसरी जिल्द के प्रणयन में जिन जिन पुस्तकों से सहायता ली गई उनकी सूची।

संस्कृत और प्राकृत

अमरकाव्य।

अमरकोष (अमरसिंह)।

अमरनृपकाव्यरत्न (हरदेव सूरि)।

अमरसिंहाभिषेककाव्य (वैकुण्ठ)।

आवश्यकबृहद्वृत्ति।

उदयसुन्दरीकथा (सोड्ढल)।

एकलिङ्गपुराण।

एकलिङ्गमाहात्म्य।

ओघनिर्युक्ति (पाक्षिकसूत्रवृत्ति)।

कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकम् (जयसोम)।

गीतगोविन्द (जयदेव)

जगत्प्रकाश (विश्वनाथ)।

देवकुलपाटक (विजयधर्म सूरि)।

पिंगलसूत्रवृत्ति (हलायुध)।

पृथ्वीचन्द्रचरित्र (माणिक्यसुन्दरगणि)।

प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंग)।

मंडलीकमहाकाव्य (गंगाधर)।

मिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका, विज्ञानेश्वर)।

मुण्डकोपनिषद्।

रसिकप्रिया (गीतगोविन्द की टीका, कुंभकर्ण)।

राजकल्पद्रुम (राजेन्द्रविक्रमशाह)।

राजप्रशस्तिमहाकाव्य (रणछोड़भट्ट) ।
राजसिंहप्रभावर्वर्णनम् (लालभट्ट) ।
राजसिंहराज्याभिषेक (सोमेश्वर) ।
वस्तुपालप्रशस्ति (जयसिंह सूरि) ।
यजुर्वेद ।
वास्तुशास्त्रम् (विश्वकर्मावतार) ।
विजयप्रशस्तिकाव्य (हेमविजय) ।
शत्रुञ्जयमाहात्म्य (धनेश्वर सूरि) ।
सर्वदर्शनसंग्रह (माधवाचार्य) ।
संगीतरत्नाकर (शार्ङ्गधर) ।
सुरथोत्सवकाव्य (सोमेश्वर) ।
सोमसौभाग्यकाव्य ।
हरिभूषणमहाकाव्य (गंगाराम) ।

हिन्दी, डिंगल, गुजराती आदि भाषाओं के ग्रन्थ ।

अमरविनोद (धन्वन्तरी) ।
आमेर के राजा पृथ्वीराजजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद) ।
इतिहास राजस्थान (रामनाथ रत्नू) ।
औरंगज़ेबनामा (मुन्शी देवीप्रसाद) ।
काठियावाड़-सर्वसंग्रह (नर्मदाशंकर लालशंकर)-गुजराती ।
गुजरात राजस्थान (कालीदास देवशंकर पंड्या)-गुजराती ।
चंडूपंचांगसंग्रह ।
चतुरकुलचरित्र (चतुरसिंह) ।
चित्तोड़ की गज़ल (कवि खेता) ।
जगद्विलास (नेकराम)
जयसिंहचरित्र (राम कवि)
जियबा दादा वर्क्षी यांचे जीवन-चरित्र (नरहर व्यंकाजी राजाध्यक्ष)-मराठी ।

जहांगीरनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।

जोधपुर की ख्यात।

टॉड राजस्थान (खड्गविलास प्रेस बांकीपुर का संस्करण)।

डूंगरपुर की ख्यात।

तारीख़ बीकानेर (मुन्शी सोहनलाल)।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण)—त्रैमासिक।

पद्मावत (मलिकमुहम्मद जायसी)।

पृथ्वीराजरासा (चन्द बरदाई)—नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित।

प्राचीन जैनलेखसंग्रह (आचार्य जिनविजय)।

देवीदान की ख्यात।

बाबरनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।

भारतीय प्राचीन लिपिमाला (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा)-द्वितीय संस्करण।

भावनगर नो बालबोध इतिहास (देवशंकर वैकुण्ठजी भट्ट)—गुजराती।

भावनगर प्राचीनशोधसंग्रह (विजयशंकर गौरीशंकर ओझा)—संस्कृत-गुजराती।

भीमविलास (कृष्ण कवि)।

महाराणा प्रतापसिंहजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।

महाराणायशप्रकाश (भूरसिंह शेखावत)।

महाराणा रत्नसिंहजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।

,, संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।

मारवाड़ की ख्यात।

माहवजशप्रकाश (आशिया मानसिंह)।

मीरांबाई का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।

मुहणोत नैणसी की ख्यात।

राजरसनामृत (मुन्शी देवीप्रसाद)।

राजविलास (मान कवि)-नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण।

राणारासा।

रायमलरासा।

रीवां की ख्यात।
वंशप्रकाश (पंडित गंगासहाय)।
वंशभास्कर (मिश्रण सूर्यमल्ल)।
वीरविनोद (महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास)।
शाहजहांनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।
सहीवाला अर्जुनसिंहजी का जीवनचरित्र।
सिरोही राज्य का इतिहास (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा)।
हिन्द राजस्थान (अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या)-गुजराती।

फ़ारसी तथा उर्दू पुस्तकें।

अकबरनामा (अबुल्फ़ज़ल)।
अदबे आलमगीरी।
आइने अकबरी (अबुल्फ़ज़ल)।
इकबालनामा जहांगीरी (मौतमिदखां)।
इन्शाए ब्राह्मण।
तबक़ाते अकबरी (निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी)।
तबक़ाते नासिरी (मिन्हाजुस्सिराज)।
तारीख़ अलफ़ी (मौलाना अहमद आदि)।
तारीख़े दाउदी (अब्दुल्ला)।
तारीख़े फ़िरिश्ता (मुहम्मद क़ासिम फ़िरिश्ता)।
तारीख़े फ़ीरोज़शाही (ज़ियाउद्दीन बर्नी)।
तारीख़े बहादुरशाही (साम सुल्तान बहादुर गुजराती)।
तारीख़े सलातीने अफ़ग़ाना (अहमद यादगार)।
तुज़ुके बाबरी (बाबर बादशाह)।
फ़ुतुहाते आलमगीरी (ईसरीदास)।
बादशाहनामा (अब्दुलहमीद लाहोरी)।

बिसाइतुल ग़नाइम (लक्ष्मीनारायण औरंगाबादी)।
मासिरुल उमरा (शाहनवाज़ख़ां)।
मासिरे आलमगीरी (मुहम्मद साकी मुस्ताइदख़ां)।
मिराते अहमदी (हसनमुहम्मदख़ां)।
मिराते सिकन्दरी (सिकन्दर)।
मुन्तख़बुत्तवारीख़ (अल्बदायूनी)।
मुन्तख़बुल्लुबाब (ख़ाफ़ीख़ां)।
वक़ाये राजपूताना (मुन्शी ज्वालासहाय)।
वाक़ेआते मुश्ताक़ी (शेख़ रिज़कुल्ला मुश्ताक़ी)।

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

Aitchison, C. U.—Treaties, Engagements and Sanads.
Annual Administration Report of the Rajputana States.
Annual Reports of the Rajputana Museum, Ajmer.
Archeological Survey of India, Annual Reports.
Aufrecht, Theodor—Catalogus Catalogorum.
Bele—History of Gujrat.
Bendal, Cecil—Journey of Literary and Archeological Research in Nepal and Northern India.
Beniprasad, Dr.—History of Jahangir.
Beveridge, A.S.—Translation of Tuzuk-i-Babari.
Bhandarkar, Shridhar Ramkrishna—Report of the Second tour in search of Sanskrit MSS. in Rajputana and Central India, 1904—6.
Bhavnagar Inscriptions.
Blochmann—Ain-i-Akbari.
Bombay Gazetteer.
Briggs, John—History of the Rise of the Mohammadan power in India (Translation of Tarikh-i-Ferishta of Mahomed Kasim Ferishta).
Brook—History of Mewar.
Buckland—Dictionary of Indian Biography.
Central India Gazetteer.
Chiefs and Leading Families of Rajputana.

Compton, H.—European Military Adventurers of Hindustan.
Cunningham—Archeological Survey of India, Reports.
Dow, Alexender—History of India.
Duff, C. Mabel—Chronology of India.
Duff, J. G.—History of the Marhattas.
Elliot, Sir H W.—The History of India as told by its own Historians
Elphinston, M.—The History of India.
Epigraphia Indica.
Erskine, K. D.—Gazetteer of the Dungarpur State.
Fleet—Gupta Inscriptions.
Forbes—Ras Mala.
Foster, William—The Embassy of Sir Thomas Roe.
Franklin, William—Military Memoirs of Mr. George Thomas (1805 Edition).
Har Bilas Sarda, Dewan Bahadur—Maharana Kumbha.
" " " " " —Maharana Sanga.
Harprasad Shastri, M.M.—Catalogue of Palm-Leaf and Selected MSS. in the Darbar Library, Nepal.
Imperial Gazetteer of India.
Indian Antiquary.
Irvine—Later Mughals.
Journal of the Asiatic Society of Bengal.
Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society.
Lane-Poole, Stanely—Baber.
Leward (Captain) and Kashinath Krishna Lele—Parmars of Dhar and Malwa.
Markand Nand Shankar Mehta and Manu Nand Shankar Mehta—Hind-Rajasthan.
Malcolm, John—History of Persia.
Memorandum on the Indian States—1930.
Modern Review.
Orme—Fragments.
Peterson, P.—Reports in search of Sanskrit Manuscripts.
Princep, J.—Essays on Indian Antiquities.
Progress Reports of the Archeological Survey of India, Western Circle.
Rushbrook Williams—An Empire builder of the Sixteenth Century.
Rogers, A.—Memoirs of Jahangir.
Sarkar, J. N.—History of Aurangzeb.
Smith, V.A.—Akbar the Great Moghul.
" " —Bernier's Travels.
" " —Oxford History of India.

Stratton, J.P.—Chitor and the Mewar Family.
Thomas, Edward.—The Chronicles of the Pathan Kings of Delhi.
Tod, James.—Annals and Autiquities of Rajasthan.
Walter, Colonel—Biographical sketches of the Chiefs of Meywar.
Webb, W.W.—The currencies of the Hindu States of Rajputana.

SIR JADUNATH SARKAR, M.A.,

in

(*The Modern Review Calcutta, 3rd June 1931. P. 678–79.*)

With the present part (covering the history of the Udaypur State from 1576 to 1881) a great work reaches half its completion............ In the case of Udaypur, correction that would bring Tod's chapters abreast of modern knowledge is no doubt necessary, but not expansion or the filling up of gaps even half the extent that his annals of Jaipur or Marwar are clamouring for. There is nobody who is a quarter as competent as Rai Bahadur Ojha for doing it. It is now thirty years since I first met him at Udaypur, and we discussed the urgency of replacing Tod's Rajasthan by a modern accurate history; and today I ask myself in trembling solicitude, "Will the veteran Pandit live to accomplish this task?"

The present part covers the most glorious and best known period of Mewar history, namely, from the accession of the great Pratap to near the end of the 19th century. The field of Haldighat, which in the eye of every Indian is radiant with

" The light that never was on land or sea,
The consecration and the patriot's dream,"

is here in a photograph. Raj Singh, a worthy heir of Pratap is here too, and the tragic figure of the Indian Iphigenia, Krishna Kumari. In many a European country such a volume would have sold like the latest popular novel. Let us see how Hindi India treats this masterpiece

To put it briefly, Ojha's work entirely replaces Tod's legend-based annals by the full and critical use of inscriptions, Sanskrit works, bardic chronicles, Persian histories as far as available in Hindi or English translations, and the various records brought to light in Kaviraj Shyamaldas's *Viravinod*.

विज्ञप्ति

राजपूताने के इतिहास के पाठकों को सूचित किया जाता है कि उदयपुर राज्य के इतिहास के साथ राजपूताने के इतिहास की दूसरी जिल्द समाप्त होती है। इतिहास के प्रत्येक खण्ड में १०० पृष्ठ रहते हैं किन्तु जिल्द बँधवाने की असुविधा को लक्ष्य में रखकर इस खण्ड में १८ पृष्ठ कम दिये गये हैं। उनकी पूर्ति आगामी खण्ड में की जायगी।